सम्पादकीय

कोरोना से ज्यादा खतरानाक है नवउदारवादी वायरस

30 मई के अखबारों में प्रधान सेवक नरेंद्र मोदी का स्नेहीजन को सम्बोधित एक लम्बा पत्र प्रकाशित हुआ। अवसर था भाजपा सरकार के दूसरे कार्यकाल का, एक साल और कुल मिलाकर छह साल पूरा होना। उनका यह पत्र उन्हीं के शब्दों में स्नेहीजनों के "चरणों में प्रणाम करने और उनका आशीर्वाद लेने" तथा "लगातार दो बार बहुमत की सरकार को जिम्मेदारी सौंपकर भारतीय लोकतंत्र में एक नया स्वर्णिम अध्याय जोड़ने के लिए उनको नमन करने और प्रणाम करने" के इर्द-गिर्द ही मँडराता रहा।

जिस दिन यह पत्र प्रकाशित हुआ उस दिन तक देश में 67 दिन की तालाबन्दी के बावजूद कोरोना महामारी विकराल रूप धारण कर रही थी। उस दिन कोरोना संक्रमित मरीजों की कुल संख्या 1,65,799 तक पहुँच गयी थी और दिन में सबसे ज्यादा 7,466 मामले सामने आये थे। उसी दिन महामारी से मरने वाले लोगों की कुल संख्या 4,706 तक पहुँच गयी थी, जो चीन में कोरोना से मरने वाले 4,638 लोगों की तुलना में बहुत ज्यादा थी। इस महाविपदा की घड़ी में प्रधानमंत्री का सम्बोधन निश्चय ही इस महामारी से सम्बन्धित चुनौतियों और उनको हल करने की ठोस योजना पर केन्द्रित होना चाहिए था। लेकिन इस विकट स्थिति और कटु सच्चाइयों से आँख चुराते हुए अपने पत्र में "ताली-थाली बजाने और दिया जलाने से लेकर जनता कर्फ्यू और देशव्यापी लॉकडाउन के दौरान नियमों का निष्ठा से पालन" करने के लिए स्नेहीजनों का आभार जताते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि "भारत आज अन्य देशों की तुलना में ज्यादा सम्भली हुई स्थिति में है," और यह कि "भारत ने अपनी एकजुटता से कोरोना के खिलाफ लड़ाई में पूरी दुनिया को अचम्भित किया है," इत्यादि। कोरोना महामारी के उपरोक्त आँकड़ों के साथ प्रधानमंत्री की इन मनभावन बातों का क्या कोई मेल है?

दरअसल, इस पत्र में केन्द्र सरकार की उपलब्धियों का बखान किया गया है, जिनमें कश्मीर में धारा 370 हटाने, राम मन्दिर की बाधाओं को हटाने, तीन तलाक के खिलाफ कानून बनाने, जीएसटी लागू करने, नागरिकता कानून में परिवर्तन जैसे कानूनी बदलावों तथा गरीबों को गैस सिलेण्डर देने और शौचालय बनाने जैसी योजनाएँ प्रमुख हैं। हालाँकि इस पत्र में नोटबन्दी जैसे विनाशकारी फैसले का कोई जिक्र नहीं है। विपत्ति की इस घड़ी में प्रधानमंत्री के आत्ममुग्ध और आत्मप्रशंसा से भरे इस पत्र में जिन उपलब्धियों की बात की गयी है, उनकी असलियत किसी से छिपी नहीं है। यहाँ इन सब पर चर्चा करने का स्थान नहीं, लेकिन उनमें से एक उपलब्धि-- नागरिकता संशोधन कानून जिसे प्रधानमंत्री ने भारतीय करुणा का प्रतीक बताया है, उसे रेखांकित करना जरूरी है।

नागरिकता संशोधन कानून भारतीय संविधान की मूल भावना के विरुद्ध है। इसके खिलाफ देश भर में आन्दोलन हुए, जिनकी शुरुआत दिल्ली के शाहीन बाग की महिलाओं ने की थी। इसके जवाब में नागरिकता कानून के समर्थकों द्वारा दिल्ली में दंगे भड़काये गये, जिसमें सैकड़ों लोग हताहत हुए और हजारों परिवार तबाह हुए। सरकार ने देश भर में आन्दोलनकारियों का बर्बर दमन किया, उन पर लाठी-गोली चलाई गयी और संगीन आपराधिक मुकदमों में उन्हें जेल भेजा गया। और तो और, लॉकडाउन का लाभ उठाकर इस आन्दोलन में शामिल कार्यकर्ताओं और छात्र-छात्राओं को फर्जी मुकदमे में गिरफ्तार करने का सिलसिला आज भी जारी है। निश्चय ही यह भारत की करुणा का नहीं, बल्कि मौजूदा सरकार की नृशंसता और क्रूरता का प्रतीक है।

पिछले 3 महीनों की तालाबन्दी के दौरान देश ने कोरोना बीमारी का जितना कहर नहीं झेला, उससे कहीं ज्यादा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक तबाही का सामना किया और आज भी कर रहा है। सरकार ने जिस तरह बिना तैयारी और पूर्व चेतावनी के अचानक तालाबन्दी की घोषणा कर दी, उसने देश भर में अफरा-तफरी और बदहवासी का माहौल पैदा कर दिया। करोड़ों लोगों की रोजी-रोटी छिन गयी, लाखों की संख्या में मजदूर सैकड़ों मील की पैदल यात्रा पर अपने घरों की ओर चल पड़े। यह इतिहास की एक अभूतपूर्व त्रासदी थी जिसकी पीड़ा-व्यथा, परेशानी और मौत की दिल दहला देनेवाली अकथ कहानी हर रोज सोशल मीडिया और अखबारों में आती रही। जनता पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। मुसीबत की इस घड़ी में घर लौटते प्रवासी मजदूरों के प्रति केन्द्र और राज्य सरकारों का रवैया बेहद कठोर और उपेक्षापूर्ण रहा। रोजी-रोजगार गवाँ चुके, अभावग्रस्त मजदूरों को किसी भी तरह की सहायता सरकारों ने नहीं दी। केरल सरकार को छोड़कर किसी ने प्रवासी मजदूरों को आश्वस्त नहीं किया कि वे जहाँ हैं

वहीं रहें, उनके रहने-खाने की जिम्मेदारी सरकार की है। मजदूर अपने दूर-दराज के गाँवों से शहरों में रोजी-रोटी की तलाश में आये थे। अचानक लॉकडाउन और काम छूटने के बाद वे पूरी तरह बेसहारा हो गये। सरकार की नीतियों से उनका भरोसा टूट गया और वह अपने दम पर कठिन और जानलेवा सफर पर निकल पड़े। सरकार ने उनकी कोई मदद नहीं की। उल्टे कई जगह उनके ऊपर बर्बर अत्याचार किये गये। भूख-प्यास, थकान, बीमारी और दुर्घटना के चलते सैकड़ों लोगों की मौत के बाद उनकी ओर सरकार का ध्यान गया, लेकिन उपेक्षा और हिला-हवाली फिर भी जारी रही। जो श्रमिक स्पेशल ट्रेनें चलायी गयीं, वे दो दिन की जगह सात-आठ दिनों में मंजिल तक पहुँचीं और एक ट्रेन तो भटक कर गोरखपुर की जगह राउरकेला चली गयी। रेलवे सुरक्षा बल (आरपीएफ) के मुताबिक 7 मई से 27 मई के बीच इन ट्रेनों में 80 लोगों की मौत हुई है। इस बीच लॉकडाउन के दौरान लोगों की मौत का सिलसिला अभी थमा नहीं है। जिंदल ग्लोबल स्कूल और सिराक्युज विश्वविद्यालय के दो प्रोफेसरों ने मीडिया रिपोर्टों के आधार पर 24 मई तक अनियोजित लॉकडाउन के चलते मरने वाले प्रवासी मजदूरों की एक सूची तैयार की जिसमें 667 लोगों की मौत का ब्यौरा है। इनमें भुखमरी से 114, सड़क हादसे से 205, बीमारी और इलाज की कमी से 54, थकान से 42, पुलिस की क्रूरता से 12, खुदकुशी से 50, डर और अकेलेपन से 120 और अन्य कारणों से 70 मजदूरों की मौत दर्ज है। जाहिर है कि यह आँकड़ा वास्तविकता से कम है क्योंकि सभी मौतें मीडिया रिपोर्ट में नहीं आ पाती हैं। प्रधानमंत्री के पत्र में ऐसी किसी अशुभ या असुविधाजनक बातों का कोई जिक्र नहीं है, उनके प्रति शोक-संवेदना या अपने हड़बड़ी में लिये गये लॉकडाउन के फैसले पर अफसोस जाहिर करने की तो बात ही क्या।

प्रधानमंत्री के पत्र में अचानक लॉकडाउन की घोषणा के बाद विकराल रूप धारण करनेवाली बेरोजगारी की भी कोई चर्चा या चिन्ता नहीं है। प्रतिष्ठित सांख्यिकी संस्था सीएमआईई के अनुसार लॉकडाउन के दौरान सिर्फ अप्रैल के महीने में ही 11.4 करोड़ लोगों को अपना रोजी-रोजगार गँवाना पड़ा। इनमें से 9.1 करोड़ मजदूरों और 1.78 करोड़ कर्मचारियों की नौकरी चली गयी जबकि 1.8 करोड़ छोटे व्यापारियों और कारोबारियों का धन्धा चौपट हो गया। लेकिन इतनी बड़ी आर्थिक तबाही के शिकार इन करोड़ों लोगों के बारे में प्रधानमंत्री ने अपने लम्बे पत्र में एक शब्द नहीं लिखा। 14 अप्रैल के अपने सम्बोधन में उन्होंने नियोक्ता पूँजीपतियों से अनुरोध किया था कि लॉकडाउन के दौरान कोई भी कम्पनी किसी मजदूर या कर्मचारी को नौकरी से न निकाले। इसके बावजूद कम्पनियों ने न सिर्फ मजदूरों-कर्मचारियों को नौकरी से निकाला, बल्कि ज्यादातर ठेका मजदूरों को उनका बकाया वेतन भी नहीं दिया गया। और तो और, मालिकों की अपील पर सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दे दिया कि केन्द्र सरकार ने तालाबन्दी के दौरान पूरा वेतन देने से सम्बन्धित 19 मार्च का जो आदेश जारी किया था उसको लागू नहीं करने वाले मालिकों पर कोई दण्डात्मक कार्रवाई नहीं होगी। इस फैसले से उन करोड़ों परिवारों पर कोरोना से भी कहीं ज्यादा जानलेवा मुसीबत पड़ी, जिनके जीने का रहा-सहा जरिया भी छिन गया।

प्रधानमंत्री के पत्र में अर्थव्यवस्था की तबाही के बारे में भी कोई ठोस बात नहीं कही गयी है। इस साल की पहली तिमाही (जनवरी-मार्च) में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 3.1 प्रतिशत रही जो पिछले 11 साल में सबसे कम थी। इसमें लॉकडाउन के सिर्फ 7 दिन ही शामिल हैं, यानी कोरोना संकट से पहले ही अर्थव्यवस्था का हाल बदहाल था। लॉकडाउन के बाद की स्थिति के बारे में रिजर्व बैंक ने नकारात्मक विकास दर की आशंका जतायी है। लेकिन प्रधानमंत्री के पत्र में इस गम्भीर आर्थिक संकट और इसके समाधान का कोई जिक्र नहीं है। पत्र में "अपने पैरों पर खड़ा होने" और "लोकल उत्पादों के भरोसे आयात पर निर्भरता कम करने" जैसे जुमलों के बाद "आर्थिक क्षेत्र में मिसाल कायम करने" और "दुनिया को चकित और प्रेरित करने" जैसी हवाई बातें जरूर हैं, लेकिन यह सब कैसे होगा इसकी कोई ठोस रूपरेखा नहीं है।

वैसे देखा जाये तो प्रधानमंत्री का यह पत्र कोरोना महामारी को लेकर उनकी सरकार के रवैये से पूरी तरह मेल खाता है। भारत में कोरोना का पहला मामला 21 जनवरी को इटली से राजस्थान लौटे एक व्यक्ति में मिला था। 24 मार्च को लॉकडाउन शुरू होने तक 500 मामले सामने आ चुके थे। उससे पहले सरकार कोरोना को लेकर बिल्कुल गम्भीर नहीं थी। संघ परिवार के संगठन और नेता गोमूत्र पिलाने का सार्वजनिक कार्यक्रम आयोजित कर रहे थे, यज्ञ-हवन कर रहे थे और एक से एक अजीबोगरीब नुस्खे सुझा रहे थे। इस बीच मध्य प्रदेश में कांग्रेस की सरकार गिराने के लिए विधायकों को अगवा करने और आखिरकार भाजपा की सरकार बनाने का काम जारी रहा। 24-25 फरवरी को अहमदाबाद में नमस्ते ट्रम्प के आयोजन में 1,00,000 लोगों की भीड़ जुटायी गयी थी। ऐसे में जिन देशों में कोरोना फैल चुका था, वहाँ से लोगों का भारत आना लगातार जारी रहा जिनकी जाँच या निगरानी का कोई खास इन्तजाम नहीं किया गया। महामारी को लेकर सरकार की लापरवाही का आलम यह था कि 13 मार्च को केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने बयान दिया था कि कोरोना संक्रमण के चलते भारत में स्वास्थ्य आपातकाल जैसी कोई स्थिति नहीं है। और उसके 5 दिन बाद ही, 18 मार्च को रात 8 बजे प्रधानमंत्री ने 22 मार्च को जनता कर्फ्यू लगाने तथा ताली और थाली बजाने का आह्वान किया जिसे उनके समर्थकों ने एक उत्सव में बदल दिया, जगह-जगह जुलूस निकाला और "गो कोरोना गो" के नारे लगाये। 2 दिन बाद 23

मार्च के सम्बोधन में प्रधानमंत्री ने अचानक लॉकडाउन की घोषणा कर दी जिसके बाद से ही पूरे देश में अफरा-तफरी मच गयी।

दरअसल लॉकडाउन, सामाजिक दूरी या मास्क पहनना कोरोना महामारी का कोई हल नहीं है। इसका असली समाधान जाँच, निदान और समुचित इलाज है। तालाबन्दी के अगले ही दिन से देश भर में चिकित्साकर्मियों, सफाईकर्मियों और अन्य कर्मचारियों के लिए निजी सुरक्षा उपकरण (पीपीई) और यहाँ तक कि मानक स्तर के मास्क की भी भारी कमी सामने आने लगी। घटिया उपकरणों का ऊँची कीमत पर आयात और शिकायत आने पर उनको निरस्त करने तथा उपकरणों की खरीद में घोटाले के मामले भी सामने आये। इसका नतीजा यह हुआ कि कई अस्पतालों के स्वास्थ्यकर्मी कोरोना पॉजिटिव पाये गये। इसका चरम रूप 3 जून को दिल्ली के एम्स में सामने आया जहाँ 19 डॉक्टरों और 38 नर्सों सहित 480 लोग कोरोना संक्रमित पाये गये। सरकार की बदइन्तजामी और लापरवाही का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है?

कोरोना काल में देश की लगातार विकट होती स्थिति और सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये के बारे में इस अंक में कई लेख दिये गये हैं, इसलिए उन पर विस्तार से बात करना यहाँ जरूरी नहीं है। असली सवाल यह है कि 135 करोड़ जनता के प्रति इस सरकार के हृदयहीन व्यवहार की वजह क्या है?

निश्चय ही सरकार की इस लापरवाही के पीछे नवउदारवादी नीतियों के प्रति उनकी घनघोर आस्था है। 1990 से दुनिया की अर्थव्यवस्था जिस नवउदारवादी, चरम पूँजीवादी रास्ते पर चल पड़ी है उसका एक ही मंत्र है-- मुनाफा, विकास का एक ही लक्ष्य है-- मुनाफा, सफलता का एक ही पैमाना है-- मुनाफा। हमारे देश में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाएँ पूरी तरह बाजार और मुनाफाखोरी के हवाले कर दी गयी हैं। ऐसी स्थिति में कोरोना महामारी से लड़ने के रास्ते में नवउदारवादी नीतियाँ ही सबसे बड़ी बाधा हैं, जिनको लागू करने वाले शासकों के लिए अपनी बहुसंख्यक जनता की जान से कहीं ज्यादा चिन्ता मुट्ठी भर मुनाफाखोरों की दौलत बढ़ाना है।

कोरोना से लड़ने के लिए जाँच उपकरण, मास्क, ग्लव्स, वेन्टीलेटर, अस्पताल के बेड इत्यादी का उत्पादन और उनका रखरखाव करना मोटे मुनाफे का धन्धा नहीं। कारण यह कि इनको तब तक गोदाम में रखना होता है जब तक कोई महामारी न फैले और इनकी जरूरत न आ पड़े। जिन पूँजीपतियों का उद्देश्य लगातार मुनाफा बटोरते रहना हो, वे ऐसे साधनों पर धन बर्बाद करने के बजाय ऐसे धन्धों में धन लगाते है जिससे भरपूर मुनाफा कमाया जा सके।

भारी मात्रा में आपातकालीन चिकित्सा उपकरणों का निर्माण, भण्डारण और रखरखाव का काम वही सरकार कर सकती है, जिसका लक्ष्य जन कल्याण हो, मुनाफा कमाना नहीं। इस पर जो भारी धन खर्च होता है और उसके बेकार हो जाने के चलते जो जोखिम उठाना पड़ता है उसे सरकार करदाताओं से वसूले गये सार्वजनिक कोष से वहन कर सकती है। लेकिन जिन देशों के शासकों ने नवउदारवादी लूटतन्त्र को अपना मन्त्र बना लिया, चाहे अमरीका हो, ब्रिटेन हो या भारत, उन्होंने अपनी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को निजी मुनाफे के हवाले कर दिया। यह काम रीगन थ्रेचर के जमाने से होता आ रहा है। दूसरी ओर, जिन देशों की सरकारों ने जिस हद तक अपने खर्च पर जन-स्वास्थ्य का ढाँचा बरकरार रखा, वहाँ कोरोना महामारी का मुकाबला करना उतना ही आसान रहा। उदाहरण के लिए क्यूबा, ताइवान, चीन इत्यादि। हमारे देश में तो स्वास्थ्य सेवाओं का यह हाल है कि ऑक्सीजन के अभाव में सैंकड़ों बच्चे जापानी बुखार से मर जाते है, लाखों लोग ऐसी बीमारियों से मरते हैं जिनका इलाज बहुत आसानी से किया जा सकता है।

नवउदारवाद का अनुगमन करने वाली जिन सरकारों ने सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की जिम्मेदारी निजी मुनाफाखोरों को सौंप दी है और खुद आपातकालीन स्वास्थ्य उपकरणों का उत्पादन, भण्डारण और रखरखाव नहीं करती हैं, उनका रक्षा क्षेत्र के प्रति क्या रवैया होता है? क्या वे भारी तादात में टैंक, मिसाइल, रायफल लड़ाकू विमान और युद्ध सामग्री की खरीद, निर्माण, भण्डारण और रखरखाव या भारी धन नहीं खर्च करती हैं? अपने खर्च और जोखिम के दम पर वे साम्राज्यवादी देशों के विराट रक्षा उद्योगों का मुनाफा बढ़ाती हैं और इसे राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर उचित ठहराया जाता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा और छोटी-बड़ी महामारियों से अपनी जनता को बचाने के मामले में वे ऐसी मुस्तैदी क्यों नहीं दिखाती हैं?

नवउदारवाद की निगाह में निजी क्षेत्र देवता और सार्वजनिक क्षेत्र दानव है, लेकिन उनकी कोशिश हमेशा उन सरकारी क्षेत्र के उद्यमों को हथियानें में लगी रहती है जहाँ कम पैसे लगाकर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाया जा सके। सरकारें भी अपनी राज्य मशीनरी चलानेवाले कामों को छोड़कर, बाकी सभी आर्थिक गतिविधियाँ निजी मुनाफे के हवाले, बाजार के हवाले कर रही है, जिन पर कोई अंकुश न रहे और वे बेलगाम मुनाफा बटोरने के लिए आजाद हों।

कोरोना हमले के दौरान भारत ही नहीं, पूरी दुनिया ने इन नवउदारवादी नीतियों की भारी कीमत चुकायी है, जिनके तहत स्वास्थ्य सेवाएँ सरकार की जिम्मेदारी न होकर मुनाफे का धन्धा हो चुकी हैं, जिनके लिए लाखों लोगों की मौत भी कोई मायने नहीं रखती, जिनको सिर्फ अपने मुनाफे से मतलब है। हद तो यह है

कि कोरोना काल में, जब कुछ देशों की सरकारों ने निजी स्वास्थ्य सेवाओं का सरकारीकरण किया और उन्हें आपदा के काल में तैनात किया, वहीं हमारे देश में सरकार इस दौरान भी स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण को आगे बढ़ाती रही। केन्द्र सरकार आज भी सरकारी मेडिकल कॉलेजों और जिला अस्पतालों के निजीकरण के काम को तेजी से आगे बढ़ा रही है। लॉकडाउन के दौरान ही केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय ने सभी राज्यों के स्वास्थ्य सचिवों को निर्देश दिया कि वे जिला अस्पतालों के निजीकरण की रफ्तार तेज करें।

लॉकडाउन के दौरान करोड़ों रोजी-रोजगार गँवा चुके लोगों के लिए भुखमरी की समस्या कोरोना से कहीं ज्यादा जानलेवा साबित हुई है। रोज कमाने और घर चलनेवाले लोगों के लिए बेरोजगारी का एक ही मतलब है-- भुखमरी और मौत। लेकिन इस विकट समस्या के प्रति भी सरकार का रवैया बेहद खराब रहा है। सरकार चाहती तो एक भी आदमी भूखा नहीं रहता क्योंकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली और राशन दुकानों के रूप में इसका एक व्यापक ढाँचा हमारे देश में आज भी कायम है। केरल सरकार ने सबके लिए मुफ्त राशन की व्यवस्था करके इसे सफलतापूर्वक साबित भी कर दिया। लेकिन केन्द्र सरकार ने लोगों को भुखमरी से बचाने के लिए ठोस कदम उठाना तो दूर, इस रही-सही सार्वजनिक वितरण प्रणाली और खाद्य सुरक्षा को इसी दौरान नवउदारवाद की बलि-वेदी पर कुर्बान कर दिया।

प्रधानमन्त्री का पत्र प्रकाशित होने के तीन दिन बाद ही, 3 जून को केन्द्र सरकार ने आवश्यक वस्तु अधिनियम में बदलाव किया। इसके चलते अनाज, दाल, तेलहन, खाद्य तेल, आलू और प्याज जैसी रोजमर्रे की जरूरी चीजों को आवश्यक वस्तु की सूची से बाहर कर दिया। इस अधिनियम के तहत जिन चीजों को आवश्यक वस्तु माना जाता है उस पर सरकार का नियन्त्रण होता है, ताकि अभाव के समय इन चीजों की जमाखोरी और कालाबाजारी रोकी जा सके। हालाँकि सरकार पहले भी व्यापारियों के हित में इस कानून का कड़ाई से पालन नहीं करवाती थी। लेकिन अगर सरकार चाहती तो आपूर्ति बाधित होने की स्थिति में कुछ समय के लिए उस चीज के स्टॉक की सीमा तय कर सकती थी। इससे उन वस्तुओं के थोक या खुदरा विक्रेता, या आयातकर्ता को जमाखोरी से रोका जा सकता था। ऐसे में उनके लिए अतिरिक्त माल बाजार में बेचना जरूरी हो जाता और आपूर्ति पटरी पर आ जाती और कीमत गिर जाती। अगर ऐसा नहीं करते तो सरकार जमाखोरों के गोदामों पर छापे मारकर उनको सजा देती और उनके माल को नीलाम करती। लेकिन इस कानून में बदलाव करके, जीवनोपयोगी सामानों को उससे बाहर करके सरकार ने जमाखोरी और कालाबाजारी करने वालों को बेलगाम बना दिया।

बंगाल का अकाल (1942-43) जिसमें लगभग 40 लाख लोगों की मौत हुई थी, हमारे इतिहास की सबसे त्रासद घटनाओं में से एक है। अंग्रेज सरकार ने किसानों से कम दाम पर अनाज खरीद कर गोदामों में भर लिया और उसकी कालाबाजारी शुरु कर दी। अकाल के समय अनाज की कीमत आसमान छूने लगी, फिर भी अंग्रेज और भारतीय व्यापारियों ने अनाज सस्ता नहीं किया। इसके चलते गरीब जनता ही नहीं ऊपरी तबके के लोग भी भारी संख्या में भुखमरी के शिकार हुए थे।

सोचिये, अंग्रेजों के राज और इस नवउदारवादी शासन में क्या फर्क रह गया है। पिछले दिनों कोरोना आर्थिक पैकेज के तहत वित्तमन्त्री ने जिन सुधारों की घोषणा की थी, उसका असली उद्देश्य कृषि उत्पादों की खरीद, भण्डारण और व्यापार को मुक्त बाजार यानी मुनाफाखोरी के हवाले करना ही था। आवश्यक वस्तु कानून में इस बदलाव ने एक तरफ करोड़ों लोगों को भूख से मरने और दूसरी ओर आयात-निर्यात और सट्टेबाजी में लगे देशी-विदेशी पूँजीपतियों के बेलगाम मुनाफे की गारण्टी कर दी। वह दिन दूर नहीं, जब लोग कोरोना से बच भी गये, तो बंगाल के अकाल जैसी भुखमरी के शिकार होंगे।

प्रधानमन्त्री ने अपनी जिन उपलब्धियों को भारत की आन-बान-शान बताकर आत्म-प्रशंसा की है, जैसे-- धारा 370, राम मन्दिर, तीन तलाक, चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ की भर्ती, नागरिकता कानून इत्यादि, वे इस देश को एक खास दिशा में ले जाने वाले भाजपा के पुराने एजेण्डे हैं, जनता की माँग नहीं। इसी के साथ-साथ मोदी सरकार उन नवउदारवादी नीतियों को भी धड़ल्ले से आगे बढ़ा रही है, जिनका मकसद देश के प्राकृतिक संसाधनों, सार्वजनिक क्षेत्र और समाजिक सेवाओं को देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हवाले करना है। पिछले 30 वर्षों से केन्द्र और राज्यों में जितनी भी पार्टियों और गठबन्धनों की सरकार बनी, सबने यही किया। मजदूरों के अधिकारों में लगातार कटौती करना और उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना, देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हित में आर्थिक नीतियों को बदलना और उनके मुनाफे की गारण्टी करना, आम जनता से झूठे वादे करके ठगना और बरगलाना, उन्हें आपस में जाति-धर्म-क्षेत्र के नाम पर लड़वाना, जनता की बदहाली की कीमत पर अपनी सहूलियतों और अय्यासी को चाक-चौबन्द रखना, विदेशी आकाओं के सामने दुम हिलाना और अपने देश में विरोधियों, अल्पसंख्यकों, दलितों-शोषितों, आदिवासियों और आन्दोलनकारियों का निर्मम दमन-उत्पीड़न करना, कुर्सी बचाने और सरकार बनाने के लिए तीन-तिकड़म, जालसाजी-फरेब और तमाम ऐसी ही हरकतें करना। फर्क सिर्फ यही है कि जो काम पिछले बीस सालों में एक-एक करके, टुकड़े-टुकड़े में हो रहा था, वह पूँजीवादी व्यवस्था के इस चरम संकट को देखते हुए और कोरोना तालाबन्दी की आड़ में महामारी से भयाक्रान्त जनता की मजबूरी का फायदा उठाते हुए आज बेहद कायराना तरीके से,

एकमुश्त और धड़ल्ले से किया जा रहा है।

इस संकट से निजात पाने का एक मात्र रास्ता है इस लुटेरी व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव। यही पहले भी देश की तमाम समस्याओं का एकमात्र सही समाधान था और आज भी है, लेकिन आज के नये दौर में इस जिम्मेदारी को जल्दी से जल्दी पूरी करना जीवन-मरण का प्रश्न है। कोरोना से तो हम बच जाएँगे लेकिन कोरोना से भी विनाशकारी इस नवउदारवादी वायरस को काबू किये बिना हमारा कोई भविष्य नहीं। कोरोना काल में मेहनतकश जनता के ऊपर मुसीबत का जो पहाड़ टूट पड़ा, उसने इस ऐतिहासिक कार्यभार के अहसास को गहरा किया है। हमारे सभी प्रयास इसी दिशा में केन्द्रित हों, तभी हम एक ऐसे भारत का निर्माण कर सकते हैं जहाँ मुनाफे से अधिक इनसान की जान को महत्व दिया जाये, जहाँ समाज का संचालन लूट खसोट और चरम निजी स्वार्थ के हित में नहीं, बल्कि न्याय और समता के उसूलों पर हो।

आन्दोलन ब्लैक लाइफ मैटर

25 मई को अमरीका में एक पुलिस अधिकारी ने जार्ज फ्लायड नाम के निर्दोष अश्वेत अमरीकी सख्स की गर्दन दबाकर हत्या कर दी। दम घुटने पर जार्ज फ्लायड ने कहा था कि "आई काण्ट ब्रीद" (मैं साँस नहीं ले पा रहा हूँ)। पुलिस की इस क्रूर कार्रवाई और रंगभेद के खिलाफ "आई काण्ट ब्रीद" और "ब्लैक लाइफ मैटर" नारे के साथ आन्दोलन अमरीका ही नहीं पूरी दुनिया में फैल गया। आन्दोलनकारियों ने न तो कोरोना महामारी की परवाह की और न ही लॉकडाउन की। अमरीका में अश्वेत लोगों के साथ लाखों गोरे नागरिक भी आन्दोलन में शामिल हुए, जिससे घबराकर राष्ट्रपति ट्रम्प ने आन्दोलनकारियों को धमकाने वाले कई बयान दिये। ट्रम्प के नस्लभेदी रवैये और धमकियों ने आग में घी का काम किया और आन्दोलन ने और जोर पकड़ ली। आन्दोलनकारियों ने राष्ट्रपति भवन को घेर लिया। ट्रम्प को भवन के बंकर में छिपकर अपना बचाव करना पड़ा। ऐसा दुनिया के इतिहास में पहली बार हुआ। दमन के लिए भेजी गयी सेना भी आन्दोलनकारियों के साथ हो गयी। एक सैन्य अधिकारी ने कहा कि राष्ट्रपति ट्रम्प की कार्रवाई असंवैधानिक है। जार्ज फ्लायड के सुनहरे ताबूत की झलक पाने के लिए 30 हजार से अधिक लोग उमड़ पड़े।

पाठकों से अपील

❑ 'देश-विदेश' अंक 35 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाये।

❑ जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाये या नहीं।

❑ देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 35 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।

❑ पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 4 अंकों की सहयोग राशि 150 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 2000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें और इसकी सूचना एसएमएस या ईमेल से भेज दें।

नाम : अतुल कुमार गुप्ता
मोबाइल नं. 9810104481
S.B. AC : 601510100024041
IFSC : BKID 0006015
बैंक ऑफ इण्डिया,
जीटी रोड, शाहदरा, दिल्ली-32

मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

अतुल कुमार गुप्ता
1/4649/45 बी, गली नं. 4,
न्यू मॉर्डन शाहदरा
दिल्ली- 110032

कोरोना विशेष

भारत और कोरोना वायरस

-- कानन हल्लिनन

हालाँकि कोरोना वायरस का प्रभाव यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका पर ज्यादा हुआ है, फिर भी भारत इस बीमारी का सबसे बड़ा शिकार होने का दावेदार है। लेकिन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने संकट का सामना करने के लिए एक शातिर जनसम्पर्क अभियान के अलावा बहुत कम काम किया है। वास्तव में दिल्ली द्वारा उठाये गये कई नीतिगत कदमों से इस खतरनाक वायरस के प्रसार की सम्भावना बढ़ गयी है।

जब मोदी ने 24 मार्च को 21 दिन के राष्ट्रव्यापी बन्द की घोषणा की, तो उन्होंने इससे पहले कोई चेतावनी नहीं दी। प्रधानमंत्री के बात खत्म करने से पहले ही घबराये हुए शहरी लोग-- ज्यादातर मध्यम वर्ग के लोग-- भोजन और दवाएँ जमा करने के लिए सड़कों पर उतरने को मजबूर कर दिये गये, जिससे लगभग निश्चित रूप से कोविड-19 के प्रसार में तेजी आयी।

लॉकडाउन ने तुरन्त करोडों लोगों को बेरोजगार बना दिया, जिसके चलते बहुत से लोग गाँवों की ओर अपने घर निकल पड़े। क्योंकि सार्वजनिक परिवहन बन्द कर दिया गया है, इसमें 300 मील से भी ज्यादा की यात्राएँ शामिल हैं और बहुत से गाँवों में बाहर से आने वाले लोगों को रोका जा रहा है, इसलिए प्रवासियों को भोजन और पानी कहाँ मिलेगा इसका किसी को अनुमान नहीं है।

कुछ स्वतंत्र समाचार स्रोतों को छोड़कर, 24 मार्च के आदेशों से फैली अव्यवस्थाओं में से अधिकतर की कहीं रिपोर्टिंग नहीं हो पायी है। वित्तीय दबाव और पूर्ण सेंसरशिप के मेल का उपयोग करते हुए मोदी और उनकी दक्षिणपंथी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने मीडिया को बहुत हदतक चुप करा दिया है। समाचार पत्रों और प्रसारण केन्द्रों ने अनुभव किया है कि मोदी या भाजपा की आलोचना करके वे सरकारी विज्ञापनों से हाथ धो बैठते हैं जो उनकी आय का एक बड़ा स्रोत हैं। मोदी सरकार ने विरोधी मीडिया केन्द्रों के खिलाफ ऐसे कई मामलें भी दायर किये हैं जिन्हें लड़ना महँगा और मुश्किल है।

कोरोना वायरस के मामले में सरकार ने मीडिया को यह आदेश देने के लिए कि सभी स्वास्थ्य संकट के "आधिकारिक संस्करण" को ही प्रकाशित करेंगे, इसके लिए सुप्रीम कोर्ट का सहारा लिया, व्यवहार में इसका मतलब है-- सरकार के पक्ष में अच्छी-अच्छी बातें ही छापो।

भाजपा ने भारत के 17,000 अखबारों, 100,000 पत्रिकाओं और 178 टेलीविजन समाचार चैनलों को अपनी तरफ लाने में भारी सफलता हासिल की है, जिसकी मीडिया संगठनों ने कड़ी निन्दा की है। 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स' ने भारत को अपने स्वतंत्रता सूचकांक में 180 देशों में से 140वां स्थान दिया है।

मोदी ने कोविड-19 संकट पर क्षेत्रीय प्रतिक्रिया गढ़ने के लिए एक हाई-प्रोफाइल अभियान की अगुआई की है। 15 मार्च को मोदी ने कोरोना वायरस इमरजेंसी फण्ड बनाने और चिकित्सा सम्बन्धी जानकारी का आदान-प्रदान करने के लिए दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) का एक सम्मेलन बुलाया। 26 मार्च को मोदी ने अपने प्रयास को जी-20 (धनी सरकारों और बैंकों के एक अन्तरराष्ट्रीय मंच, जिसमें यूरोपीय संघ शामिल हैं) को आकर्षित करने तक बढ़ा दिया।

लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि मोदी के क्षेत्रीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रयास स्वास्थ्य संकट का सामना करने से अधिक उनकी सरकार की प्रतिष्ठा को सुधारने के लिए हैं।

मोदी ने भारतीय संविधान का उल्लंघन करके जम्मू-कश्मीर को एकतरफा ढ़ंग से जब्त किया और बाद में इस कब्जे के किसी भी तरह के विरोध को कुचला, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इन कदमों की व्यापक रूप से निन्दा की गयी। मोदी सरकार द्वारा मुसलमानों को छोड़कर नये तरीके से "नागरिकता" को पुनर्परिभाषित करने के हालिया कदम की भी व्यापक आलोचना हुई है। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों के उच्चायुक्त, मिशेल बाचेलेट ने इस कानून को ऐसे कई अन्तरराष्ट्रीय समझौतों का उल्लंघन बताया, जिनमें भारत एक पक्ष है।

सार्क या जी-20 का कुछ पालन किया गया है लेकिन सरकार ने घरेलू स्तर पर बहुत कम काम किया है। सबसे ज्यादा जरूरत के ऐसे समय में भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली में हर 1,000 लोगों के लिए अस्पताल के केवल 0.5 बिस्तर उपलब्ध हैं जो बहुत कमजोर स्थिति है। इसके विपरीत, इटली में यह

आँकड़ा भारत से लगभग सात गुना ज्यादा है।

'रूरल इंडिया ऑनलाइन' जो पीपुल्स आर्काइव ऑफ रूरल इंडिया (पीएआरआई) का हिस्सा रही है कोविड-19 संकट पर रिपोर्टिंग करने वाला एक महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र मीडिया केन्द्र है, यह भारत के उन ग्रामीण निवासियों पर रिपोर्ट करने वाले पत्रकारों और फोटो जर्नलिस्टों का एक नेटवर्क है, जो भारत की 70 प्रतिशत आबादी हैं।

पी साईनाथ, पीएआरआई के संस्थापक और सम्पादक हैं, जिन्हें प्रतिष्ठित रेमन मैग्सेसे पुरस्कार और मानव अधिकारों के लिए एमनेस्टी इंटरनेशनल का वैश्विक पुरस्कार मिला है-- वे मोदी सरकार के कामों के जबरदस्त आलोचक हैं और पीएआरआई के संवाददाताओं ने लिखा है कि मुख्यधारा के मीडिया को ऐसे मामलों से जुड़ी खबरें देने पर धमकाया गया है जैसे घर लौटने के लिए सड़कों पर निकल आयी गरीबों की भारी संख्या, इलाज की उम्मीद में अस्पतालों के बाहर सो रहे कैंसर के रोगी और दिहाड़ी मजदूर जो किसी भी दिन काम से छुट्टी नहीं कर सकते हैं। इनमें से एक ने पीएआरआई की रिपोर्टर श्रद्धा अग्रवाल से कहा, "अगर हम पहले भूख से मरते हैं तो साबुन हमें नहीं बचाएगा।"

पीएआरआई के पत्रकारों ने भारत के सफाई कर्मचारियों पर भी कई खबरें छापी हैं, जिनमें से कुछ को ही दस्ताने या मास्क दिये गये हैं। मुम्बई की सफाई कर्मचारी अर्चना चौबस्कवान ने पीएआरआई की रिपोर्टर इवोती शिनोली से कहा, "सरकार लगातार हाथ साफ करने को कह रही है।" "हम यह कैसे करें? सैनिटाइजर बहुत महँगे हैं" चौबस्कवान की रोजाना की कमाई 200 रुपये है-- पानी की आपूर्ति अनिश्चित है और सामाजिक दूरी असम्भव है। "एक ही सार्वजनिक शौचालय में हम सैकड़ों लोग जाते हैं।"

अगर सफाई कर्मचारी बीमार हो जाते हैं-- या मुम्बई के 2 करोड़ निवासियों में से कोई भी, तो उनकी जान संकट में है। सरकारी अस्पतालों में इस समय पूरे शहर के लिए केवल 400 वेंटिलेटर और 1,000 आईसीयू बेड उपलब्ध हैं।

भारत का स्वास्थ्य संकट लम्बे समय से चला आ रहा है और मोदी सरकार की कार्रवाइयाँ निश्चित रूप से मौजूदा संकट को और बिगाडेंगी, पिछले 30 सालों से भारतीय सरकारों, दक्षिणपंथी और मध्यममार्गी दोनों ने ही स्वास्थ्य देखभाल के खर्च में बहुत कटौती की है और व्यवस्था के बड़े हिस्से का निजीकरण कर चुकी हैं। साईनाथ लिखते हैं, "हमारा देश स्वास्थ्य पर दुनिया में सबसे कम खर्च (सकल घरेलू उत्पाद के एक हिस्से के रूप में) करने वाले देशों में से एक है। लगभग दस लाख भारतीय हर साल तपेदिक से और एक लाख बच्चे दस्त से मर जाते हैं।

अमरीका अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 17 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करता है।

साईनाथ के अनुसार, "आज पूरे भारत में स्वास्थ्य पर खर्च शायद ग्रामीण परिवार के ऋण का सबसे तेजी से बढ़ती वजह है।" 'हेल्थ फाउण्डेशन ऑफ इंडिया' के एक अध्ययन में पाया गया कि 2011-12 में लगभग 5 करोड़ 50 लाख लोगों को स्वास्थ्य के खर्च ने और 38 लाख को केवल दवा के खर्च ने कंगाल बना दिया था।

यही कारण है कि भारत के 1.3 अरब लोगों का एक बड़ा हिस्सा कोविड-19 के विकराल रूप का सामना कर रहा है और उन्हें भाजपा या मोदी से बहुत मदद मिलने की सम्भावना नहीं है। जब आखिरकार चीन में कोरोना वायरस के खतरे सबके सामने आ गये थे, तो भारत में मोदी के कुछ कैबिनेट मंत्रियों के साम्प्रदायिक दंगों में लिप्त होने से खलबली मची थी। हिन्दुत्ववादी संगठनों द्वारा संचालित दक्षिणपंथी भीड़ उपद्रव मचाते हुए सड़कों पर उतरी तो नयी दिल्ली में 50 से अधिक लोग मारे गये और सैकड़ों घायल हुए।

दार्शनिक और राजनीतिक टिप्पणीकार एजाज अहमद आरएसएस को "आज की दुनिया में सबसे पुराना, सबसे बड़ा और सबसे सफल धुर दक्षिणपंथी समूह" कहते हैं, यह संगठन ही मोदी के पीछे खड़ी असली ताकत है। अहमद के मुताबिक, भाजपा इस हिन्दू कट्टरपंथी संगठन आरएसएस, का एक विशाल मोर्चा है। यह संगठन "पूरी तरह पदानुक्रमवादी और गुप्त" है।

ऊपर से नीचे तक, कोरोना वायरस पर कोई चेतावनी आज्ञप्ति जारी न करना आरएसएस के काम करने का खास तरीका है। इससे पहले 2016 में बिना किसी चेतावनी के मोदी ने 500 और 1,000 रुपये के सभी नोटों को एकतरफा ढंग से रद्द करके देश को मुद्रा अराजकता में फेंक दिया था और इसने गरीब भारतीयों की बड़ी संख्या को कंगाल बनाया था।

आरएसएस का प्रमुख लक्ष्य एक हिन्दू केन्द्रित राष्ट्र का निर्माण है और यह किस्म-किस्म की भीड़ या हत्या के जरिये हिंसा करने से भी नहीं हिचकता। बन्दूकधारियों ने पिछले सालों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कई प्रमुख विरोधियों को मार डाला है, इन हत्याओं की गुत्थी कभी नहीं सुलझी।

धर्म केन्द्रित राजनीति ने सरकार की प्राथमिकताओं की दिशा बदल दी है। भारत की सबसे अधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री ने भगवान राम की विशाल प्रतिमा के निर्माण के लिए 6,916 करोड़ रुपये जारी किये, जबकि आपातकालीन चिकित्सा सुविधाओं को घटा दिया।

भारत की अधिकांश मुख्यधारा की प्रेस या तो इनके साथ मिल गयी है या फिर डरकर पीछे हट गयी है। यह पीपुल्स आर्काइव

ऑफ रूरल इंडिया (पीएआरआई) जैसे वैकल्पिक स्रोत ही हैं, जिसने इस चुप्पी को तोड़ा है और इस बारे में खबरें दी हैं कि विशाल महानगरों के बाहर रहने वाले अधिकांश भारतीयों के साथ क्या हो रहा है तथा झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले और शहर के सफाई कर्मचारी किन हालातों का सामना कर रहे हैं।

अभी तक, मोदी और आरएसएस ने हिंसा में बढ़ोतरी रोकने और उन सामाजिक प्राथमिकताओं की जवाबदेही से परहेज किया है, अमीर और गरीब के बीच की खाई को चौड़ा किया है। लेकिन कोविड-19 इसे बदल सकता है।

पीएआरआई ने मौजूदा संकट से निपटने के लिए कई माँगे पेश की हैं, जिसमें अतिरिक्त अनाज का तत्काल वितरण, खेती का नकदी फसलों से खाद्य फसलों की ओर बदलाव और राष्ट्रव्यापी निजी चिकित्सा सुविधाओं का राष्ट्रीयकरण शामिल है।

कोविड-19 संकट 1918-20 के फ्लू की महामारी के बाद से महामारी के रूप में मानी जाने वाली तीसरी बीमारी है, जिसमें 10 करोड़ लोगों की मौत हो सकती है। लेकिन जलवायु परिवर्तन ऐसी स्थितियाँ पैदा कर रहा है जो कोरोना वायरस और वेक्टर-आधारित रोगजनकों जैसे डेंगू और मलेरिया जैसी बीमारियों को बढ़ाएगी। अगली महामारी करीब ही है और जब तक कि स्वास्थ्य देखभाल को मानव अधिकार बनाने के लिए एक केन्द्रित प्रयास नहीं होता, तो अगले जबरदस्त-जानलेवा हमलों से सामना होना तय है।

अनुवाद--प्रवीण

(काउंटर पंच से साभार)

कोरोना विशेष

कोरोना लॉकडाउन
भूख से लड़ें या कोरोना से

-- ललित कुमार

25 मार्च को प्रधानमंत्री मोदी ने पूरे देश में अचानक लॉकडाउन का एलान कर दिया।

कोरोना वायरस से देश का मध्यमवर्ग, पूँजीपति और मैनेजर, शासन-प्रशासन में बैठे तमाम पार्टियों के नेता और नौकरशाह (डीएम, एसपी, जज, तहसीलदार आदि) सब घबराये हुए हैं। बौखलाहट में वे तुगलकी फरमान जारी कर रहे हैं या किंकर्तव्यविमूढ़ अपने घरों में सुरक्षित बैठे रामायण-महाभारत का आनन्द ले रहे हैं। दूसरी ओर, देश की मेहनतकश आबादी का बड़ा हिस्सा 21 दिन के इस लॉकडाउन का मुकाबला करने के लिए सड़कों पर आ चुका है। बेरोजगार, बेबस, भूखे और लाचार लोग अपने दुधमुंहे बच्चों, गर्भवती औरतों और बूढ़े बुजुर्गों के साथ सैंकड़ों मील चलकर घर जा रहे हैं इस उम्मीद में कि शायद वहाँ जाकर वे भूखे नहीं मरेंगे या मरेंगे भी तो एक लावारिस मौत नहीं, अपनों के बीच।

क्या वाकई हम महाशक्ति बन गये हैं? तो फिर देश के विकास के दावे को खोखला साबित करती, लाखों-करोड़ों की यह पलायन करती भीड़ कौन है? इस बेबस आबादी में कौन लोग हैं जो अपने भूख से बिलबिलाते बच्चों के साथ गाँवों और छोटे कस्बों की ओर भागे चले जा रहे हैं? क्या अब भी उन्हें हिन्दू और मुसलमान की तरह देखा जा सकता है? उनकी कौम के रक्षक कहाँ हैं?

एक अनुमान के मुताबिक देश के शहरों में दिहाड़ी मजदूरों, मौसमी मजदूरों, असंगठित क्षेत्र के मजदूरों और छोटे कारोबारियों की कुल संख्या लगभग 15 करोड़ है। देश में 20 करोड़ जनधन खाते हैं और लगभग 2-8 करोड़ सीजनल मजदूर हैं। सरकार द्वारा घोषित लॉकडाउन कर्फ्यू इनके लिए मौत का फरमान बनकर आया है। आइये इनके सड़क पर आ जाने की वजह और इनकी परेशानी की गम्भीरता को समझने की कशिश करें।

दिहाड़ी मजदूर जो रोज काम की तलाश में निकलता है, रोज पानी पीने के लिए रोज कुँआ खोदने को मजबूर है। इन्हें शहरों में हर सुबह 'लेबर चौराहों' पर अपने औजारों के साथ काम की बाट जोहते खड़े देखा जा सकता है। जब कोई कार या स्कूटर चौराहे पर रुकता है तो उनका रेला उसे घेर लेता है। सौभाग्यशाली काम पा जाते हैं, बाकी फिर इन्तजार करने लगते हैं। इन्हें रोजाना काम नहीं मिल पाता। बहुत अच्छे वक्त में भी इन्हें महीने में 15-20 दिन से ज्यादा काम मयस्सर नहीं हो पाता। 200-500 रुपये रोज। ये घर भेजने के लिए तभी कुछ पैसे बचा पाते हैं, जब खुद बेहद खराब परिस्थितियों में रहें। इसीलिए दड़बेनुमा कमरों में ठुँसकर कई मजदूर एकसाथ रहते हैं, सस्ते ढाबों पर खाना खाते हैं और बीमारी की हालत में भी काम करते रहते हैं। बहुतरे मजदूर सड़कों पर भी सोने को मजबूर होते हैं।

इनमें से बहुत सारे मौसमी मजदूर होते हैं जो अक्सर फसल की बुवाई और

कटाई के बीच तीन-चार महीने के लिए शहर में कमाने आ जाते हैं। क्योंकि छोटी खेती या खेत मजदूरी से इनका साल भर का खर्च नहीं चल पाता। छोटी खेती को गायों और सांडों के आवारा झुण्डों द्वारा तबाह कर दिये जाने के चलते भी शहर आकर मौसमी मजदूरी करना इनकी मजबूरी बन गयी है। ये लोग रिक्शा चलाने से लेकर रंगाई, पुताई, चिनाई जैसे तमाम काम करते हैं। इनमें से अधिकांश मजदूरों के परिवार गाँव में रहते हैं इसलिए शहर में इनके स्थायी ठिकाने नहीं होते हैं। इनके राशन कार्ड, जन-धन खाते सभी गाँव के पते पर होते हैं। शहरों में इनकी कोई जमीन, कोई आधार, कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं होती है।

लॉकडाउन ने इनके रोजगार की सम्भावना को खत्म कर दिया है। होली के वक्त ये अपनी सारी बचत गाँव-घर पर दे चुके थे, इसलिए लॉकडाउन के समय संकट का सामना करने के लिए इनके पास कुछ भी नहीं है। हर दिन वे भुखमरी के और करीब चले जा रहे हैं। सरकारी नुमाइन्दे, मंत्री और पूरा अमला इनकी इन औचक परेशानियों को समझ पाने में अक्षम है या समझना नहीं चाहता है। सरकारी सहायता अगर उन्हें राशनकार्ड या जन-धन खाते के जरिये मिलेगी भी तो गाँव के पते पर। शहर में उनकी खैर-खबर लेने वाला कोई नहीं है। ये सभी शहरों में किराये के मकान में बहुत खराब परिस्थिति में रहते हैं और बहुतों को मकान मालिकों ने निकाल दिया है।

आखिर उन्होंने तय कर लिया कि उन्हें भूख से नहीं मरना है, लावारिस मौत नहीं मरना है भले ही वे कोरोना से मर जायें नतीजतन वे सड़कों पर उतर आये।

असंगठित क्षेत्र के मजदूर छोटे-छोटे बिखरे हुए धंधों में लगे मजदूर हैं। पीस रेट पर काम करने वाले, ठेके पर काम करने वाले, दुकानों के मजदूर आदि इसी श्रेणी में आते हैं। इनकी स्थिति भी दिहाड़ी मजदूरों से बेहतर नहीं होती है लेकिन ये दिहाड़ी मजदूर जैसी अनिश्चितता के शिकार नहीं होते। इनके पास कुछ दिनों की जरूरत पूरी करने लायक बचत होती है लेकिन लॉकडाउन की अनिश्चित स्थिति में इनके ऊपर भी संकट के बादल मंडराने लगे।

केवल वही दुकाने खुली हैं जो आवश्यक सेवाओं और वस्तुओं से जुडी हैं। जैसे-- मेडिकल स्टोर, अस्पताल, सब्जी-राशन की दुकानें आदि। बाकी सब बन्द हैं। लेकिन पुलिस की बदसलूकी और संवेदनहीनता के कारण आवश्यक वस्तुओं से जुड़ी दुकानों और कारखानों में काम करने वाले भी काम पर नहीं जा पा रहे हैं-- उन्हें रास्ते में रोककर अपराधी की तरह पीटा जा रहा है। इसके अलावा लॉकडाउन का समय बढ़ने की भी सम्भावना हैं-- सरकारी राहत पैकेज का तीन महीने का एलान होने से ये आशंकाएँ और गहरी हो गयी हैं। परिणामस्वरूप अंसगठित क्षेत्र के मजदूर भी पलायन को मजबूर हैं। इसका सीधा असर शहरों में आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर पड़ेगा और संकट का दायरा सुरक्षित बैठे मध्यम वर्ग तक पहुँच सकता है।

लॉकडाउन ने छोटे और कुटीर उद्योगों की कमर तोड़ दी है। लॉकडाउन के कारण न उनके मजदूर काम पर पहुँच पा रहे हैं, न कच्चा माल मिल पा रहा है और न तैयार माल का उठान है। यातयात बन्द है। पुलिस ड्राइवरों को पीट रही है। सड़क किनारे के ढाबे बन्द होने से उन्हें खाने के लाले पड़ गये हैं। रास्ते में खराब हुए ट्रकों की मरम्मत नहीं हो पा रही है। इस क्षेत्र में काम करने वाले लाखों मजदूरों के सामने संकट की स्थिति है। प्रधानमंत्री की अपील के बाद मालिक उन्हें कोई पैसा नहीं दे रहे हैं, न ही मकान मालिक बिना किराया लिए उन्हें रखने को तैयार हैं।

बड़े उद्योगों में भी लॉकडाउन का ज्यादा असर ठेका मजदूर पर पड़ा है। पलायन करते लोगों में ठेका मजदूरी पर मारुति जैसे उद्योग में काम करने वाले भी देखे गये हैं। इनके पास कोई रजिस्ट्रेशन कार्ड नहीं है। संकट की इस घड़ी में ठेकेदार गायब हैं। इन मजदूरों की कई महीनें की मजदूरी ठेकदारों पर बकाया है। पर लॉकडाउन का फायदा उठाकर वे गायब हैं और बेबस मजदूर सड़कों पर धक्के खाने के लिए मजबूर हैं।

तो यह है सड़कों पर पलायन करती भीड़, शहरों के सबसे गरीब मजदूर। बेरोजगारी, भूख और बेबसी ने उनके लिए पलायन के अलावा कोई रास्ता नहीं छोडा। अचानक अपने देश में ही उन्हें हासिये पर फेंक दिया गया है। लॉकडाउन ने रातों-रात उन्हें अपने ही देश में शरणार्थी बना दिया है, रेन बसेरे और सड़कें उनसे भर गयी हैं। मकान-मालिक उन्हें मकानों से खदेड़ रहे हैं क्योंकि वे किराया नहीं भर सकते। पुलिस उन्हें कैम्पों और सड़कों से खदेड़ रही है। देश के रहनुमा उनके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं कभी घर पहुँचाने का आदेश देते हैं, कभी रास्ते में रोककर खड़ा कर लेते हैं तो कभी वापस लौटने के लिए कहते हैं। उन्हें इनके जीवन की कोई चिन्ता नहीं है। कमाल है, अपने घरों में 'वर्क फ्रॉम होम' करता, नेटफ्लिक्स के रोमांच का मजा लेता मध्यम वर्ग उल्टा उन्हें 'खतरा' समझ रहा है।

इन गरीबों के दिल टूट चुके हैं, कलेजे चाक हैं, आने वाले कल के नाम पर केवल अंधेरा है उनकी हताशा और निराशा चरम पर है। दूसरी ओर देश का अमीर वर्ग अपने घरों में छुट्टी मना रहा है, गुलछर्रे उड़ा रहा है।

होली जा चुकी है और रबी की फसल मण्डी में आ गयी है। अतिरिक्त श्रम आ जाने से गेहूँ की फसल काटने, उसकी निकासी, मण्डी में बिक्री के लिए लोड-अनलोड करने के लिए मजदूरी में भारी गिरावट आयी। जो भूमिहीन खेत मजदूर खेत की कटाई

करके साल भर का अनाज जमा करते थे। वे आस लगाये खेतों की ओर ताकते रह गये बहुतों को अनाज नहीं मिला। शहरों से बड़ी संख्या में मजदूरों का गाँव की ओर पलायन अपने साथ कोरोना के वायरस को भी गाँव में ला सकता हैं। गाँव बारूद के ढेर पर बैठे हैं। गाँव में पहुँचने वाले इन लाखों लोगों के साथ क्या होगा? उन्हें कैसे दूसरों से अलग-थलग रखा जायेगा? उनके खाने-रहने की क्या व्यवस्था होगी? सरकार की इसको लेकर कोई तैयारी नहीं है। उन्हें स्कूलों में कैद कर देने, गाँव में घुसने से जबरन रोकने और उनके ऊपर कीटनाशक के छिड़काव करने जैसी दिल दहला देने वाली खबरें ही आती रही हैं, किसी इन्तजाम की नहीं।

इसके अलावा गाँव के गरीबों का बड़ा हिस्सा भूमिहीन खेत मजदूर हैं जिनके पास शायद ही कोई अतिरिक्त सरकारी मदद पहुँची हो। भूखे लोगों द्वारा खेतों में से आलू की फसल निकाल लेने के बाद बच गये आलू बीनकर खाने की खबरें आ रही हैं। बिहार की मुसहर जाति के लोग भुखमरी के शिकार हैं। शहरों से भी लोगों के गाँव पहुँचने पर खाने का संकट और बढ़ गया है। गाँव के लुहार, बढ़ई, राजमिस्त्री, जुलाहे, मण्डी के मजदूर, गाँव के ईंट-भट्टे के मजदूरों पर इसका असर जानलेवा होगा।

सरकार की निश्चिन्तता

सरकार निश्चिन्त है। लॉकडाउन का एलान करने से पहले कोई तैयारी नहीं की गयी थी, फिर भी सरकार निश्चिन्त रही। नोटबन्दी की तरह सरकारी विभागों, केन्द्र और राज्य की सरकारों के बीच कोई तालमेल नहीं था। हमारे 'आत्ममुग्ध' प्रधानमंत्री ने अपने मन्त्रियों, प्रदेशों के मुख्यमन्त्रियों, प्रशासनिक अधिकारियों और स्थानीय लोगों के साथ कोई गम्भीर चर्चा करना जरूरी नहीं समझा है। बादशाह 'तुगलक' की तरह कोरोना के फैलाव पर केवल 'लॉकडाउन' का फरमान जारी कर निश्चिन्त हो गये।

30 जनवरी तक पूरी दुनिया कोरोना वायरस के फैलाव और महामारी की गम्भीरता को समझ गयी थी। लेकिन हमारे देश में पहले तो इसे लेकर सरकार बिलकुल भी गम्भीर नहीं दिखी। उलटे वाट्सअप यूनिवर्सिटी पर यह दावे किये जाते रहे कि भारतीयों पर इसका कोई असर नहीं होगा, कि हमारी इम्युनिटी बहुत अच्छी है कि हम पवित्र गौमूत्र और विभिन्न देशी नुस्खों से तथा थाली पीटकर और मोमबत्ती जलाकर इसे मार भगायेंगे। इस महामारी से निपटने की तैयारी करने के बजाय हमारी सरकार ट्रम्प, का स्वागत करने सीएए, एनआरसी, एनपीआर जैसे मुद्दों पर अपने विरोधियों को ठिकाने लगाने, मध्यप्रदेश में एमएलए खरीदने और सरकार गिराने में लगी रही।

सरकार ने विदेश यात्राओं पर कोई रोक नहीं लगायी और विदेशों से आने वालों की कोई मुकम्मल जाँच-पडताल नहीं की। कोरोना बीमारी हवाई जहाजों से आती रही और सरकारी अधिकारी मुसाफिरों को आइसोलेट (अलग-थलग रखने) करने और उनकी जाँच करने के बजाय उनके हाथों पर ठप्पे लगाकर उन्हें बाहर का रास्ता दिखाते रहे। फिर एसी ट्रेनों और कारों के जरिये इन लोगों के साथ यह बीमारी देश के विभिन्न इलाकों में पहुँचती रही। इस दौरान पंजाब में ही 70-80 हजार लोग विदेश से आये और उनमें से बहुतों के बारे में सरकार को अभी तक कुछ नहीं पता है। गायिका कनिका कपूर जैसी कहानी सामने आने पर इस बात का एहसास होता है कि सरकार शुरू से ही कितनी निश्चिन्त थी, जो कोरोना बीमारी के बावजूद विदेश से लौटकर लखनऊ में भाजपा नेताओं और मंत्रियों के साथ पार्टी करती रही। जब चारों ओर उच्च वर्ग के लोगों और देश के बड़े नेताओं के गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार पर थू-थू होने लगी, तब सरकार के चेहरे पर कुछ चिन्ता दिखी।

चारों ओर घबराहट फैली थी। सरकार के पास इस इमरजेंसी के लिए कोई तैयारी नहीं थी-- न टेस्ट की सुविधा, न अस्पताल में बेड, न वेंटिलेटर, न मास्क-- फिर भी सरकार फ्रिकमन्द नहीं थी।

हर फैसला लेते वक्त केवल उस अमीर वर्ग के बारे में ही सोचा गया जिसने इस बीमारी को विदेश से लाया और फैलाया। उनके पास घर थे उन्हें "वर्क फ्रॉम होम" करना था। पर जिनके पास घर नहीं थे, जो रोज कमाकर रोज खाते थे, जिनकी आमदनी का कोई निश्चित जरिया नहीं था, को कम्पनीयों और ठेकेदारों के गुमनाम मजदूर थे, जो पराधीन और निर्बल थे उनके बारे में सरकार निश्चिन्त रही और यही वर्ग इस त्रासदी का सबसे बड़ा शिकार बना है। इस वर्ग की तबाही इस बात की गवाह है कि हमारे देश के हुक्मरान इस आजाद मुल्क में भी मजदूर वर्ग के लिए विदेशी शासकों जैसे हैं।

लाखों लोगों को सड़कों पर देखकर भी सरकार पर कोई असर नहीं है। रोज नयी घोषणाएँ और नये फरमान आ रहे हैं। एक दिन उन्हें घर पहुँचाने का एलान होता है, दूसरे दिन जहाँ हैं वहीं रोकने का। दिल्ली से चली बसें बुलन्दशहर के बाहर रोक दी जाती हैं। केन्द्र और राज्य सरकारें कह रही हैं कि आपको कहीं जाने की जरूरत नहीं, आपके भोजन का इन्तजाम हो रहा है, राशन फ्री दिया जायेगा, पर लोगों को उन पर भरोसा नहीं रहा है। उनके पास भरोसा करने का कोई आधार भी नहीं है। उन्हें भी पता है कि कोरोना की कीमत किसे चुकानी है।

पहला सरकारी पैकेज

केन्द्र सरकार ने बड़े गाजे-बाजे के साथ 1 लाख 70 हजार करोड़ रूपये के पहले कोरोना राहत पैकेज का ऐलान किया। जब अगले दिन इसका विश्लेषण सामने आया तो पता चला कि इसमें

से 70 हजार करोड़ तो पहले ही खर्च हो चुका है। बाकी 1 लाख करोड़ में बहुत सारा सार्वजानिक वितरण प्रणाली के राशन का कुछ किसान सम्मान निधी का रूटीन खर्च का पैसा है। यानी वास्तविक रकम नाममात्र की थी। लेकिन यह ऊँट के मुँह में जीरा जैसी रकम भी वास्तविक जरूरतमन्दों तक नहीं पहुँची।

इस संकट के समय गरीबों के साथ दूसरा सबसे भद्दा मजाक खुद वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने किया है, उन्होंने मनरेगा मजदूरी की दरें 182 से बढ़ाकर 202 करने की घोषणा की है। अगर देश के कानून का थोड़ा भी सम्मान करने वाली सरकार सत्ता में होती तो इस बढोतरी की धोषणा के बाद शायद वित्तमंत्री जेल जाती क्योंकि यह मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से भी कम है। दूसरे मनरेगा के तहत वही काम आते हैं जिनमें एक साईट पर 15 मजदूर काम करें। लॉकडाउन में धारा 144 लागू होने के चलते यह सम्भव नहीं है। ऐसी बेबसी और लाचारी की स्थिति में कोई ठोस मदद करने के बजाय गरीबों को एक झूठी उम्मीद देना उनके साथ फरेब है, निर्दयता है।

गरीब लोग आज भगवान के रहमो-करम पर छोड़ दिये गये हैं। उनके लिए कोई सरकार नहीं रह गयी है। लोग शायद इसीलिए खामोश रहे कि उन्हें उम्मीद है कि 21 दिनों के बाद लॉकडाउन का अन्त हो जायेगा और फिर सब ठीक हो जायेगा। लेकिन लॉकडाउन बढ़ते-बढ़ते जून तक चला गया। अगर महामारी नियंत्रित नहीं होती और गाँवों में फैल जाती है, जहाँ सरकारी या निजी अस्पतालों की कोई व्यवस्था नहीं है तो वहाँ क्या होगा?

घर लौटते मजदूरों की भूख बीमारी से तथा सड़क दुर्घटना में मौतों की रोज खबरें आ रही हैं। मेरठ में एक बेबस मजदूर, एक बाप जब अपने भूख से बिलखते बच्चों का दुःख नहीं देख सका तो उसने आत्महत्या कर ली। ऐसी घटनाएँ हर रोज हो रही हैं लेकिन ये कभी भी कोरोना के नाम पर दर्ज नहीं होगी। जिस तबाही का हमने जिक्र किया है यह तो उस 'विकास' की देन हैं जिसका बीज आज से 20-30 साल पहले बोया गया था। जिसने एक तरफ अरबपति पैदा किये ओर दूसरी तरफ वंचितों की भारी आबादी, जो आज सडकों पर सबके सामने है! हमारा समाज आज एक अभूतपूर्व संकट का सामना कर रहा है- कोरोना महामारी और भुखमरी-- दोनों आज वास्तविक संकट बनकर हमारे सामने मुँह बाये खड़े हैं। आज गरीब दिहाड़ी मजदूर, असंगठित क्षेत्र के मजदूर, भूमिहीन और छोटे किसान, भूमिहीन बटाईदार किसान और खेत मजदूर, प्रवासी मजदूरों, बेघर और बेकार लोगों और छोटे उद्योग-धन्धों पर यह कहर टूट रहा है लेकिन इसकी लपटें अपने बिलों में छिपे बैठे मध्यमवर्ग और उच्चवर्ग के लोगों तक को अपनी चपेट में लेने के लिए बेचैन हैं। वे लोग कब तक चैन से रह पायेंगे, अभी कहना मुश्किल है। सताये हुए निर्बलों के दिलों में अन्दर ही अन्दर सुलग रही आग कल किस-किस को भस्म करेगी-कौन जानता है। लेकिन कितने आश्चर्य की बात है संकट के इस दौर में भी निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का हमारे देश में कितना सम्मान किया जा रहा है। निजी अस्पताल अपनी लूट जारी रखे हुए हैं, राजमार्गों के किनारे खाली पड़े बहुमंजिला फ्लैटों में बेघरों को बसाने के बारे में नहीं सोचा जा रहा है। गोदामों में 8 करोड़ टन अनाज भरा पड़ा है और जून के शुरुआत में खबर आयी कि पिछले चार महीने में 65 लाख टन अनाज भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) के गोदामों में सड़ा दिया गया, लेकिन उसे जरूरतमन्द लोगों तक पहुँचाया नहीं गया। लोगों को भूखा मारने का जिम्मेदार कौन है? अपने फैसले से आयी तबाही पर प्रधानमंत्री 'माफी' माँगता है, पर इस संकट से निकलने का कोई ठोस उपाय नहीं सोच पाता।

क्या ऐसी क्रूर व्यवस्था को कायम रहने का हक है?

आज नफरत का दिन है। जातिवादियों से नफरत, लिंगभेदियों से नफरत, नव-नाजियों से नफरत का दिन। जो मेहनतकश लोगों को सताता है उससे नफरत का दिन। ट्रम्प और उसके आसपास के सभी लोगों से नफरत का दिन। उन सभी तकनीकी गुरुओं से नफरत का दिन जो सरकारी आदेश पर इस महामारी का फायदा उठा रहे हैं, ताकि वे एक तकनीकी आतंकराज को लागू कर सकें। राज्य सरकारों से नफरत का दिन जो मजदूरों की मौत को लेकर पूरी तरह लापरवाह हैं। उन लोगों से नफरत का दिन जो अपने सुरक्षित गलियारे में बैठ कर इस कठिन समय में अगली कतार के कर्मचारियों का हीरो कहके महिमामंडन करते हैं और खुद भाग खड़े होते हैं। दाम बढ़ानेवाले मुनाफा के भूखे भेड़ियों से नफरत का दिन। सभी उदारवादी वामपंथी ठगों और चालबाजों से नफरत का दिन। इस देश में उन सब से नफरत का दिन जिनके कारण इतने सारे लोग बिना चूँ-चपड़ किये अनगिनत मौत को बरसते देखने के लिए तैयार हैं।

माइकल डी येट्स के फेसबुक पोस्ट का अनुवाद

कोरोना विशेष

मुनाफा नहीं, इंसानियत ही दुनिया को बचा सकती है

-- विक्रम प्रताप

अमरीका आर्थिक, तकनीकी और सामरिक मामले में दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश है। उसे धरती का स्वर्ग माना जाता है और वह ऐसा दावा भी करता है। लेकिन अब इस दावे की हवा निकलती दिख रही है। किसने यह सोचा था कि वहाँ कोरोना के मरीजों की संख्या 15 लाख से ऊपर पहुँच जायेगी और 90 हजार से ज्यादा मौतें होंगी। उसके हर अस्पताल के सामने मृतकों का ढेर लग जायेगा। कोरोना महामारी के आगे अमरीका की ऐसी दुर्दशा हो रही है कि दुनिया भर के लोग दाँतों तले ऊँगली दबा ले रहे हैं। यह ट्रम्प प्रशासन की असफलता नहीं है, बल्कि अमरीकी पूँजीवादी मॉडल की असफलता है, जिसे इस तरह विकसित किया गया है कि वह महामारी की इस समस्या के आगे लाचार नजर आ रहा है। मुनाफे पर केन्द्रित अमरीकी पूँजीवादी व्यवस्था पर सवाल उठना लाजमी है, जो इनसानियत के हर रिश्ते को नकारकर रुपये-पैसे के सम्बन्धों पर टिकी है। यहाँ तक कि अमरीका पूरी तरह बीमार लोगों की कोरोना जाँच भी नहीं कर पा रहा है।

यह स्पष्ट है कि कोरोना को रोकने के लिए व्यापक पैमाने पर लोगों की जाँच आवश्यक है। लेकिन दुनिया भर में जाँच के लिए परीक्षण किट की अनुपलब्धता एक बड़ा सवाल खड़ा करती है। मार्च, 2020 को सीएनएन में लेखिका जूलिया हॉलिंग्सवर्थ का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक है-- "24 घंटे में कोरोना वायरस टेस्ट विकसित किया जा सकता है। तो कुछ देश अभी भी निदान के लिए संघर्ष क्यों कर रहे हैं?" इस लेख में हम यह स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं कि "बौधिक सम्पदा अधिकार कानून" जो बड़ी दवा कम्पनियों को फायदा पहुँचाने वाले और आम जनता के खिलाफ होते हैं, यहाँ भी जरूरी परीक्षण किट को विकसित करने और इस दिशा में शोध में एक बड़ी बाधा खड़ी करते हैं। सवाल है कि अगर विश्व स्वास्थ्य संगठन और मानवतावादी वैज्ञानिकों ने 'वायरस के आनुवंशिक अनुक्रम और परीक्षण से जुड़ी शोधपरक जानकारियों' को लोगों के सामने मुफ्त में उपलब्ध न कराया होता और वे भी यही सोचते कि मुफ्त में लोगों को क्यों जानकारी दी जाये?? तो यह महामारी कितना विध्वंशक रूप ले लेती, आज कहा नहीं जा सकता।

* * *

टेस्ट किट का प्रारूप तैयार करते समय वायरोलॉजिस्ट आमतौर पर तब तक इन्तजार करते हैं जब तक कि नये वायरस की आनुवंशिक सामग्री के अनुक्रम (सीक्वेंस) का पता न चल जाये। वायरोलॉजिस्ट लैण्ड्ट और उनकी कम्पनी टीआईबी मोलबोल ने जल्दी ही यह काम शुरू कर दिया था। 9 जनवरी तक उन्होंने अपने पहले टेस्ट किट को सार्स (एसएआरएस) और अन्य ज्ञात कोरोना वायरस के सन्दर्भ में इस्तेमाल किया था। एक स्थानीय चिकित्सा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के साथ मिलकर उन्होंने तीन किट डिजाइन किये, जिसका अर्थ था कि एक बार अनुक्रम सामने आ जाने के बाद, वे उस किट को चुन सकते हैं जो सबसे अच्छा काम करती हो।

11 जनवरी को लैण्ड्ट ने अपनी किट को ताइवान की कम्पनी सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल एण्ड डायग्नोस्टिक, रोशे के पास हाँगकांग भेज दिया। वे निश्चित रूप से नहीं जानते थे कि वह काम करेगी या नहीं और उन्होंने निर्देश भी तैयार नहीं किये थे।

सप्ताह के अन्त में, उन्होंने एक मैनुअल बनाया और इसे ईमेल किया। "हमने कहा, सुनो, तुम्हारे पास बिना किसी निर्देश के छह ट्यूब हैं," वे याद करते हुए कहते हैं। "उन्हें परीक्षण प्रयोगशाला को दें, आप इससे रोगियों का परीक्षण कर सकते हैं।"

अन्त में, उन्होंने जो परीक्षण भेजा वह सही था, उन्होंने बताया। 17 जनवरी को, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने लैण्ड्ट के प्रोटोकॉल को ऑनलाइन प्रकाशित किया जिससे यह संगठन द्वारा स्वीकार किया जाने वाला पहला परीक्षण बन गया।

लैण्ड्ट का अनुमान है कि उन्होंने फरवरी के अन्त तक 40 लाख परीक्षण किये हैं और तब से हर सप्ताह 15 लाख। हर किट-- जिसमें 100 परीक्षण की क्षमता होती है-- सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, यूरोप में ग्राहकों को कम से कम 13 हजार रुपये में बेची गयी। उन्होंने अपने दो बच्चों को लेबल लगाने और किट पैक करने के काम पर लगा दिया। उनकी पत्नी, जिन्होंने 15 वर्षों तक कम्पनी के लिए काम किया है, उन्हें भी इसमें शामिल कर लिया।

"मैं पैसे के लिए काम नहीं कर रहा हूँ। मैं पैसे लेता हूँ, हाँ, यह उचित है, हम सही करते हैं," उन्होंने कहा। "लेकिन अन्त में, हमें पैसे की जरूरत नहीं है।"

महामारी के प्रसार को रोकने के लिए परीक्षण बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। किसी व्यक्ति का परीक्षण यदि पोजीटिव पाया जाये और उसको निदान की जरूरत है, तो उसे दूसरों से अलग किया जा सकता है और उचित उपचार किया जा सकता है। जैसा कि डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक टेड्रोस अदनोम घेबियस ने इस महीने की शुरुआत में कहा था, "हमारे पास सभी देशों के लिए एक सरल सन्देश है-- परीक्षण, परीक्षण, परीक्षण।"

लेकिन लैण्ड्ट की सफलता के लगभग तीन महीने बाद भी, जब पहली बार इस रहस्यमयी बीमारी की खबरें आयी, दुनिया के अधिकांश देश अभी भी कोरोना वायरस के कारण होने वाली संक्रामक बीमारी कोविड-19 के परीक्षण के लिए जूझ रहे हैं। कुछ देशों के परीक्षण गलत हैं, दूसरे देशों को इसे बनाने में एक लम्बा समय लग रहा है और अब परीक्षण किट तैयार करने वाली कम्पनियाँ चेतावनी दे रही हैं कि उनके पास किट के निर्माण में काम आने वाली सामग्री की भारी कमी है।

यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है-- अगर परीक्षण इतनी जल्दी विकसित किया जा सकता है, तो कुछ देश अभी भी संघर्ष क्यों कर रहे हैं?

पहला प्रारूप

हाँगकांग में, वायरोलॉजिस्ट लियो पून भी जनवरी में हुए घटनाक्रम पर नजर रख रहे थे।

लैण्ड्ट की तरह, उन्होंने इस तरह फूट पडने वाली बीमारियों पर वर्षों तक काम किया। 2003 में, हाँगकांग विश्वविद्यालय (एचकेयू) में वैज्ञानिकों की उनकी टीम ने पता लगाया कि सार्स, जो अपनी मुख्य भूमि चीन में एक साल पहले उभरा था, वह एक कोरोना वायरस था।

उनका कहना है कि "चूँकि हम अतीत में इन सभी घटनाओं से गुजर चुके हैं, इसलिए हम जानते हैं कि कामकाजी नैदानिक परीक्षण करना कितना महत्त्वपूर्ण है," इसलिए हमने मूल रूप से जल्द से जल्द काम पूरा करने की कोशिश की।

लेकिन लैण्ड्ट के विपरीत, पून को वायरस के आनुवांशिक अनुक्रम का इन्तजार करना पड़ा।

शंघाई के फुडन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर झांग यॉन्जेन की ओर से अनुक्रमित जीनोम ओपन-सोर्स साइट (virological.org) पर पोस्ट किया गया। लेकिन यह 11 जनवरी तक नहीं हो पाया था। चीनी अधिकारियों ने 12 जनवरी को अनुक्रम की जानकारी साझा की।

झांग के अनुक्रम की जानकारी देने के बाद पून की टीम ने काम शुरू किया।

सबसे पहले उन्होंने नये कोरोना वायरस के आरएनये को देखा और यह तय किया कि उनका परीक्षण कोड के उन हिस्सों पर लक्षित होगा जो सार्स कोरोना वायरस के आरएनये के समान हैं-- ऐसे भाग जिनकी उत्परिवर्तन की सम्भावना कम होगी, क्योंकि वे वायरस के लिए आवश्यक हैं।

इसके बाद, उन्होंने परीक्षण का प्रारूप तैयार किया।

अनुक्रम प्राप्त करने के छह दिनों के भीतर ही, पून ने एक कार्यशील परीक्षण तैयार कर लिया।

लैण्ड्ट की किट की तरह, पून की किट भी सार्स और कोविड-19 का परीक्षण कर सकती है। पून का कहना है कि सार्स महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि अभी सार्स का प्रकोप नहीं है।

इसके बाद के महीनों में पून ने मिस्र और कम्बोडिया सहित दुनिया के 40 से अधिक देशों में मुफ्त में परीक्षण किट भेजे हैं। प्रत्येक देश को केवल एक किट मिलती है, जिसकी कीमत 38 हजार से 48 हजार रुपये के बीच होती है और इसका उपयोग 100 नमूनों का परीक्षण करने के लिए किया जा सकता है। कुछ देशों, जैसे नेपाल ने अपने नमूनों को हाँगकांग विश्वविद्यालय में परीक्षण के लिए भेजा है। मामला यह है कि कुछ देशों को "कुछ समय चाहिए ताकि वे खुद की किट बनाने के लिए संसाधन जुटा सकें।

लेकिन जबकि टीआईबी मोलबोल जैसी कम्पनियाँ अपनी किट से कुछ पैसा कमा ले रही हैं, पून और उनकी टीम ने अन्य परियोजनाओं से अपनी कोविड-19 परीक्षण किटों के लिए धन जुटाया है और यह महत्त्वपूर्ण है कि वे मुफ्त में काम कर रहे हैं।

"हमारे पास पैसा नहीं है, हमारे पास शून्य संसाधन हैं," पून ने कहा। "हम इसे अपनी सदिच्छा से वितरित कर रहे हैं।"

दूसरे लोग भी, मुफ्त में महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध करा रहे हैं। डब्ल्यूएचओ ने अपनी वेबसाइट पर सात प्रोटोकॉल सूचीबद्ध किये हैं। ये प्रोटोकॉल उन वैज्ञानिकों को महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश प्रदान कर रहे हैं, जो अपनी परीक्षण किट विकसित करना चाहते हैं। लैण्ड और पून दोनों के परीक्षण यहाँ विस्तार से दिये गये हैं।

पून ने जोर देते हुए कहा कि "ऐसे समय जब हम विश्वव्यापी स्वास्थ्य संकट का सामना कर रहे हैं, (बौद्धिक सम्पदा) मुद्दा नहीं है।" "इस काम को करने के लिए हमें कहाँ से प्रेरणा मिल रही है, इन उभरते संक्रमणों पर जल्दी से अपनी प्रतिक्रिया देने से, ताकि हम अधिक से अधिक लोगों के जीवन

को बचा सकें।"

शुरुआत में, चीन भी पीसीआर परीक्षण किट की कमी से जूझता दिखायी दिया-- इतना ही नहीं सरकारी मीडिया सिन्हुआ के अनुसार, चीन के विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने भी दूसरे किस्म के परीक्षण को विकसित करने के लिए अनुसंधान पर जोर दिया। कुछ लोगों को परीक्षण की प्रतीक्षा करने के लिए मजबूर किया गया था क्योंकि चीन में अचानक महामारी फैलने से वहाँ की स्वास्थ्य प्रणाली पर दबाव बहुत बढ़ गया था।

संयुक्त राज्य अमरीका में भी समस्याएँ थीं।

17 जनवरी को, जिस दिन डब्ल्यूएचओ ने लैण्ड्ट के प्रोटोकॉल को प्रकाशित किया, उसी दिन एक शीर्ष स्वास्थ्य अधिकारी ने कहा कि यूएस सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एण्ड प्रिवेंशन ने अपना परीक्षण डब्ल्यूएचओ द्वारा प्रकाशित प्रोटोकॉल का उपयोग किये बिना किया था।

एजेंसी ने 5 फरवरी को घोषणा की कि वह किट भेजना शुरू करेगी। इसके तुरन्त बाद कुछ प्रयोगशालाओं ने बताया कि परीक्षण काम नहीं कर रहे थे, जिसका अर्थ है कि किट को फिर से बनाना पड़ेगा। यह स्पष्ट नहीं है कि इनमें गड़बड़ी कैसे आ गयी।

वैज्ञानिकों को पहली बार निश्चित तौर पर पता नहीं होता कि उनका परीक्षण काम करेगा या नहीं। उदाहरण के लिए, अमरीका में निर्माण सम्बन्धित गड़बड़ी ने परीक्षण को पीछे ढकेल दिया-- अगर दुनिया में हर कोई उस एक परीक्षण पर भरोसा करता, तो इससे बड़ी समस्या पैदा हुई होती।

एक और मुद्दा है कि वायरस का इस तरह उत्परिवर्तित होना सम्भावित होता है कि एक किट अब आगे काम नहीं कर पाये। उदाहरण के लिए, अगर एक परीक्षण कोविड-19 के "एन" जीन को लक्षित करता है और वायरस इस तरह उत्परिवर्तित हो जाता है जिससे वह जीन अब मौजूद ही न हो, तो किट वायरस को नहीं पकड़ पाएगी।

रावलिंसन का कहना है कि यह भी विचारणीय है कि एक परीक्षण जो एक देश में काम करता है वह दूसरे देश में काम ही न कर पाये। मान लिया, अगर डेंगू बुखार होने के चलते परीक्षण कामयाब नहीं हुआ क्योंकि उस देश में डेंगू बुखार बड़े पैमाने पर फैल चुका था, तो परीक्षण गलत तरीके से नकारात्मक परिणाम की ऊँची दर दे सकता है।

परीक्षणों की संख्या अधिक होने से निर्माता या आपूर्ति श्रृंखला पर भी कम दबाव पड़ता है, क्योंकि विभिन्न आपूर्तिकर्ता विभिन्न सामग्रियों का उपयोग कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए, अमरीका में चिकित्सा अधिकारियों ने कहा है कि वे स्वैब, अभिकर्मकों और तरल पदार्थों के परिवहन के लिए सूक्ष्म नलिका जैसे उपकरण सहित परीक्षण आपूर्ति की कमी से जूझ रहे हैं। कमी के चलते मिनेसोटा और ओहियो को सबसे कमजोर रोगियों में भी परीक्षण को सीमित करने के लिए मजबूर होना पड़ा। जापानी परीक्षण वितरक कुराबो, जो एक अलग तरह से परीक्षण करता है, जो एंटीबॉडी की तलाश करता है, उसका दावा है कि इसके परीक्षण का परिणाम आने में केवल 15 मिनट लगते हैं-- और उसमें स्वैब नमूनों के बजाय रक्त के नमूनों का उपयोग किया जाता है।

परीक्षण की धीमी गति और पर्याप्त लोगों का परीक्षण नहीं करने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन दोनों की आलोचना की गयी है।

सीडीसी की वेबसाइट के अनुसार, यूएस सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एण्ड पब्लिक हेल्थ लैब ने 71,000 से अधिक नमूनों का परीक्षण किया है, हालाँकि उपराष्ट्रपति माइक पेंस ने रविवार को कहा कि अब तक 2,54,000 अमरीकियों का परीक्षण किया गया है। 22 मार्च तक, ब्रिटेन ने 72,818 लोगों का परीक्षण किया था।

दक्षिण कोरिया में सरकार ने ड्राइव-थ्रू लैब सहित परीक्षण को अविश्वसनीय रूप से सुलभ बना दिया है। इसने देश की 15. 2 करोड़ आबादी में से 3,00,000 से अधिक लोगों का परीक्षण किया है।

स्वास्थ्य मंत्रालय के स्वास्थ्य महानिदेशक एशले ब्लूमफील्ड के अनुसार, न्यूजीलैण्ड में, जहाँ 102 मामलों की पुष्टि हुई है, यूके में 5 प्रतिशत और अमरीका के 13 प्रतिशत की तुलना में वहाँ लगभग 1 से 2 प्रतिशत परीक्षण सकारात्मक आ रहे हैं।

पून का कहना है कि कई ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से कुछ देशों में परीक्षण धीमा हो गया है-- कुछ व्यवहार से जुडे हैं, तो कुछ प्रशासन से।

परीक्षण के लिए प्रशिक्षित कर्मचारी, सही उपकरण और सही सामग्री की आवश्यकता होती है-- उनमें से किसी एक की कमी परीक्षण को रोक सकती है।

अमरीका में एक फालतू नौकरशाही घेरा बन हुआ है। कुछ देशों में, उभरती बीमारियों से जुड़े विभिन्न नियमों के कारण परीक्षणों का उपयोग लगभग तुरन्त किया जा सकता है।

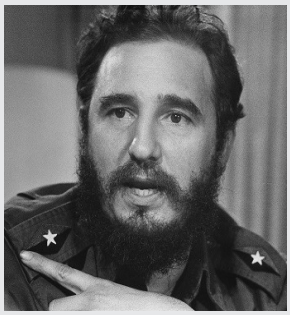

फिदेल कास्त्रो
सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के हिमायती

(यह लेख 21 दिसम्बर 2016 को डाउन-टू-अर्थ की वेबसाइट पर छप चुका है। लेकिन कोरोना महामरी के मौजूदा दौर में क्यूबा, फिदेल कास्त्रो और उनकी सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था फिर से चर्चा के केन्द्र में आ गयी है। इसी को ध्यान में रखते हुए उस लेख के हिन्दी अनुवाद को यहाँ साभार प्रस्तुत किया जा रहा है।)

फिदेल एलेजान्द्रो कास्त्रो रूज का निधन वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के लिए एक बहुत बड़ी क्षति है। लगभग आधी सदी तक फिदेल क्यूबा के नेता रहे। उन्होंने न केवल देश के भीतर स्वास्थ्य सेवा को बेहतर बनाने की अनुकरणीय पहल का नेतृत्व किया, बल्कि यह भी सुनिश्चित किया कि किसी भी प्राकृतिक आपदा के समय क्यूबा के डॉक्टर विकासशील देशों में पहुँचकर वहाँ की जनता को अपनी सेवाएँ दे सकें। फिदेल के नेतृत्व में क्यूबा के चिकित्सा वैज्ञानिकों ने बहुत सारी बीमारियों, जिनमें मेनिन्जाइटिस से लेकर कैंसर तक शामिल थे, उनके इलाज और बचाव के लिए अत्याधुनिक उपायों का विकास किया।

राजनीतिक घेरे से अलग, कुछ लोग क्यूबा की स्वास्थ्य-देखभाल प्रणाली की उत्कृष्ट सफलताओं पर विवाद करेंगे क्योंकि फिदेल और उनके साथियों ने 1959 में देश की क्रान्ति का नेतृत्व किया था। देश के राष्ट्रपति के रूप में फिदेल ने प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान के विकास को लगातार बढ़ावा दिया। इसमें सार्वजनिक अस्पतालों और समुदाय आधारित क्लीनिकों का व्यापक नेटवर्क स्थापित करना, निवारक और प्रचारक स्वास्थ्य उपायों पर जोर देना और डॉक्टरों और स्वास्थ्य पेशेवरों के प्रशिक्षण के लिए एक अनूठी प्रणाली का निर्माण करना शामिल है।

फिदेल ने 1980 के दशक से ही 'परिवार के डॉक्टर और नर्स' कार्यक्रम के सृजन का समर्थन किया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि क्यूबा के हर इलाके में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचा दी गयीं। देश की शिशु मृत्यु दर प्रति 1,000 में 4.2 है जो लातिन अमरीकी देशों में सबसे कम है और यहाँ तक कि अमरीका की शिशु मृत्यु दर से भी कम है, जबकि इसकी प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य देखभाल का खर्च अमरीकी खर्च के केवल एक छोटे अंश के बराबर है।

1963 से क्यूबा अपने डॉक्टरों और स्वास्थ्यकर्मियों को विकासशील देशों में आपातकालीन स्थिति आने पर वंचित आबादी की मदद के लिए सीमा से बाहर भेजता रहा है। आज भी, 30,000 से अधिक क्यूबाई स्वास्थ्य सेवाकर्मी, जिन्हें "सफेद कोट की सेना" कहा जाता है, वे 60 से अधिक देशों में काम कर रहे हैं। वे 2005 के भूकम्प के दौरान उत्तरी पाकिस्तान के उन सुदूर क्षेत्रों में पहुँचनेवाले पहले स्वास्थ्यकर्मी थे, जहाँ बहुत बड़ी क्षति हुई थी। 2,500 से अधिक क्यूबाई स्वास्थ्यकर्मियों ने बेहद कठिन परिस्थितियों में भी घायलों का इलाज और ऑपरेशन किया तथा उनकी जान बचायी। जब पश्चिमी अफ्रीका में इबोला महामारी फैली, उस समय क्यूबा की चिकित्सा टुकड़ी सभी देशों की चिकित्सा टीम में सबसे बड़ी विदेशी टीम थी, जिसने सिएरा लियोन, गिनी और लाइबेरिया में लोगों की देखभाल और इलाज किया। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की-मून ने क्यूबा के डॉक्टरों के बारे में कहा था, "वे आनेवालों में हमेशा पहले और छोड़नेवालों में आखिरी होते हैं। वे संकट खत्म होने के बाद भी बने रहते हैं। क्यूबा अपनी स्वास्थ्य सेवा प्रणाली पर गर्व कर सकता है, जो कई देशों के लिए एक मॉडल है।"

फिदेल के नेतृत्व में क्यूबा ने 1999 में 'लैटिन अमरीकन स्कूल ऑफ मेडिसिन' की स्थापना की, जिसने सौ से अधिक देशों के लगभग 30,000 चिकित्सकों को प्रशिक्षित किया है। अगर देखें तो आज दुनिया में क्यूबा ही ऐसा विकासशील देश है जिसने वैश्विक स्वास्थ्य के विकास में विशिष्ट योगदान देकर अपनी अलग छवि बनायी है। अब जबकि फिदेल हमारे बीच नहीं हैं, हमें विश्वास है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए उन्होंने जो नींव रखी है, वह लम्बे समय तक चलेगी और जनता के स्वास्थ्य के लिए प्रतिबद्ध लोगों को प्रेरित करती रहेगी।

-- अभय शुक्ला

कोरोना विशेष

तीसरी दुनिया : वायरस पर नियंत्रण के बहाने दुनिया को एबसर्ड थिएटर में बदलती सरकारें

-- आनन्द स्वरूप वर्मा

(इस प्रहसन का पटाक्षेप कोरोना संकट की समाप्ति के साथ होगा। सरकार को पता है कि उसकी सारी नाकामयाबियों पर कोरोना भारी पड़ जायेगा। बेरोजगारी, महंगाई, जीडीपी में कमी सबका ठीकरा कोरोना के सिर फूटेगा।)

लन्दन से प्रकाशित दैनिक 'इंडिपेण्डेंट' ने अपनी एक रिपोर्ट में इस बात पर चिन्ता जाहिर की है कि कई देशों की सरकारें कोरोना वायरस पर नियंत्रण के बहाने अपने उन कार्यक्रमों को पूरा करने में लग गयी हैं जिन्हें पूरा करने में जन प्रतिरोध या जनमत के दबाव की वजह से वे तमाम तरह की बाधाएँ महसूस कर रहीं थीं।

रिपोर्ट के अनुसार 16 मार्च को संयुक्त राष्ट्र से सम्बद्ध विशेषज्ञों के एक समूह ने एक बयान जारी कर इन देशों को चेतावनी दी कि ऐसे समय सरकारों को आपातकालीन उपायों का इस्तेमाल अपने राजनीतिक मकसद की पूर्ति के लिए नहीं करना चाहिए। बयान में कहा गया है- "हम स्वास्थ्य पर आये मौजूदा संकट की गम्भीरता को समझते हैं और यह मानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून गम्भीर खतरों के समय आपात अधिकारों के इस्तेमाल की इजाजत देता है, तो भी हम राज्यों को गम्भीरता के साथ याद दिलाना चाहते हैं कि कोरोना वायरस से निबटने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले किसी भी आपात कानून का इस्तेमाल सन्तुलित ढंग से और बगैर किसी भेदभाव के किया जाना चाहिए, इसका इस्तेमाल किसी समूह विशेष, अल्पसंख्यक समुदाय या व्यक्तियों के खिलाफ नहीं किया जाना चाहिए। स्वास्थ्य रक्षा की आड़ में इसे दमनात्मक कार्रवाइयों के लिए या मानव अधिकार की रक्षा में लगे लोगों की आवाज बन्द करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए."

19 मार्च को इजरायल की राजधानी यरूशलम में सैकड़ों की संख्या में लोगों ने प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू के जनतंत्र विरोधी उपायों के खिलाफ प्रदर्शन किया। 2 मार्च के चुनाव में पराजित होने के बाद नेतन्याहू की पार्टी (लिकुड पार्टी) के स्पीकर ने कोरोना वायरस का खतरा दिखाकर संसद का सत्र समाप्त कर दिया जबकि नवनिर्वाचित सांसदों की माँग थी कि कम से कम नये स्पीकर के चुनाव तक यह सत्र चलने दिया जाये। हद तो तब हो गयी जब नेतन्याहू ने देश की सुरक्षा एजेन्सी को आदेश दिया कि वह लोगों के मोबाइल फोन का एक गुप्त डेटाबेस तैयार करे ताकि यह पता चल सके कि किस व्यक्ति ने कोरोना वायरस संक्रमित व्यक्ति से सम्पर्क किया है। लोगों ने इसे निजता पर हमला कहा है।

वैसे, नेतन्याहू ने पूरे शहर में कोरोना वायरस के नाम पर लॉकडाउन की घोषणा कर दी है। लन्दन के अखबार 'गॉर्डियन' का कहना है कि 'परेशानियों से घिरे नेतन्याहू को उम्मीद है कि कोरोना वायरस से उन्हें वह सब हासिल हो जायेगा जो पिछले तीन चुनावों से हासिल नहीं हो सका था। उनके शासन की अवधि बढ़ जायेगी और वह जेल से बाहर रह सकेंगे।'

दरअसल भ्रष्टाचार के तीन आरोपों में नेतन्याहू को 17 मार्च को कोर्ट में पेश होना था लेकिन कोरोना की वजह से अदालतों ने सारी तारीखें अगले दो माह के लिए बढ़ा दीं।

ब्रिटेन में प्रधान मंत्री बोरिस जॉनसन ने दमनकारी 'कोरोना वायरस बिल' का सहारा लिया है जिसमें प्रावधान है कि पुलिस या आव्रजन अधिकारी ऐसे किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकते हैं जिसके बारे में शक हो कि वह कोरोना वायरस से संक्रमित है। लोगों को भय है कि इस कानून का सहारा लेकर चीनी मूल के ब्रिटिश नागरिकों को वैसे ही परेशान किया जा सकता है जैसे 9/11 के बाद ब्रिटिश मुस्लिम लोगों को किया गया था।

अमरीका में ट्रम्प ने एक 'अदृश्य दुश्मन' के खिलाफ युद्ध का आह्वान करते हुए 13 मार्च को नेशनल इमरजेंसी की घोषणा की और खुद को 'वार टाइम प्रेसीडेंट' के रूप में पेश किया। फिर एबीसी न्यूज ने एक 'पोल' (जनमत संग्रह) किया और बताया कि 55 प्रतिशत लोगों ने कोरोना से निपटने में ट्रम्प का समर्थन किया है। इससे महज एक हफ्ते पहले तक ट्रम्प के समर्थन में महज 43 प्रतिशत लोग थे। कोरोना संकट ने अमरीकी चुनाव को फिलहाल हाशिये पर डाल दिया है और ट्रम्प को अपनी वापसी दिखायी देने लगी है। 'युद्ध' के दौरान कोई क्यों नेतृत्व परिवर्तन चाहेगा!

मध्य अमरीकी देश होण्डुरास के मानव अधिकार संगठनों का आरोप है कि कोरोना वायरस पर रोक लगाने की आड़ में सरकार ने अपनी तानाशाही स्थापित करने पर ज्यादा जोर दिया है। देश में कर्फ्यू

लगा दिया गया है और आपातकाल की घोषणा कर दी गयी है। सड़कों पर सेना गश्त लगा रही है और जो लोग सामान खरीदने जा रहे हैं उन्हें पकड़ कर जेल में डाला जा रहा है। राष्ट्रपति ने एक हुक्मनामा जारी कर दिया है कि जो कोई भी कर्फ्यू का उल्लंघन करेगा उसे छह महीने से दो साल तक जेल में रहना पड़ सकता है। कुछ संगठनों ने यह भी आरोप लगाया है कि कोरोना के नाम पर जो इमरजेंसी बजट का प्रावधान किया गया है उसमें होने वाले खर्च के मॉनिटरिंग की कोई व्यवस्था न होने से घोटाले की आशंका बढ़ गयी है।

17 मार्च को मिस्र ने गॉर्डियन के पत्रकार की मान्यता इसलिए रद्द कर दी क्योंकि उसने कोरोना संक्रमित मरीजों की संख्या के बारे में सरकार के दावों पर सवाल उठाया था। वैसे, अफ्रीका के सभी 54 देशों में कोरोना फैल चुका है। सबसे बुरी हालत दक्षिण अफ्रीका की है। अफ्रीका के और खास तौर पर, सब-सहारन अफ्रीका के देशों में केवल तीन प्रतिशत आबादी 65 वर्ष से ऊपर के लोगों की है। इससे लगता है कि अफ्रीकी देशों में कोरोना के कारण मरने वालों की तादाद अपेक्षाकृत कम रहेगी।

हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में 26 मार्च तक कोरोना मरीजों की संख्या 1100 पार कर चुकी थी और आठ मौतें हो चुकी थीं। यहाँ सरकारी आदेश को नकारते हुए मुफ्ती मुनीब उर रहमान व कई अन्य मुफ्तियों ने एक प्रेस कांफ्रेंस में कहा कि जो भी कोरोना संदिग्ध या अस्वस्थ नहीं है, वह मस्जिदों में आएगा और पांचों वक्त की फर्ज नमाजें व जुमे की नमाज सामूहिक रूप से अदा करेगा। इस पर तीखी टिप्पणी करते हुए पाकिस्तान के विज्ञान व प्रौद्योगिकी मंत्री फवाद चौधरी ने कहा है कि धार्मिक तत्वों की जहालत, हठधर्मिता व जानकारी के अभाव की वजह से पाकिस्तान में कोरोना वायरस की महामारी फैली। फवाद चौधरी ने अपने ट्वीट में कहा कि 'ये (कट्टर धार्मिक तत्व) हमसे कहते हैं कि यह (कोरोना) अल्लाह का अजाब है, इसलिए तौबा करो जबकि सच तो यह है कि सबसे बड़ा अजाब जहालत है जो इनकी शक्ल में हमारे सिरों पर सवार है 'जाहिल को विद्वान का दर्जा देना बड़ी तबाही है।'

फिर भी पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान ने अपने देश में लॉकडाउन की घोषणा नहीं की। राष्ट्र के नाम अपने एक सन्देश में उन्होंने कहा कि अगर उनके देश की हालत फ्रांस, अमरीका या जर्मनी जैसी होती तो वह भी अपने यहाँ लॉकडाउन लागू कर देते। उन्होंने कहा कि 'पच्चीस फीसदी पाकिस्तानी गुरबत की लकीर से नीचे हैं जो दो वक्त की रोटी नहीं खा सकते। आज अगर मैं लॉकडाउन करता हूँ तो इसका मतलब मेरे मुल्क के रिक्शा चलाने वाले, रेहड़ी वाले, छोटे दुकानदार, दिहाड़ी वाले, ये सारे घरों में बन्द हो जायेंगे और हमारी इतनी कैपेसिटी नहीं है कि हम सबको खाना पहुँचा सकें।' ऐसी हालत में उन्होंने लोगों से अपील की कि वे खुद ही उन एहतियातों का पालन करें जो बतायी जा रही हैं।

हमारे अपने देश में सब कुछ एक एबसर्ड थियेटर की तरह चल रहा है। लॉकडाउन है और इसका पालन/उल्लंघन दोनों चल रहा है, लोग डरे भी हैं और निश्चिन्त भी, पुलिस लोगों को बेरहमी से पीट भी रही है और कहीं कहीं करुणानिधान के अवतार में पटरी पर पड़े भूखों को खाना भी खिला रही है। प्रधानमंत्री की अपील पर पहला लॉकडाउन 14 दिन का था जिसका लोगों ने थाली और ताली बजा कर समापन किया लेकिन 15वाँ दिन शुरू होते ही सोशल डिस्टैंसिंग की पीएम की अपील की ऐसी तैसी करते हुए, घड़ियाल-घंटे बजाते हुए एक हुजूम सड़क पर निकल आया, वन्दे मातरम और जय श्रीराम का उद्घोष करते हुए। भाजपाइयों ने इसे पार्टी का कार्यक्रम बना दिया।

इससे पहले हिन्दू महासभा ने 14 मार्च को दिल्ली में गोमूत्र पार्टी का आयोजन किया। कहा गया कि गोमूत्र से कोरोना भाग जायेगा। इसमें लगभग 200 लोग शामिल हुए। फिर इसी संगठन के अध्यक्ष चक्रपाणि ने कहा कि हम माँग करते हैं कि भारतीय धरती पर उतरने वाले किसी भी व्यक्ति को गोमूत्र पीने और गाय के गोबर में स्नान करने के बाद ही हवाई अड्डे से बाहर आने की अनुमति दी जानी चाहिए। जहालत का नमूना केन्द्रीय मंत्री रामदास अठावले ने भी पेश किया जब उन्होंने मुम्बई में चीनी महावाणिज्य दूत और बौद्ध भिक्षुओं के साथ 'गो कोरोना, गो कोरोना' के नारे लगाए।

इस ऐबसर्ड थियेटर का पटाक्षेप कोरोना संकट की समाप्ति के साथ होगा। सरकार को पता है कि उसकी सारी नाकामयाबियों पर कोरोना भारी पड़ जायेगा। बेरोजगारी, महंगाई, जीडीपी में कमी सबका ठीकरा कोरोना के सिर फूटेगा।

तेलंगाना के मुख्यमंत्री ने धमकी दी कि लॉकडाउन का उल्लंघन करने वालों को गोली मारने का आदेश जारी करना पड़ेगा लेकिन विडम्बना देखिए कि इस बयान के चार-पांच दिन बाद ही दिल्ली के आनन्द विहार बस टर्मिनल के आस-पास बीस से तीस हजार लोगों का सैलाब उमड़ आया। लगभग ऐसी ही स्थिति लखनऊ में भी देखने को मिली। यह न तो कोई विद्रोह था और न कोई साजिश, यह सत्ता की संवेदनहीनता और उपेक्षा के शिकार, समाज के हाशिये पर पड़े और जिन्दगी की जद्दोजहद में लगे उन लोगों के जीने की ललक की अभिव्यक्ति थी जो हर रोज कमाते और खाते थे, जिनके पास कोई जमा पूँजी नहीं थी और जिन्हें लगा कि उन्हें और उनके परिवार को कोरोना से पहले भुखमरी का ही शिकार बन जाना पड़ेगा।

'दि शॉक डाक्ट्रिन' की लेखिका और राजनीतिक विश्लेषक नाओमी क्लेन ने एक जगह लिखा है कि 'अगर इतिहास से हमें कोई सीख मिलती है तो वह यह कि 'शॉक' के क्षण बेहद अस्थिर होते हैं। ऐसे समय या तो हमारे पाँव उखड़ जाते हैं, सब कुछ उच्च वर्ग द्वारा हथिया लिया जाता है और फिर हम दशकों तक उसकी कीमत चुकाते रहते हैं या हमें आगे ले जाने वाली ऐसी कामयाबियाँ मिलती हैं जो कुछ ही हफ्तों पहले तक नामुमकिन लगती थीं। यह दहशत में आने का समय नहीं है।'

(मीडिया विजिल से साभार)

कोरोना विशेष

कोरोना वायरस, सर्विलांस राज और राष्ट्रवादी अलगाव के खतरे

-- युवल नूह हरारी

दुनिया भर के इनसानों के सामने एक बड़ा संकट है। हमारी पीढ़ी का शायद यह सबसे बड़ा संकट है। आने वाले कुछ दिनों और सप्ताहों में लोग और सरकारें जो फैसले करेंगी, उनके असर से दुनिया का हुलिया आने वाले सालों में बदल जायेगा। ये बदलाव सिर्फ स्वास्थ्य सेवा में ही नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति में भी होंगे। हमें तेजी से निर्णायक फैसले करने होंगे। हमें अपने फैसलों के दीर्घकालिक परिणामों के बारे में सचेत रहना होगा। जब हम विकल्पों के बारे में सोच रहे हों तो हमें खुद से सवाल पूछना होगा, केवल यही सवाल नहीं कि हम इस संकट से कैसे उबरेंगे, बल्कि यह सवाल भी कि इस तूफान के गुजर जाने के बाद हम कैसी दुनिया में रहेंगे। तूफान गुजर जायेगा, जरूर गुजर जायेगा, हममें से ज्यादातर जिन्दा बचेंगे लेकिन हम एक बदली हुई दुनिया में रह रहे होंगे।

इमरजेंसी में उठाये गये बहुत सारे कदम जिन्दगी का हिस्सा बन जायेंगे। यह इमरजेंसी की फितरत है, वह ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को फास्ट फॉर्वर्ड कर देती है। ऐसे फैसले जिन पर आम तौर पर वर्षों तक विचार-विमर्श चलता है, इमरजेंसी में वे फैसले कुछ घंटों में हो जाते हैं। अधकचरी और खतरनाक टेक्ननोलॉजी को भी काम पर लगा दिया जाता है क्योंकि कुछ न करने के खतरे कहीं बड़े हो सकते हैं। पूरे देश के नागरिक विशाल सामाजिक प्रयोगों के चूहों में तब्दील हो जाते हैं। मसलन, क्या होगा जब सब लोग घर से काम करेंगे और सिर्फ दूर से संवाद करेंगे? क्या होगा जब सारे शिक्षण संस्थान ऑनलाइन हो जायेंगे? आम दिनों में सरकारें, व्यवसाय और संस्थान ऐसे प्रयोगों के लिए तैयार नहीं होंगे, लेकिन यह आम समय नहीं है। संकट के इस समय में हमें दो बहुत अहम फैसले करने हैं। पहला तो हमें सर्वाधिकार सम्पन्न निगरानी व्यवस्था (सर्विलेंस राज) और नागरिक सशक्तीकरण में से एक को चुनना है। दूसरा चुनाव हमें राष्ट्रवादी अलगाव और वैश्विक एकजुटता के बीच करना है।

महामारी को रोकने के लिए पूरी आबादी को तय नियमों का पूरी तरह पालन करना होता है। इसे हासिल करने के दो मुख्य तरीके हैं। पहला तरीका यह है कि सरकार लोगों की निगरानी करे और जो लोग नियम तोड़ें उन्हें दंडित करे। आज की तारीख में मानवता के इतिहास में टेक्नोलॉजी ने इसे पहली बार सम्भव बना दिया है कि हर नागरिक की हर समय निगरानी की जा सके। 50 साल पहले कोई खुफिया एजेंसी अपने करोड़ों नागरिकों की 24 घंटे निगरानी नहीं कर पाती थी। वे इनसानी एजेंटों और विश्लेषकों पर निर्भर थी और हर आदमी के पीछे एक एजेंट लगाना सम्भव नहीं था। अब इनसानी जासूस की जरूरत नहीं, हर जगह मौजूद सेंसरों, एल्गोरिद्म और कैमरों पर सरकारें निर्भर कर सकती हैं।

कोरोना वायरस का मुकाबला करने के लिए बहुत सारी सरकारों ने निगरानी के नये उपकरण और व्यवस्थाएँ लागू कर दी हैं। इसमें सबसे खास मामला चीन का है। लोगों के स्मार्टफोन को गहराई से मॉनिटर करके, लाखों-लाख कैमरों के जरिए, चेहरे पहचानने वाली टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करके, लोगों के शरीर का तापमान लेकर, बीमार लोगों की रिपोर्टिंग को सख्त बनाकर संक्रमित लोगों की पहचान की गयी। यही नहीं, उनके आने-जाने को ट्रैक किया गया ताकि पता लग सके कि वे किन लोगों से मिले-जुले हैं। ऐसे मोबाइल ऐप भी हैं जो संक्रमण की आशंका वाले लोगों की पहचान करके नागरिकों को आगाह करते रहते हैं कि उनसे दूर रहें।

ऐसी टेक्नोलॉजी चीन तक ही सीमित नहीं है। इसराइल के प्रधानमंत्री बिन्यामिन नेतन्याहू ने कोराना संक्रमण रोकने के लिए उस तकनीक को लगाने का आदेश दिया है जिसे अब तक सिर्फ आतंकवाद के खिलाफ इस्तेमाल किया जा रहा था। जब संसदीय समिति ने इसकी अनुमति देने से इनकार किया तो नेतन्याहू ने उन्हें दरकिनार करते हुए इमरजेंसी पावर के जरिए क्लियरेंस दे दी।

आप कह सकते हैं कि इसमें नया कुछ भी नहीं है। हाल के वर्षों में सरकारें और बड़ी कम्पनियाँ लोगों को ट्रैक, मॉनिटर और मैनिप्युलेट करने के लिए अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करती रही हैं। लेकिन अगर हम सचेत नहीं हुए तो यह महामारी

सरकारी निगरानी के मामले में एक मील का पत्थर साबित होगी। उन देशों में ऐसी व्यापक निगरानी व्यवस्था को लागू करना आसान हो जायेगा जो अब तक इससे इनकार करते रहे हैं। यही नहीं, यह "ओवर द स्किन" निगरानी की जगह "अण्डर द स्किन" निगरानी में बदल जायेगा।

अब तक तो यह होता है कि जब आपकी ऊँगली स्मार्टफोन से एक लिंक पर क्लिक करती है तो सरकार जानना चाहती है कि आप क्या देख-पढ़ रहे हैं। लेकिन कोरोना वायरस के बाद अब इंटरनेट का फोकस बदल जायेगा। अब सरकार आपकी ऊँगली का तापमान और चमड़ी के नीचे का ब्लड प्रेशर भी जानने लगेगी।

सर्विलेंस के मामले में दिक्कत यही है कि हममें से कोई पक्के तौर पर नहीं जानता कि हम पर किस तरह की निगरानी रखी जा रही है और आने वाले वर्षों में उसका रूप क्या होगा। सर्विलेंस टेक्नोलॉजी तूफानी रफ़्तार से आगे बढ़ रही है, दस साल पहले तक जो साइंस फिक्शन की बात लगती थी, वह आज पुरानी खबर है। सोचने की सुविधा के लिए मान लीजिए कि कोई सरकार अपने नागरिकों से कहे कि सभी लोगों को एक बायोमेट्रिक ब्रेसलेट पहनना अनिवार्य होगा जो शरीर का तापमान और दिल की धड़कन को 24 घंटे मॉनिटर करता रहेगा। ब्रेसलेट से मिलने वाला डेटा सरकारी एल्गोरिद्म में जाता रहेगा और उसका विश्लेषण होता रहेगा। आपको पता लगे कि आप बीमार हैं, इससे पहले सरकार को मालूम होगा कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है। सिस्टम को यह भी पता होगा कि आप कहाँ-कहाँ गये, किस-किस से मिले, इस तरह संक्रमण की चेन को छोटा किया जा सकेगा, या कई बार तोड़ा जा सकेगा। इस तरह का सिस्टम किसी संक्रमण को कुछ ही दिनों में खत्म कर सकता है, सुनने में बहुत अच्छा लगता है, है न?

अब इसके खतरे को समझिए, यह एक खौफनाक सर्विलेंस राज की शुरूआत करेगा। मिसाल के तौर पर, अगर किसी को यह पता हो कि मैंने फॉक्स न्यूज की जगह सीएनएन के लिंक पर क्लिक किया है तो वह मेरे राजनीतिक विचारों और यहाँ तक कि कुछ हद तक मेरे व्यक्तित्व को समझ पाएगा। लेकिन अगर आप एक वीडियो क्लिप देखने के दौरान मेरे शरीर के तापमान, ब्लड प्रेशर और हार्ट रेट को मॉनिटर कर रहे हों तो आप जान सकते हैं कि मुझे किन बातों पर गुस्सा, हँसी या रोना आता है।

यह याद रखना चाहिए कि गुस्सा, खुशी, बोरियत और प्रेम एक जैविक प्रक्रिया हैं, ठीक बुखार और खाँसी की तरह। जो टेक्नोलॉजी खाँसी का पता लगा सकती है, वही हँसी का भी। अगर सरकारों और बड़ी कम्पनियों को बड़े पैमाने पर हमारा डेटा जुटाने की आजादी मिल जायेगी तो वे हमारे बारे में हमसे बेहतर जानने लगेंगे। वे हमारी भावनाओं का अन्दाजा पहले ही लगा पाएँगे, यही नहीं, वे हमारी भावनाओं से खिलवाड़ भी कर पाएँगे, वे हमें जो चाहें बेच पाएँगे--चाहे वह एक उत्पाद हो या कोई नेता। बायोमेट्रिक डेटा हार्वेस्टिंग के बाद कैम्ब्रिज एनालिटिका पाषाण युग की टेक्नोलॉजी लगने लगेगी। कल्पना कीजिए, किसी तानाशाह के देश में 2030 तक हर नागरिक को बायोमेट्रिक ब्रेसलेट पहना दिया गया है। महान नेता का भाषण सुनने के बाद जिनका ब्रेसलेट बताएगा कि उन्हें गुस्सा आ रहा था, उनका तो हो गया काम तमाम।

आप कह सकते हैं कि बायोमेट्रिक सर्विलेंस इमरजेंसी से निबटने की एक अस्थायी व्यवस्था होगी। जब इमरजेंसी खत्म हो जायेगी तो इसे हटा दिया जायेगा, लेकिन अस्थायी व्यवस्थाओं की एक गन्दी आदत होती है कि वे इमरजेंसी के बाद भी बनी रहती हैं, वैसे भी नयी इमरजेंसी का खतरा बना रहता है। मिसाल के तौर पर मेरे अपने देश इसराइल में 1948 में आजादी की लड़ाई के दौरान इमरजेंसी लगायी गयी थी, जिसके तहत बहुत सारी अस्थायी व्यवस्थाएँ की गयी थीं, प्रेस सेंसरशिप से लेकर पुडिंग बनाने के लिए लोगों की जमीन जब्त करने को सही ठहराया गया था। जी, पुडिंग बनाने के लिए, मैं मजाक नहीं कर रहा। आजादी की लड़ाई कब की जीती जा चुकी है, लेकिन इसराइल ने कभी नहीं कहा कि इमरजेंसी खत्म हो गयी है। 1948 के अनेक "अस्थायी कदम" अब तक लागू हैं, उन्हें हटाया नहीं गया। शुक्र है कि 2011 में पुडिंग बनाने के लिए जमीन छीनने का विधान खत्म किया गया।

जब कोरोना वायरस का संक्रमण पूरी तरह खत्म हो जायेगा तो भी डेटा की भूखी सरकारें बायोमेट्रिक सर्विलेंस को हटाने से इनकार कर सकती हैं, सरकारों की दलील हो सकती है कि कोरोना वायरस का दूसरा दौर आ सकता है, या अफ्रीका में इबोला दोबारा फैल रहा है, या कुछ और.. .आप समझ सकते हैं। हमारी निजता को लेकर एक बहुत जोरदार लड़ाई पिछले कुछ सालों से छिड़ी हुई है। कोरोना वायरस का संक्रमण इस लड़ाई का निर्णायक मोड़ हो सकता है, जब लोगों को निजता और स्वास्थ्य में से एक को चुनना पड़ा तो जाहिर है कि वे स्वास्थ्य को चुनेंगे।

दरअसल, लोगों से सेहत और निजता में से एक को चुनने के लिए कहना ही समस्या की जड़ है क्योंकि ये सही नहीं है। हम निजता और सेहत दोनों एक साथ पा सकते हैं। हम सर्वाधिकार सम्पन्न निगरानी व्यवस्था को लागू करके नहीं, बल्कि नागरिकों के सशक्तीकरण के जरिये कोरोना वायरस का फैलना रोक सकते हैं। हाल के सप्ताहों में कोरोना वायरस का फैलाव रोकने के मामले में दक्षिण कोरिया, ताइवान और सिंगापुर ने अच्छी मिसालें पेश की हैं। इन देशों ने कुछ ट्रैकिंग एप्लीकेशनों का इस्तेमाल तो किया है लेकिन उन्होंने व्यापक पैमाने पर टेस्ट कराये हैं, ईमानदारी से जानकारी

दी है, सजग जनता के ऐच्छिक सहयोग पर निर्भर कर रहे हैं।

केन्द्रीकृत निगरानी और कड़ी सजा एक उपयोगी दिशा-निर्देश को लागू कराने के लिए जरूरी नहीं हैं। जब लोगों को वैज्ञानिक तथ्य बताये जाते हैं, जब लोग यकीन करते हैं कि अधिकारी सच बोल रहे हैं, तो अपने-आप सही कदम उठाते हैं, बिग ब्रदर की घूरती निगाहों की जरूरत नहीं होती। अपनी प्रेरणा से सजग जनसंख्या जब कोई काम करती है तो वह अधिक प्रभावी होता है, न कि पुलिस के जोर पर उदासीन जनता से कराया गया प्रयास।

मिसाल के तौर पर, साबुन से हाथ धोना। यह मानव के साफ-सफाई के इतिहास की एक बड़ी तरक्की है। यह साधारण काम हर साल लाखों जानें बचाता है, अब तो हम इसे आम बात मानते हैं लेकिन 19वीं सदी के वैज्ञानिकों ने साबुन से हाथ धोने की अहमियत को ठीक से समझा, उससे पहले तक डॉक्टर और नर्स भी एक ऑपरेशन के बाद, दूसरा ऑपरेशन करते थे, बिना हाथ धोये। आज अरबों लोग रोज साबुन से हाथ धोते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें पुलिस का डर है, बल्कि वे तथ्यों को समझते हैं। मैंने बैक्टीरिया और वायरस के बारे में सुना है इसलिए मैं साबुन से हाथ धोता हूँ, मैं जानता हूँ कि साबुन उन बीमार करने वाले जीवाणुओं और विषाणुओं को खत्म कर देता है।

लोग बात मानें और सहयोग करें इसके लिए विश्वास बहुत जरूरी है। लोगों का विज्ञान में विश्वास होना चाहिए, सरकारी अधिकारियों में विश्वास होना चाहिए और मीडिया में विश्वास होना चाहिए। पिछले कुछ सालों में गैर-जिम्मेदार नेताओं ने जान-बूझकर विज्ञान, सरकारी संस्थाओं और मीडिया से जनता का विश्वास डिगाया है। ये गैर-जिम्मेदार नेता अधिनायकवाद का रास्ता अपनाने को लालायित हैं, उनकी दलील होगी कि जनता सही काम करेगी इसका यकीन नहीं किया जा सकता।

आम तौर पर जो विश्वास वर्षों में टूटा है वह रातोरात कायम नहीं होता लेकिन यह आम समय नहीं है। संकट के समय दिमाग बहुत जल्दी बदल जाता है। आपका अपने भाई-बहनों के साथ बुरी तरह झगड़ा होता है लेकिन संकट के समय आप अचानक महसूस करते हैं कि दोनों के बीच कितना स्नेह और विश्वास है, आप मदद के लिए तैयार हो जाते हैं। एक सर्विलेंस राज बनाने की जगह, विज्ञान, सरकारी संस्थानों और मीडिया में जनता के विश्वास को बहाल करने के लिए काम होना चाहिए। हमें नयी टेक्नोलॉजी का पक्के तौर पर इस्तेमाल करना चाहिए लेकिन इनसे नागरिकों को ताकत मिलनी चाहिए। मैं अपने शरीर का ताप और ब्लड प्रेशर मापे जाने के पक्ष में हूँ, लेकिन उस डेटा का इस्तेमाल सरकार को सर्वशक्तिमान बनाने के लिए हो, इसके पक्ष में नहीं हूँ। डेटा का इस्तेमाल मैं सजग निजी फैसलों के लिए करूँ और सरकार को उसके फैसलों के लिए भी जिम्मेदार ठहरा सकूँ।

अगर मैं अपनी सेहत की 24 घंटे निगरानी करूँगा तो मैं समझ पाऊँगा कि कब मैं दूसरों के लिए खतरा बन गया हूँ और ठीक होने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, कैसी आदतें सेहत के लिए अपनानी चाहिए। अगर कोरोना वायरस के फैलाव के बारे में मैं विश्वसनीय आँकड़ों को पा सकूँगा और उनका विश्लेषण कर सकूँगा तो मैं निर्णय कर पाऊँगा कि सरकार सच बोल रही है या नहीं और महामारी से निबटने के लिए सही तरीके अपना रही है या नहीं। जब भी हम निगरानी व्यवस्था की बात करते हैं तो याद रखिये कि उसी टेक्नोलॉजी से सरकार की भी निगरानी हो सकती है, जिससे जनता की होती है।

कोरोना वायरस का फैलाव नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का बड़ा इम्तहान है। आने वाले दिनों में हम सभी को वैज्ञानिक डेटा और स्वास्थ्य विशेषज्ञों पर विश्वास करना चाहिए, न कि बेबुनियाद कहानियों और अपना उल्लू सीधा करने में लगे नेताओं की बातों पर। अगर हमने सही फैसले नहीं किये तो हम अपनी सबसे कीमती आजादियाँ खो देंगे, हम यह मान लेंगे कि अपनी सेहत की रक्षा करने के लिए यही सही फैसला है।

अब दूसरा अहम चुनाव, जो हमें राष्ट्रवादी अलगाव और वैश्विक एकजुटता के बीच करना है। यह महामारी और उसका अर्थव्यवस्थाओं पर असर एक वैश्विक संकट है। यह संकट वैश्विक सहयोग से ही मिटाया जा सकेगा। सबसे पहले तो वायरस से निबटने के लिए दुनिया भर के देशों को सूचना का आदान-प्रदान करना होगा। यही बात इनसानों को वायरसों के ऊपर बढ़त दिला सकती है। अमरीका का कोरोना वायरस और चीन का कोरोना वायरस इस बात पर सोच-विचार नहीं कर सकते कि लोगों के शरीरों में कैसे घुसा जाये। लेकिन चीन अमरीका को कुछ उपयोगी बातें बता सकता है, इटली में मिलान का डॉक्टर सुबह जो जानकारी पाता है, वह शाम तक तेहरान में लोगों की जान बचा सकती है। कई नीतियों को लेकर अगर ब्रिटेन की सरकार असमंजस में है तो वह कोरिया की सरकार से बात कर सकती है जो करीब एक महीने पहले ऐसे ही दौर से गुजरे हैं। लेकिन ऐसा होने के लिए वैश्विक बंधुत्व और एकजुटता की भावना होनी चाहिए।

देशों को खुलकर जानकारियों का लेन-देन करना होगा, विनम्रता से सलाह माँगनी होगी और जो कुछ दूसरे देंगे उस पर विश्वास करने लायक माहौल बनाना होगा। मेडिकल किट के उत्पादन और वितरण के लिए वैश्विक स्तर पर प्रयास करने होंगे। अपने देश में ही उत्पादन करने और उपकरणों को जमा करने की कोशिश की जगह, समन्वय के साथ किया गया वैश्विक प्रयास

अधिक कारगर होगा। जैसे कि लड़ाइयों के समय दुनिया के देश अपने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर देते हैं, वैसे कोरोना वायरस से लड़ाई के दौरान जरूरी चीजों के उत्पादन को हमें राष्ट्रीय की जगह, मानवीय बनाना चाहिए। एक अमीर देश जहाँ कोरोना संक्रमण कम है, उसे ऐसे देशों में उपकरण भेजने चाहिए जहाँ संक्रमण के मामले ज्यादा हैं। ऐसी ही कोशिश डॉक्टरों की तैनाती के मामले में भी होनी चाहिए।

अर्थव्यवस्थाओं को सम्भालने के लिए भी एक वैश्विक नीति बननी चाहिए, हर देश अपने हिसाब से चलेगा तो संकट और गहराता जायेगा। इसी तरह यात्राओं को लेकर एक सहमति बननी चाहिए, लम्बे समय तक यात्रा पर पूरी तरह रोक से बहुत नुकसान होगा, कोरोना के खिलाफ लड़ाई भी कमजोर होगी क्योंकि वैज्ञानिकों, डॉक्टरों और सप्लाई को भी दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने में जाना होगा। प्री-स्क्रीनिंग के साथ यात्राओं को शुरू करने पर सहमति बनायी जा सकती है।

लेकिन अफसोस कि इनमें से कुछ भी नहीं हो रहा है, दुनिया भर की सरकारें एक सामूहिक लकवे की सी हालत में हैं। दुनिया के सबसे अमीर सात देशों के नेताओं की बैठक अब जाकर पिछले हफ्ते टेली-कॉन्फ्रेंसिंग से हुई है जिसमें ऐसा कोई प्लान सामने नहीं रखा गया जिससे दुनिया के देश एकजुट होकर कोरोना से लड़ सकें।

2008 के आर्थिक संकट और 2014 में इबोला फैलने पर अमरीका ने ग्लोबल लीडर की भूमिका निभायी थी, लेकिन इस बार अमरीकी नेतृत्व ने यह काम टाल दिया है, ऐसा लग रहा है कि मानवता के भविष्य से अधिक चिन्ता ग्रेटनेस ऑफ अमरीका की है। मौजूदा नेतृत्व ने अपने सबसे निकट साझीदारों को भी छोड़ दिया है। यूरोपीय संघ के साथ कोई सहयोग नहीं हो रहा और जर्मनी के साथ टीके को लेकर अजीब स्कैण्डल खड़ा हो गया।

हमें चुनना है कि हम वैश्विक एकजुटता की तरफ जायेंगे या राष्ट्रवादी अलगाव की तरफ। अगर हम राष्ट्रवादी अलगाव को चुनेंगे, तो यह संकट अधिक नुकसान करके देर से टलेगा और भविष्य में भी ऐसे संकट आते रहेंगे। लेकिन हम वैश्विक एकजुटता को चुनते हैं तो यह कोरोना के खिलाफ हमारी बड़ी जीत तो होगी ही, साथ ही हम भविष्य के संकटों से निबटने के लिए मजबूत होंगे, ऐसे संकट जो 21वीं सदी में धरती से मानव जाति का अस्तित्व ही मिटा सकते हैं।

अनुवाद-- राजेश प्रियदर्शी

'कोरोना लॉकडाउन' के समय देश-काल

'कोरोना लॉकडाउन' काल में भी जाति-भेद और वर्ग-भेद का खेल खेला गया। उच्च वर्ग को सबसे सुरक्षित, आरामदायक और सेनेटाइज्ड माहौल में रखा गया। खास और सामान्य मध्यम वर्ग को भी परिवार, सोशल डिस्टेंसिंग और राष्ट्रवाद के नाम पर ठीक-ठाक सुविधा देकर 'क्वारेन्टाइन' (अलग-थलग) रखा गया। कोरोना की मार से बेहाल देशों में रह रहे अमीरजादों और उनके खानदानों को चार्टेड प्लेन से लाया गया। हवाई अड्डों पर विमानों की लगातार आमदरफ्त बनी रही। अरबों का वारा-न्यारा होता रहा और गरीब मेहनतकश और दीन-हीन लोगों को दर-दर भटकने और मरने के लिए छोड़ दिया गया। हवाई सुविधाओं की बात तो छोड़िए उनके लिए परिवहन के अन्य साधन भी बन्द कर दिये गये। थक-हार कर अपने घर की ओर रोटी, पानी और अपनों को देखने की चाह में वे पाँव-पाँव चलने लगे। पुलिस ने उन्हें मारा-पीटा-खदेड़ा। वे पिटते रहे, फिर भी चलते रहे। चन्द दयालु लोगों और सामाजिक संस्थाओं ने सहारा दिया। रोटी-पानी दिया। दया और क्रूरता झेलते हुए कुछ घर पहुँचे और कुछ अभागे जान से हाथ धो बैठे। जीविकाविहीन ऐसे ही अभागों के लिए महाकवि तुलसीदास ने 'कवितावली' में लिखा था--

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बली,
बनिक को बनिज, न चाकर को न चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सौं कहाँ जाई, का करी?

कोरोना विशेष

लातिन अमरीका के मूलनिवासियों, अफ्रीकी मूल के लोगों और लातिन अमरीकी संगठनों का आह्वान

कोविड-19 ने पूरी दुनिया में जो संकट पैदा किया है उसने आबया-याला यानी लातिन अमरीकी लोगों को एक चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है। व्यवस्था के सड़ने के बदतरीन इजहारों के खिलाफ जनता के संगठन प्रतिरोध के हिरावल हैं।

हम एक चौतरफा संकट से गुजर रहे हैं जिसने जीवन को उसके सभी रूपों समेत खतरे में डाल दिया है। कोविड-19 एक ऐसे समय में महामारी बना है जब पूँजीवादी संकट घनीभूत हो रहा था और आर्थिक ताकतें कॉर्पोरेट लाभ दर बहाल करने के लिए मजदूर वर्ग को मजबूर करने की बार-बार कोशिश कर रही थीं। यह स्वास्थ्य प्रणालियों के कमजोर पड़ने, जीवन की परिस्थितियों के बिगड़ने और नव उदारवादी बदलाओं के चलते सार्वजनिक क्षेत्र के विनाश के साथ-साथ घटित हुआ है। विदेशी ऋण, अन्तरराष्ट्रीय संगठनों और सम्प्रभुता के खिलाफ साम्राज्यवाद के स्थायी उत्पीड़न से पीड़ित हम लोग बहुत गम्भीर परिणामों वाले एक परिदृश्य की ओर बढ़ रहे हैं।

एक ऐसे अमरीका में जहाँ हम ढाँचागत समायोजन और नयी साम्राज्यवादी नीतियाँ थोपे जाने की खिलाफत करते हैं और जहाँ हमारे लोगों को हाल के महीनों में बड़े- बड़े जन-विद्रोहों का पहला प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, वहाँ महामारी हमारे क्षेत्रों में सशस्त्र बलों की मौजूदगी को वैध ठहराने और मजदूर वर्ग की जीवन परिस्थितयों में गिरावट के साथ-साथ समायोजन के उपायों को लागू करने का भी एक बहाना बन गयी है। इसी तरह, इस संकट ने एक बार फिर महिलाओं और भिन्न यौनिक मत वालों के खिलाफ पितृसत्तात्मक हिंसा की क्रूरता और साथ ही साथ मूलनिवासियों और अफ्रीकी मूल के लोगों के ऐतिहासिक बहिष्कार को सामने ला दिया है, जो अत्यधिक भयावह परिस्थितयों में महामारी का सामना करने के लिए मजबूर कर दिये गये हैं।

अपने लोगों की सर्वोच्च परम्परा के अनुरूप हम जनता, मजदूरों, किसानों, मूलनिवासियों, नारीवादियों, अफ्रीकी-वंशजों, पिकेटेरस (सड़क पर बेरिकेड लगाकर प्रदर्शन करने वाले) और इलाकाई लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठन हैं। हम सभी अपने दिल, दिमाग और शरीर को तत्कालिक प्रतिक्रिया देने में और साथ ही ऐसी योजना तैयार करने में भी लगा रहे हैं जिससे इस संकट से बाहर निकलने का रास्ता पूँजीवादी सामान्य स्थिति में लौटने के बजाय एक बेहतर समाज की ओर ले जाये। यह तभी सम्भव होगा अगर हम व्यक्तियों के रूप में अपना सर्वश्रेष्ठ अर्पित करें। इस लड़ाई के दौरान हम जिन सामुदायिक सम्बन्धों तथा लोकप्रिय, प्रादेशिक और क्षेत्रीय एकता को बनाए रखेंगे, वे उस ताने-बाने का हिस्सा होंगे जो हमारे आबया-याला अमरीका के रूपान्तरण के क्षितिजों का निर्माण करेगा।

आवास की कमी का सामना करते हुए हम खाली जमीन पर कब्जा करते हैं और घरों का निर्माण करते हैं, काम की कमी का सामना करते हुए, हम सहकारी समितियों का गठन करते हैं, कारखानों को बहाल करते हैं तथा तालाबन्दी और छटनी से निपटते हैं, बॉस के हमले झेलते हुए हम काम करने की बेहतर परिस्थितियों के लिए लड़ते हैं, शिक्षा की कमी का सामना करते हुए हम स्कूल बनाते हैं, महिलाओं और भिन्न यौनिक मत वालों पर उत्पीड़न सहते हुए हम लोकप्रिय नारीवाद का निर्माण करते हैं, शोषण का सामना करते हुए हम जमीनी स्तर पर ट्रेड यूनियन संगठनों का निर्माण करते हैं तथा नौकरी की असुरक्षा के खिलाफ और उचित मजदूरी के लिए लड़ते हैं, जलवायु संकट का सामना करते हुए हम कृषि-पारिस्थितिकी विकसित करते हैं, एकफसली खेती और खाद्य एकाधिकार का सामना करते हुए खाद्य सम्प्रभुता और स्वायत्तता की गारंटी के लिए हम किसानों के कृषि-खाद्य- क्षेत्रों का निर्माण करते हैं, सैन्यीकरण, अर्धसैन्यवाद और मादक पदार्थों की तस्करी का सामना करते हुए हम स्थानापन्न संस्कृतियों और शान्ति के लिए लड़ते हैं। हमें मौत देनेवालों के खिलाफ हमारा विकल्प जीवन है।

सीमाओं को बन्द करने और विखण्डन की नीति के खिलाफ और विदेशी लोगों के प्रति ऊपर से थोपे गये द्वेष और नव-फासीवाद के खिलाफ हम महाद्वीपीय एकजुटता और लोगों की एकता के क्षितिज पर वापस आते हैं।

पूँजीपतियों की उन नीतियों का सामना करते हुए जिनका मकसद संकट को समायोजन के लिए एक आड़ के रूप में इस्तेमाल करना है, आइये हम क्षेत्रों की रक्षा, जीवन और सम्पत्ति के समाजीकरण के लिए अपने ऐतिहासिक संघर्षों को तेज और पुनः परिभाषित करें, आइये हम लोकप्रिय और सामुदायिक शक्ति का निर्माण करें।

इसलिए, हम सरकारों से माँग करते हैं और लोगों से कहते हैं--

1. कर्ज को नहीं, जीवन को प्राथमिकता दो। बाहरी ऋण के भुगतान से इनकार कर दो। हमें बाहरी ऋण की शुरू से अन्त तक जाँच (पूर्ण ऑडिट) करने और इन्हें मंसूख करने की जरूरत है। आईएमएफ और दूसरे लेनदारों का भुगतान करने के लिए स्वास्थ्य और अधिकारों पर खर्च में कंजूसी करना आपराधिक-कृत्य है। महामारी से निपटने के लिए स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा प्रणाली प्राथमिकता हैं। हमें लातिन अमरीकी देशों से धनी देशों की ओर आर्थिक रिसाव के स्थायी स्रोतों, अपनी लाभकारी सम्पत्ति तथा अपने बैंकों और विदेशी व्यापार के प्रबंधन को निश्चय ही दुबारा हासिल करना चाहिए। जनता के अधिकारों में बढ़ोतरी से उपजी आर्थिक सम्प्रभुता की नीति ही आर्थिक और वैश्विक संकट की गम्भीरता को कम कर सकती है, जिसे महसूस करना हमने शुरू कर दिया है।

2. असमानता के खिलाफ लड़ो। अमीरों पर, बैंकों के मुनाफों पर और पूँजी को बाहर ले जानेवालों के बड़े कारोबारों पर अत्याधिक कर लगाया जाना चाहिए। सरकारों को पक्के तौर पर बाजार से प्रेरित असमानताओं को खत्म करने की भूमिका निभानी चाहिए। आपातकालीन नीतियों में आवश्यक निवेश का इन्तजाम अकूत सम्पत्ति बटोरनेवालों पर चोट करके किया जाना चाहिए, न कि मजदूरों के वेतन को कम करके। बड़े निगमों की उत्पादन श्रृंखलाओं को निश्चय ही उस उत्पादन की ओर मोड़ देना चाहिए जो कोरोना वायरस का मुकाबला करने के लिए और साथ ही कुपोषण, डेंगू बुखार, नींद की बीमारी (चगास रोग) और तपेदिक जैसे रोगों की ओर भी आवश्यक है, जिन पर राज्य ध्यान नहीं देते हैं।

3. सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों को तत्काल मजबूत करोः सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली में तत्काल और प्राथमिक रूप से निवेश, निजी स्वास्थ्य सेवाओं का राष्ट्रीयकरण और महामारी को रोकने के लिए राज्य के उपायों को मजबूत करो। महामारी ने सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवाओं के सार्वजनिक प्रचार को मजबूत करने और सभी के लिए इनके अनिवार्य होने की पुष्टि की है। सरकारों को इस संकट को दूर करने के लिए मजदूरों की भागीदारी और नियंत्रण के साथ सभी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और प्रशासन पर नियंत्रण रखना चाहिए। मानवीय समस्याओं को हल करने के लिए जरूरी अनुसंधानों और वैज्ञानिक अनुप्रयोगों को पूरी तरह से विकसित करने के लिए दवाओं पर पेटेंट प्रणाली को समाप्त करना चाहिए। मौलिक और पारम्परिक चिकित्सा को मान्यता देनी चाहिए।

4. सुनिश्चित करें कि हर काम मजदूर को पूरे अधिकारों का हक दे। सभी के लिए एक सार्वभौमिक आय की गारंटी हो, बर्खास्तगी और निलम्बन पर प्रतिबंध लगे। श्रमिकों के अधिकारों को मान्यता देना आवश्यक है ताकि वे एक गरिमामय एकान्तवास में रह सकें। इस तात्कालिक आवश्कता को रोजगार की असुरक्षा के जारी रहने का बहाना न बनने दें। कम्पनियों की तालाबन्दी न हो। राज्य को श्रमिकों द्वारा कम्पनियों को कब्जे में लेने और उन्हें दुबारा शुरू करने का समर्थन करना चाहिए।

5. आवास और गरिमापूर्ण जीवन को एक सामाजिक अधिकार के रूप में उभारें, गारंटीशुदा बुनियादी सेवाओं और एक स्वस्थ परिवेश के साथ ही किसी छत के नीचे एकान्तवास हासिल किया जा सकता है। बेदखली, किरायों और सेवाओं का भुगतान निलम्बित किया जाना चाहिए, आवास नीतियाँ एक व्यापक शहरी सुधार की ओर उन्मुख हों, जो सभी कामकाजी परिवारों के लिए सभ्य परिवेश में आवास की गारंटी देती हों। पानी, बिजली और गैस के लिए सार्वभौमिक पहुँच और मजदूर-वर्ग के परिवेश में सुधार होः महामारी के खिलाफ तब तक कोई संघर्ष नहीं किया जा सकता जब तक कि सभी निवासियों के घर, पड़ोस या समुदाय में पीने का पानी, गैस और बिजली न हो। कोई घर खाली न हो, कोई भी व्यक्ति बेघर न हो। बेघर आबादी और अस्थायी आश्रयों की लिए खाली जमीनों और भवनों का अधिग्रहण किया जाये।

6. भूख के खिलाफ संघर्ष करो और सबको भोजन की गारंटी करो। सहकारी, सामुदायिक और परिवार-आधारित कृषि-पारिस्थितिकी खेती के वित्तपोषण को प्राथमिकता दो, जिससे वे आबादी, कैंटीन, पिकनिक क्षेत्रों और सामुदायिक रसोई की खाद्य आपूर्ति में एक प्रमुख भूमिका निभा सकें। अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने और आपूर्ति संकट से बचने के साधन के रूप में भोजन आपूर्ति में प्रगति की आवश्यकता है। विनियमित और कर-मुक्त कीमतों के साथ एक बुनियादी खाद्य जरूरतों की गारंटी दो। सुपरमार्केट और बिचौलियों द्वारा कीमतों पर सट्टेबाजी और एकाधिकार के खिलाफ प्रतिबंधों की माँग करो। किसानों का ऋण मंसूख करो, उत्पादक भूमि का पुनर्वितरण करो और राज्य द्वारा वित्तपोषित सुरक्षा प्रणालियों और कृषि-पारिस्थितिकी बस्तियों की स्थापना करो।

7. प्रकृति को माल बनाए जाने के खिलाफ, अपनी साझी वस्तुओं जैसे पानी, गैस, तेल, भूमि, लाभकारी सम्पत्ति पर स्वायत्ता को फिर से हासिल करो, जो स्थानीय सरकारों और उद्यमियों की मिलीभगत से आर्थिक पिशाचों द्वारा छीन ली गयी है। मूलनिवासियों के क्षेत्रों के लिए पूर्ण सम्मान की तथा आर्थिक शोषण वाले मॉडल पर पुनर्विचार की माँग करो। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए धरती माँ और इस पर वास करने वाले लोगों का सम्मान करो।

8. आदिवासियों, मूलनिवासियों और अफ्रीकी राष्ट्रीयताओं के लोगों के क्षेत्रों के लिए सम्प्रभुता की गारंटी के साथ-साथ स्वास्थ्य सुरक्षा और मानवीय सहायता को मजबूत करो, विशेष रूप से जिनके निवास स्थान अमेजन जैसे महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र में हैं, जिनके लिए महामारी के खतरे का अर्थ नस्ल-विनाश हो सकता है। मूलनिवासियों और अफ्रीकी लोगों के जीवन के क्षेत्रीय और सांस्कृतिक अस्तित्व के लिए स्वशासन प्रणाली को मजबूत करो। मूलनिवासियों की सम्प्रभुता का उल्लंघन करने वाली गतिविधियों और बेदखलियों पर रोक लगाओ।

9. पुरुष हिंसा से निपटने के लिए वास्तविक नीतियाँ बनाओ। सामाजिक एकान्तवास के उपायों से घरेलू हिंसा और महिलाओं के खिलाफ दूसरे किस्म की हिंसा बढ़ सकती है। समलिंगी और विपरीतलिंगी, दोनों तरह की महिलाओं के लिए महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुकाबला करने में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग पर्याप्त नहीं है। इसे रोका जाना और खत्म किया जाना चाहिए। भ्रूणहत्या और लिंग परीक्षण पर रोक के लिए बजट जारी करो। हिंसा की स्थितियों में लोगों के लिए आश्रय और बचे लोगों को विशेष आर्थिक सहायता दो। महिलाओं और भिन्न यौनिक मत वालों के लिए रोजगार और शिक्षा की योजना बनाओ।

10. दमन नहीं, इसकी और ज्यादा रोकथाम करोः कई सरकारों ने दमन और निगरानी के उपायों को तेज करने के लिए और अति गरीबों, समुदाय के नेताओं, मानवाधिकार रक्षकों और धरती माँ के रक्षकों की हिरासत बढ़ाने के लिए कोरोना वायरस के सन्दर्भ का उपयोग किया है। एक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या के तौर पर यह जेल की आबादी को कम करने का समय है। खुद प्राधिकारियों और उन सामुदायिक रक्षकों को भी उन्नत करने की आवश्यकता है जो पैतृक प्रदेशों की देखभाल करते हैं और संरक्षित जीवन की देख-रेख करने वाला एक प्रभावी सामुदायिक निकाय हैं।

11. साम्राज्यवादी राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य हस्तक्षेप को नकार दोः हम स्पष्ट रूप से यांकी साम्राज्यवाद और उसके सहयोगियों द्वारा वेनेजुएला में सैन्य हस्तक्षेप के बहाने के रूप में संकट का इस्तेमाल करने को, कोलम्बिया में मूलनिवासी और लोकप्रिय नेताओं की लगातार हत्याओं को, बोलीविया और होण्डुरास में विद्रोही ताकतों तथा चिली में पिनेरा की गैर लोकतांत्रिक सरकार के भयंकर दमन को, मूलनिवासी और किसान क्षेत्रों में निष्कर्षण परियोजनाओं के विस्तार को अस्वीकार करते हैं। हम क्यूबा और वेनेजुएला के खिलाफ प्रतिबंध हटाने की माँग करते हैं।

12. अन्तरराष्ट्रीयतावादी मानवतावादी सहायता पेश करोः हम सरकारों से अनुरोध करते हैं कि वे क्यूबा और दूसरे देशों से मानवतावादी सहायता लें, जिनके पास महामारी के खिलाफ लड़ाई का तकनीकी अनुभव है और जो उन शहरों में कोविड-19 महामारी को नियंत्रित करने में मदद कर सकते हैं जहाँ महामारी फैल गयी है। जैसे गुआयाकिल और साओ पाउलो।

मुट्ठीभर लोगों के धन के खिलाफ, लोगों की सम्प्रभुता के लिए! जीवन के लिए! आईएमएफ के लिए नहीं!

लातिन अमरीका के लोगों का संघर्ष जारी है--

अन्तरराष्ट्रीयतावादी एकजुटता!

अनुवाद-- प्रवीण

पेज 26 का शेष...

का बेहतर खुलासा करती है। आप यूरोपीय संघ को ही लें। इस संघ का सबसे अमीर और ताकतवर देश है जर्मनी, जिसने इस संकट का सामना भली प्रकार से किया है। इससे थोड़ी ही दूरी पर दक्षिण में स्थित इटली इस संकट से गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ है। क्या जर्मनी, इटली को स्वास्थ्य-सेवाएँ उपलब्ध करा रहा है? अभी तक की रिपोर्टों के मुताबिक तो ऐसा नहीं किया जा रहा। सौभाग्य से इटली को क्यूबा से अच्छी-खासी मदद मिल रही है। यह सच्चे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का उदाहरण है और ऐसा पहली बार नहीं हुआ है। परिस्थितियाँ ही इस तरह के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, जिसकी सख्त जरूरत है, का नमूना पेश करती हैं - और उस तरह के स्वार्थ का भी जो हम सब को नष्ट कर सकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ट्रम्प संयुक्त राज्य अमरीका को गम्भीर नुकसान पहुँचा रहा है, लेकिन वह अमरीकी आधिपत्य को भी गम्भीर नुकसान पहुँचा देगा इस पर मुझे सन्देह है। अमरीका के पास अब भी बहुत ताकत है। सैन्य-क्षेत्र में इसकी कोई तुलना नहीं। अमरीका ही एकमात्र ऐसा देश है जो कठोर प्रतिबंध लगा सकता है। वह तृतीय पक्ष पर भी प्रतिबंध लगाकर उनका पालन करने को मजबूर कर सकता है, चाहे इसका कितना ही विरोध क्यों न हो। जब अमरीका इजरायल-फिलिस्तीन के लिए "सदी का सौदा" जारी करता है, तो वह दूसरों के लिए भी प्रारूप बन जाता है और सब खुद को उस प्रारूप के अनुरूप ढालने लगते हैं।। यदि आप गौर करें तो पायेंगे कि अगर किसी अन्य देश ने इसे जारी किया होता तो प्रतिक्रिया में उसका उपहास ही उड़ाया जाता। अमरीका स्थित बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दुनिया की आधी दौलत को नियंत्रित करती हैं और प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र ये बहुधा पहले या फिर दूसरे स्थान पर हैं।

अमरीका को दूसरे कई देश बेहद नापसन्द करते हैं। लेकिन वे डरते है और उनका डर जायज भी है। विश्व मंच पर अमरीका का कोई गम्भीर प्रतियोगी नहीं है।

* * *

जिप्सन जॉन और जितेश पीएम, 'ट्राईकाण्टिनेण्टल इंस्टीट्यूट फॉर सोशल रिसर्च' में फैलो हैं और द हिन्दू, फ्रण्टलाइन, द कारवां और मंथली रिव्यू सहित विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशनों के लिए लिखते हैं।

अनुवाद-- कुमार मुकेश

कोरोना विशेष

महामारी ने पूँजीवाद की आत्मघाती प्रवृत्तियों को उजागर कर दिया है-- नॉम चोमस्की

जिप्सन जॉन और जितेश पीएम 'ट्राईकाण्टिनेण्टल इंस्टीट्यूट फॉर सोशल रिसर्च' में फैलों हैं। दोनों ने 'द वायर' के लिए नोम चोमस्की का साक्षात्कार लिया। चोमस्की भाषाविद् और राजनीतिक कार्यकर्ता हैं, जो नवउदारवाद, सैन्यवाद, साम्राज्यवाद और औद्योगिक-मीडिया समूह की आलोचनाओं के लिए विख्यात हैं।

जिप्सन और जितेश : विश्व का सबसे धनवान और शक्तिशाली देश अमरीका भी कोरोनावायरस के संक्रमण के प्रसार को रोकने में असफल क्यों रहा? यह असफलता राजनीतिक नेतृत्व की है अथवा व्यवस्थागत? सच तो यह है कि कोविड-19 के संकट के बावजूद भी, मार्च में डोनाल्ड ट्रम्प की लोकप्रियता में वृद्धि हुई। क्या आपको लगता है कि अमरीका के चुनावों पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा?

नोम चोमस्की : इस महामारी की जड़ों को जानने के लिए हमें थोड़ा पीछे लौटना होगा। यह महामारी अप्रत्याशित नहीं है। वर्ष 2003 की सार्स महामारी के पश्चात ही वैज्ञानिकों को अन्देशा हो गया था कि एक और महामारी आ सकती है और यह सम्भवतः सार्स कोरोनावायरस के ही किसी नये रूप में होगी। कोविड-19 के बारे में पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध नहीं है। पर किसी को तो कुछ न कुछ करना ही होगा। दवा-कम्पनियों की इसमें कोई रुचि नहीं है। वे बाजार के संकेतों का अनुसरण करती हैं, मुनाफा कहीं और होता है। सरकार इसे अपने हाथ में ले सकती थी पर नवउदारवाद का सिद्धान्त उसका रास्ता रोक लेता है।

ट्रम्प ने रोग-नियंत्रक केन्द्रों को की जाने वाली आर्थिक मदद को धीरे-धीरे बन्द कर और जिन राष्ट्रीय कार्यक्रमों से इस महामारी के बारे में अग्रिम सूचनाएँ प्राप्त करने में मदद मिल सकती थी, उनको समाप्त कर हालात और खराब कर दिये। चीनी वैज्ञानिकों ने बीमारी फैलाने वाले वायरस की शीघ्र ही पहचान कर ली और इसकी प्रजातियों को श्रेणीबद्ध कर 10 जनवरी तक सम्बन्धित सूचनाओं को सार्वजनिक कर दिया।

कई देशों ने इस पर तुरंत प्रतिक्रिया दिखाई और काफी हद तक समस्या को नियंत्रित कर लिया। ट्रम्प ने निरंतर अमरीकी खुफिया विभाग और स्वास्थ्य अधिकारियों की चेतावनियों की अनदेखी की। वह यही कहता रहा कि यह एक सामान्य फ्लू है और जल्दी खत्म हो जाएगा। आखिरकार जब मार्च में इस पर ध्यान दिया गया तो काफी देर हो चुकी थी। हजारों लोग पहले ही मर चुके थे और महामारी नियंत्रण से बाहर हो चुकी थी।

अमरीका को तिगुना झटके सहने पड़े-- पूँजीवादी तर्क, पूँजीवाद का बर्बर नवउदारवादी संस्करण और एक ऐसी सरकार के रूप में जिसका अपनी जनता से कोई सरोकार नहीं है।

जब एक राष्ट्रपति कोई कदम उठाता है तो उसे अनुमोदन का लाभ मिलता है परन्तु ट्रम्प के मामले में इस तरह का अनुमोदन शीघ्र ही उतार पर आ गया। उसकी घपलेबाजियों और आपराधिकता ने उसके दोबारा जीतने के अवसरों को कमजोर किया है परन्तु नवम्बर से पहले बहुत कुछ हो भी सकता है।

* * *

जिप्सन और जितेश : डिजिटल तकनीक और राज्य द्वारा नियंत्रण से काफी देशों को महामारी पर निगरानी रखने और उससे लड़ने में मदद मिलती है परन्तु विशेषज्ञों ने बढ़ते अधिकारवादी नियंत्रण और राज्य द्वारा निगरानी की प्रवृति पर सवाल भी उठाये हैं। क्या आप इससे सहमत हैं?

नोम चोमस्की : इस बारे में अलग-अलग ताकतों में विवाद है। व्यापार जगत और प्रतिक्रियावादी सांख्यिकीविद इस पर एकमत हैं कि पहले से भी कहीं ज्यादा अधिकारवादी नियंत्रण लागू किया जाये, पर लोकप्रिय शक्तियाँ चाहती हैं कि यह ज्यादा न्यायिक और मुक्त होना चाहिए। इन दोनों शक्तियों के पारस्परिक प्रभाव से देखें क्या घटित होता है।

जिप्सन और जितेश : वर्तमान सन्दर्भ में गरीब लोगों की दशा में सुधार लाने की दिशा में किस तरह के आर्थिक कदम उठाये जाने की आवश्यकता है? आपको सरकारों द्वारा नये सामाजिक-लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाने अथवा ज्यादा कठोर अथवा फौरी राहत देने जैसे कदम उठाने में किसकी सम्भावना अधिक लगती है?

नोम चोमस्की : हम जानते हैं कि किस प्रकार के आर्थिक कदम उठाये जाने की आवश्यकता है। हम यह नहीं जानते कि इस संकट के पश्चात स्थितियाँ कैसी होंगी। पिछले 40 वर्षों से चल रहे नवउदारवादी बर्बर पूँजीवाद के लाभार्थी जो न सिर्फ इस महामारी अपितु अन्य कई संकटों के लिए जिम्मेदार भी हैं, दिन-रात यह कोशिश कर रहे हैं कि इसके बाद की स्थिति उससे भी कठोर हो जो उन्होंने अपने फायदों के लिए निर्मित की थी। अगर उनका सामना करने के लिए अन्य ताकतवर शक्तियाँ नहीं होंगी तो निश्चित तौर पर वे अपने इरादों में कामयाब हो जायेंगे। पर यह सब पूर्व-निर्धारित नहीं है।

लोकप्रिय शक्तियाँ आकार ले रही हैं और ये सब मिलकर एक भिन्न और कहीं अधिक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अमरीका से बर्नी सांडर्स और यूरोप से यानिस वरौफकिस के संयुक्त आह्वान पर "प्रोग्रेसिव इण्टरनेशनल" की स्थापना इसी दिशा में पहलकदमी है। इसके साथ दक्षिणी गोलार्ध के देश भी जुड़ रहे हैं।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आने वाला संकट मौजूदा संकट से बदतर होगा। भारी कीमत चुका कर हम महामारी से तो मुक्त हो जायेंगे, लेकिन ध्रुवीय बर्फ की चादरों और हिमालय के ग्लेशियरों के पिघलने से होने वाले नुकसान और 'ग्लोबल वार्मिंग' के गम्भीर प्रभावों की भरपाई नहीं हो सकती। अगर दुनिया इसी तरह से चलती रही तो वह दिन ज्यादा दूर नहीं जब अधिकांश दक्षिण एशिया निर्जन हो जाएगा। हाल ही के वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार पूरा विश्व भी अगले पचास वर्षों में इस स्तर पर पहुँच सकता है।

* * *

जिप्सन और जितेश : रॉब वालेस जैसे महामारी विज्ञानियों ने कहा है कि लाभ-संचालित पूँजीवादी तर्क ने वन्यजीव पारिस्थितिकी तंत्र पर आक्रमण कर दिया है और मानव-वन्यजीव संघर्ष सामान्य बात हो गयी है। और यह संघर्ष वायरस को मनुष्यों में फैलने का मार्ग भी प्रशस्त करता है। इसलिए पूँजीवाद का संकट, स्वास्थ्य के संकट के रूप में उभरकर सामने आया है और मनुष्य पूर्व जैसी "सामान्य" स्थिति में नहीं लौट पायेगा। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

नोम चोमस्की : वे बिलकुल ठीक कह रहे हैं। प्राकृतिक आवासों और विनाशकारी भूमि-उपयोग से इस तरह के संक्रमण के प्रसार का खतरा बढ़ता जा रहा है। ठीक यही कोरोनावायरस के साथ भी हुआ है। बेलगाम पूँजीवाद की आत्मघाती प्रवृतियाँ स्वास्थ्य-संकट सहित कई रूपों में उजागर हुई हैं। 2003 की सार्स महामारी के पश्चात वैज्ञानिकों ने चेताया था कि एक और कोरोनावायरस महामारी आ सकती है और हमें इसके लिए तैयारी करनी चाहिए। पर किस ने इस दिशा में कुछ भी किया?

विशाल और बेहद अमीर दवा कम्पनियों के पास ऐसा करने के संसाधन उपलब्ध हैं, लेकिन उनकी राह में भी सामान्य पूँजीवादी तर्क रोड़ा है, ऐसा करना लाभप्रद नहीं है। सरकार इसमें हस्तक्षेप कर सकती है, लेकिन उसका रास्ता भी नवउदारवाद का विचार रोक लेता है। इस विचार के अनुसार, सरकार निजी शक्तियों द्वारा नियंत्रित दुनिया में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। अगर हस्तक्षेप कर भी सकती है तो निश्चित रूप से, अमीर और कॉर्पोरेट क्षेत्र को उन्हीं के पैदा किये गये संकटों से बचाने के लिए, जैसा कि एक बार फिर आज हो रहा है।

एक और महामारी की भविष्यवाणी कर दी गयी है और सम्भवतः यह इससे और ज्यादा भयानक होगी, जिसके साथ 'ग्लोबल वार्मिंग' बढ़ने की आशंका भी है। वैज्ञानिक जानते हैं कि वे इसके लिए क्या तैयारी करें पर किसी को तो कदम उठाना ही होगा। आज जो मंजर हमारी आँखों के सामने है, अगर हम उससे कोई सबक नहीं सीखते तो इसके परिणाम निश्चित रूप से बेहद गम्भीर होंगे।

हमें सिर्फ यह मान कर नहीं बैठ जाना चाहिए कि बड़ी दवा कम्पनियाँ और सरकार ही एकमात्र विकल्प हैं। यह भी एक उचित सवाल है कि जिन बड़ी कम्पनियों को जनता द्वारा भारी सब्सिडी दी जाती है, उनका अस्तित्व ही क्यों होना चाहिए। इन्हें श्रमिकों और समुदाय के अधीन कर इनका सामाजीकरण क्यों नहीं किया जाना चाहिए? ये कम्पनियाँ केन्द्रित धन और निजी शक्ति के बजाय स्वयं को मानवीय जरूरतों के लिए आखिर क्यों न समर्पित करें?

* * *

जिप्सन और जितेश : वायरस से बेहतर तरीके से लड़ने के लिए राष्ट्रों के बीच एकजुटता होनी चाहिए। लेकिन हम नस्लीय और उन्मादपूर्ण दोषारोपण के खेल में फंसे है। कभी चीन को धमकी देकर, कभी विश्व स्वास्थ्य संगठन को धन रोक कर, ईरान और वेनेजुएला के खिलाफ और अधिक प्रतिबंध लगाकर , चिकित्सा उपकरणों के लिए प्रतिस्पर्धा में शामिल होकर। पैट्रिक कॉकबर्न ने कहा है कि यह अमरीकी आधिपत्य के पतन का दौर है। क्या आप सहमत हैं?

नोम चोमस्की : इसमें से अधिकांश चीजें ट्रम्प प्रशासन के बदसूरत और साम्राज्यवाद के असामान्य रूप से शातिराना चेहरे को दिखाती हैं। लेकिन बात इससे भी ज्यादा है जो इस स्थिति

शेष पेज 24 पर...

कोरोना विशेष

दिखावे बहुत हो चुके! अब जरूरत है दिल, दिमाग और जवाबदेही से योजना बनाने की

-- अरुंधति रॉय

भारतीय अभिजात मीडिया और सत्ता-प्रतिष्ठान की बेनाम प्रवासी मजदूरों की आकस्मिक और हृदय को छू जाने वाली त्रासदी की खोज के बारे में मैं रोज पढ़-सुन रही हूँ। ऐसा लगता हैं ये सब टीकाकार समकालीन इतिहास के साथ-साथ अनेक अर्थशास्त्रियों, बुद्धिजीवियों, मीडिया और मुख्य तौर पर कांग्रेस (पुरानी कांग्रेस) और भारतीय जनता पार्टी सहित तमाम राजनीतिक दलों की करतूतों से बिलकुल ही नावाकिफ हैं जिनकी वजह से हालात यहाँ तक पहुँच गये हैं।"

"इन्हीं में से कुछ लोग जो आज सदमे की सी हालत में नजर आ रहे हैं वही लोग तब बेहद खुश नजर आ रहे थे जब श्रम सुरक्षा कानूनों के बखिये उधेड़कर गरीब ग्रामीणों की जमीनें और संसाधन छीनने का हिंसक अभियान चलाकर उन्हें अपने गाँवों से बाहर खदेड़ा जा रहा था।"

यह सब एकाएक घटित नहीं हुआ। दशकों से योजनाबद्ध नीति के साथ गरीब लोगों को हाशिये पर धकेला जाता रहा है। इस तबाही की भरपाई के लिए कांग्रेस ने महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार योजना आरम्भ की, जिसके तहत ग्रामीण परिवारों को एक वर्ष में सौ दिन के लिए काम उपलब्ध कराया जाता है। भाजपा ने इस योजना को भी और खोखला कर दिया। हम सब लोग जो इस विषय में बहस करते रहे हैं उन्हें राष्ट्र-विरोधी, आतंकवादियों के हमदर्द कहने के अलावा अनेक किस्म की गालियाँ दी जाती रहीं। हमारे कई सर्वश्रेष्ठ वकील, शिक्षाविद और कार्यकर्ता साथी आज जेलों में उम्र कैद की सजा काट रहे हैं और जिन पर कोरोना वायरस से संक्रमित होने का खतरा लगातार मंडरा रहा है।

भूख और नफरत का संकट जो महामारी के दौर में और बढ़ गया है उसे पोषित करने का काम मुख्यधारा के राजनीतिक दल एवं मीडिया-संस्थान और नीति-निर्माता वर्षों से कर रहे थे। साम्प्रदायिकता और कॉरपोरेट पूँजीवाद गलबहियाँ डाले ठुमके तो न जाने कब से लगा रहे थे और अब हमें उनका प्राणघाती नृत्य देखने को मिल रहा है।

हम सब सामूहिक रूप से यह बहाना नहीं बना सकते कि जो कुछ आज हुआ इसकी तो कभी किसी ने कल्पना ही नहीं की थी और इसके लिए कोई जिम्मेदार नहीं है। मैंने 2011 में प्रकाशित मेरी किताब "ब्रोकन रिपब्लिक" के परिचय में भी इसकी चर्चा की है। उस समय केन्द्र में कांग्रेस पार्टी की सरकार थी। यह अंश उस प्रक्रिया के बारे में है जिसके माध्यम से गरीबों को हमारी कल्पनाओं तक से बाहर कर दिया गया था। बेशक, महामारी के इस दौर में गरीबों पर टूट पड़ी विपदा पर लोग क्षोभ व्यक्त कर रहे हैं उसके बावजूद भी उनके हालात को और बदतर करने के इन्तजाम बदस्तूर जारी हैं।

हम भुखमरी की ओर बढ़ रहे हैं। ऐसे में बेहद जरूरी है कि मौजूदा हालात से टूट चुके और भूखे लोगों के लिए भोजन और पैसा उपलब्ध कराया जाये। भोजन आएगा कहाँ से? उन गोदामों से, जिनमें भगवान ही जाने, करोड़ों टन अनाज किस के लिए भरा रखा है। पैसा कहाँ से आएगा? सीधी सी बात है, उन व्यक्तियों और संस्थानों से जिनके पास पैसा है।

हम एक ऐसे मुल्क में रहते हैं जिसके 63 अरबपतियों के पास केन्द्रीय बजट में एक साल में व्यय की जाने वाली राशि से ज्यादा की सम्पत्ति है। अगर सरकार भूखे, अर्ध-गुलामी का सा जीवन जीने वाले और हालात की मार खाये लोगों के लिए दिन में 12 घण्टे काम करने जैसे आपातकालीन श्रम कानूनों पर विचार कर सकती है तो वह अमीरों के लिए भी कुछ आपातकालीन कानून बना सकती है। एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो सकता है जिसके माध्यम से जरूरतमन्दों तक पैसे और भोजन की पहुँच सुनिश्चित की जा सके।

हमें यह सुनिश्चित करने के लिए योजना बनाने की आवश्यकता है कि हम भविष्य में कैसे जीने वाले हैं मगर इस पर कोई भी सोच नहीं रहा। इसके लिए हमें जरूरत है दिमाग की। जरूरत है दिल की। जवाबदेही की। सस्ते और फूहड़ किस्म के दिखावे बहुत हो चुके।

(2011 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "ब्रोकन रिपब्लिक" को मौजूदा सन्दर्भ से जोड़ते हुए अरुंधति राय का कथन। लेखक, अनुवादक और सामाजिक कार्यकर्ता कुमार मुकेश द्वारा जनचौक के लिए हिन्दी में प्रस्तुत।)

कहानी

रफीक भाई को समझाइये

-- रणेन्द्र

चला जाता हूँ हँसता-खेलता मौजे हवादिस से
अगर आसानियाँ हो, जिन्दगी दुश्वार हो जाये

भेल्लोर से लौटे हैं रफीक भाई। गये थे मामूजान की ओपन हार्ट सर्जरी करवाने अपनी जाँ से रोग लगा आए। ओपन हार्ट के सक्सेस से चैन मिला था। एक हफ्ता रुकना था सो मजाक-मजाक में थौरो चेकअप करवाने चले गये। ऐसी रिपोर्ट का अंदेशा न था, देखा तो सकते मे आ गये। चेन स्मोकिंग ने पैरों की नसों को जाम कर दिया था। खून में हीमोग्लोबिन की जगह निकोटिन। डॉक्टर ने सख्त हिदायत दी है– सिगरेट से तौबा कर लीजिए नहीं तो चन्द महीनों में पैर काटने की नौबत आ जायेगी,' तबरेज भाई तफसील से बीमारी के बारीक नुक्तों से हमें परिचित करवाने पर उतारू थे।

रफीक भाई पर तो कोई खास असर नहीं दिख रहा था। वही उदास आँखे आसमाँ पर टंगी हुई। चेहरे पर वही परेशानी जो पहले थी वो आज भी। उँगलियों में जलती सिगरेट। हाँ! पहले चारमीनार हुआ करती थी आज विल्स फिल्टर थी। चलिए डॉक्टर की हिदायतों की कुछ तो आबरू रख ली।

लेकिन यह निकोटिन का असर कब हुआ? हम तो उनकी चाल के अटपटेपन को कॉलेज-यूनिवर्सिटी के दिनों से देख रहें हैं। उन दिनों तो इतनी सिगरेट भी नहीं पीया करते थे। जानने वाले बताते हैं कि यह तो वर्षों से है। शायद बचपन से। शायद 'उन दिनों' के बाद से ही।

चलते वक्त पैर उठते तो ठीक से ही किन्तु रखते वक्त थोड़ी देर लगती मानो कुछ सोच-सोच कर पैर धर रहे हों। जैसे कि पैरों को धरती पहचनाने में देर लग रही हो।

साथ चलने वालों को बड़ी खीज होती। रुक-रुक कर चलना पड़ता लेकिन चन्द दिनों में ही हम आदी हो गये थे। जिनसे अपनापा हो, मुहब्बत हो वह आपकी वजूद का ही हिस्सा हो जाता है। फिर कुछ भी ध्यान में नहीं आता कि उसकी खाल का रंग आबनूसी है कि सफेद, उसकी नाक नुकीली है कि पकौड़ी जैसी, वह मोटा है या पतला, लम्बा है या नाटा, चाल अच्छी है या अटपटी, ये बातें कोई मायने नहीं रखतीं। वह बस अपना होता है, अपने जैसा।

लेकिन लड़कों की फब्तियाँ या हँसी हमें परेशान करती। न चाहते हुए भी रफीक भाई का मूड उखड़ जाता सो हम लोगों ने बड़ी मशक्कत से एक सेकेण्ड हैण्ड साइकिल का इन्तजाम किया और उतनी ही मशक्कत के बाद रफीक भाई ने उसे अपनाया। आहिस्ता-आहिस्ता वह साइकिल उनकी पर्सनाल्टी का हिस्सा बन गयी, उनके पैरों का विस्तार।

खैर जाने दीजिए उन बातों को। जब तक रफीक भाई की सिगरेट खत्म होती, हमसे मुखातिब होते तब तक चचाजान शुरू हो गये। गली के तीनमुहाने पर न जाने कब से मूड बना रहे थे।

रफीक भाई का यह छप्परपोश घर भी तो ठीक तीन मुहाने पर ही था। दो तरफ से नालियाँ बहती हुई। विधायक फंड से गली की पीसीसी ढलाई हो गयी थी। चलिए बरसात में कीचड़ से तो निजात मिली। गली के बाशिन्दों में दर्जियों, मिस्त्रियों, ठेलेवालों की बहुतायत थी चन्द घर ही टीचरों-क्लर्कों जैसों के थे। जिस नाली के पास घर के चबूतरे पर रफीक भाई की महफिल जमती उस नाली पर यहाँ वहाँ सुबह-शाम-दोपहर बच्चे इत्मीनान से हगते रहते।

ये चचाजान भी कुदरत के अजीम-तरीन नमूने हैं। पाँचों वक्त के नमाजी। जोहर और असर की नमाज के बाद इस तिमुहानी की दीवार लगकर तकरीर करते। वैसे तो हम सब के सब एक आध आने खिसके होते हैं। चचाजान थोड़ा ज्यादा लगते थे। कई बार राँची हो आये थे इससे बड़ा प्रूफ खिसकने का क्या होगा?

सो चचाजान की तकरीर पूरे शबाब पर थी।

कोई माबूद नहीं सिवा अल्लाह के मोहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। सल्लल्लाहो अलैहैं वसल्लम।

अल्लाह, उसके सिवा कोई इबादत के लायक नहीं। उसे न ऊँघ आती है न नींद। उसी के वास्ते है जो कुछ आसमानों और जमीन में है। जो कुछ हो रहा और जो कुछ हो चुका उसे सब मालूम है सारी कायनात को उसी ने पैदा किया है।

दुनिया के सारे इनसान व सारे जिन्नात अल्लाह के बन्दे हैं। हजरत मुहम्मद साहब ने फरमाया है कि अल्लाह अपने हर बन्दे को एक माँ से सत्तर गुणा ज्यादा प्यार करता है, चाहे वह किसी भी मजहब का क्यों न हो...।

हम इन्तजार में बैठे थे कि तकरीर खत्म हो तब तक किसी ने टोहका मारा 'चच्चा आज बुश हरामी पर कुछ नहीं फरमाइयेगा'

'लो अब हो गया फरमाईशी दौर। लम्बा खिंचेगा। यहाँ से खिसका जाए', तबरेज भाई की सलाह सही थी। वहाँ से उठ कर पीपल तले की चाय गुमटी के बेंचो पर हम जम गये।

बहुत खरोंचने, ढेरों धौल धप्पे के बाद रफीक भाई का सिगरेट सुलगाने-धुआँने का सिलसिला रुका। निगाहें आसमाँ से नीचे उतरीं। आर-पार होने के बदले हमारी सूरतों पर टिक गयी। अल्फाजों से हमें नवाजना शुरू किया।

यह खासियत थी रफीक भाई की। अव्वल तो बोलते नहीं। घर से सोच कर निकलते कि आज दिन भर में कितने अल्फाज खर्चने हैं। बोलते तो इतनी तल्खी से कि सामने वाला छटपटा जाये। पुरानी पहचान न हो तो झगड़े की नौबत आ जाये। लेकिन हम उनके इन्हीं अदाओं के कायल थे। उनके इन तल्ख अन्दाज और फिलासफर अदाओं ने कॉलेज-यूनिवर्सिटी के दिनों मे कितने-कितने मोर्चों पर फतह दिलवाई थी। हम दिनेश भाई, यूसुफ भाई सभी प्रोग्रेसिव स्टुडेंट फेडरेशन की जान हुआ करते थे। कितने मूवमेंट को लीड किया, धरने दिये, जेल गये। लेकिन कैरियर को ओझल नहीं होने दिया। अलग-अलग सब्जेक्ट के कारण आपसी कोई प्रतियोगिता भी नहीं थी, जो हमारे बीच दरार बनती। हाँ! घरों की जर्जर माली हालत वह फेविकोल था जिसने हमें बाँधे रखा।

पोस्ट ग्रेजुएशन के बाद ज्यादा बैठना नहीं पड़ा। वैसे भी नेट करने के बाद कोचिंग क्लासों से अच्छी खासी आमदनी हो जाती। तरह-तरह की परीक्षाओं के फॉर्म भरने, उनमें बैठने के लिए आने-जाने, चाय-सिगरेट के लिए पिताओं के सामने हाथ पसारने की जलालत से हम बच गये थे। फिर कमीशन द्वारा यह लेक्चरशिप। तबरेज भाई उसके बाद ही हमारे ग्रुप में शामिल हुए थे। बिहार से आए थे। ठेठ बिहारी, खूब दरियादिल, हाजिरजवाब, हँसने-हँसाने वाले मसखरेपन से भरे हुए। लेकिन बिहारीपन का 'वह' खास झाँस भी व्यक्तित्व का हिस्सा था, अशराफ होने का थोड़ा सा गुमान। मौका मिलते रफीक और यूसुफ भाई को चुटकी काटने से बाज नहीं आते। उनके पास जुलाहों की बेवकूफियों पर चुटकुलों का जखीरा था। हमें उनकी बस यही बात नापसन्द थी। किन्तु दिल के इतने प्यारे कि उस निगेटिव को हम माइनस करके चलते।

बात रफीक भाई के अल्फाजों से शुरू हुई थी। जब उन्होंने नवाजना शुरू किया तो वे बदन में तत्तैया से डंक मारने लगे। बात सच भी थी। उनको छोड़ कर ग्रुप के और लोगों ने बाप-दादाओं, मामा-मौसाओं की दुम पकड़ कर पाँच-सात सालों के अन्दर ही राजधानी के कॉलेजों में ट्रांसफर करवा लिया था। अब शिक्षक संघ पर कब्जा भी था। किन्तु रफीक भाई कमडेगा में ही अटके हुए थे। रोज सबेरे-सबेरे, जाड़ा-गर्मी-बरसात सात बजे की बस पकड़नी होती थी। लौटते-लौटते अँधेरा हो जाता। कब फिजियोथेरेपिस्ट के यहाँ जाते? कब इलाज शुरू होता?'

जब मरना ही है तो सिगरेट क्यों छोड़ी जाये। यह छोटी सी अय्याशी ही तो है जिन्दगी में, वरना और रखा क्या है? देखिए नरेन्द्र भाई! वो मुझसे मुखातिब थे, 'पहले ट्रांसफर करवाईये तब सिम्पैथी जताने आईये आपलोग। झूठ-मूठ की 'शोक-संवेदनाओं' का मेरे करीब कोई मतलब नहीं।'

इक गदाए-राह को नाहक न छेड़

जा फकीरों से मजाक अच्छा नहीं

दिल में इक फाँस सी अटक गयी। हर कोशिश नाकामयाब हो रही थी। कुलपति की मुस्कुराहट, बेटे-बेटे की रटन और शीरीं जुबान, उससे भी शीरीं उनकी चाय के सामने हमारे सारे हथियार कुन्द पड़ जाते। उधर रोज तबरेज भाई खबर देते कि रफीक की चेन स्मोकिंग बन्द नहीं हो रही है। हर पाँच-सात दिन पर एक कोशिश करते किन्तु बुड्ढा पिघल नहीं रहा था। रायरंगपुर से निराला बाबा को बुलाया गया आखिर हमारे सीनियर थे, संघ के अध्यक्ष, खूब आक्रामक, बहस में एक से एक नायाब तर्क पेश करने वाले, किन्तु उनकी भी दाल नहीं गली।

तब बाबा का ही आइडिया था कि एक बुलेटिन प्रकाशित किया जाये। कुछ न कुछ मसाला तो मिलेगा ही मिलेगा। उसी में वीसी को घुमा-घुमा कर पकाया जाये। देखते हैं बुड्ढा कब तक नहीं पिघलता है।

सो बिना देर के 'यूनिवर्सिटी वॉयस' का प्रकाशन शुरू हो गया। हर अंक में यूनिवर्सिटी ऑफिस के करप्शन के किस्सों की सनसनाहट होती। बुड्ढा पिघलने लगा था। हमें भी मजा आने लगा। रफीक भी अपने छुट्टी के दिनों का अच्छा खासा समय इस बुलेटिन की प्रूफ रीडिंग में लगाते। चेन स्मोकिंग की स्पीड थोड़ी घट रही थी।

तभी यह संजोग हुआ। हम लोगों ने नामवर सिंह का एक कार्यक्रम तय करवाया। मालूम नहीं था कि वीसी साहब नामवर जी के इतने बड़े फैन निकलेंगे। स्थानीय अखबार में एक पेज नामवर जी पर केन्द्रित किया गया था। उसके लेख भी वीसी साहब को इतने अच्छे लगेंगे कि गदगदायमान हो जायेंगे, इसकी तो एकदम उम्मीद नहीं थी। खास कर मेरे और दिनेश भाई के लेख। हो सकता है वीसी साहब की डिप्लोमेसी के ये सब हिस्सा रहे हों। नतीजा यह कि परोक्षतः 'यूनिवर्सिटी वायस' के दबाव में, प्रत्यक्षतः उस कार्यक्रम और हमारे लेखों से खुश होकर बुड्ढे ने रफीक भाई को कमडेगा से राजधानी बुलवा तो लिया किन्तु डेपुटेशन पर।

खैर जो हो, न जाने कितने बरसों के बाद रफीक भाई के परीशाँसूरत पर मुस्कुराहट के जुगनू दिखे। पूरा वजूद गुनगुना रहा था कि वो खुश हैं। भाई ने पॉकिट से विल्स फिल्टर की डिब्बी निकाली और नचा कर नाले में फेंक दिया।

उस दिन रफीक भाई को कमडेगा कॉलेज से विरमित होना था। लड़कों ने विदाई का अच्छा खासा कार्यक्रम बनाया था। रफीक भाई खूब अच्छे मूड में थे। सबको चलने का न्यौता दिया। लेकिन सबकी अपनी-अपनी व्यस्तताएँ थी। पर मुझे कमडेगा घूमने-देखने की इच्छा थी। (उससे ज्यादा इच्छा रास्ते में रफीक भाई के पुराने मकान और 'उन दिनों' के हादसों को जानने की थी जिसके बारे मे कोई खुल कर बात ही नहीं करना चाहता था।) यह इच्छा भेल्लोर की रिपोर्ट ने जगाई थी। उसके पहले उनकी चाल की लटपटाहट को मानो हमने स्वीकार ही कर लिया था। लेकिन अब लग रहा था कि कोई बात तो जरूर थी। केवल निकोटिन नहीं। यूसुफ भाई ने 'उन दिनों ' की ओर बार-बार इशारा तो किया था। अगर 'उन दिनों' के बाद से ही यह लटपटाहट थी तो यह केवल निकोटिन का असर कैसे हो सकता था? कुछ तो और भी जरूर ही रहा होगा। जिन्हें पैथोलॉजी समझ नहीं पा रही थी। बस हर छोटे-बड़े स्टॉप पर रुकती खरामा-खरामा चल रही थी। पहुँचने में ढाई-तीन घंटे लगने थे। हम इधर-उधर की बातों में टाइम पास कर रहे थे। मुझे रफीक भाई के अतीत को कुरदने में थोड़ी झिझक हो रही थी। कैसे बात शुरू करूँ समझ में नहीं आ रहा था। तभी उन्होंने एक सिगरेट निकाली। 'अरे!' मैं चौंका, 'भाई आपने तो न पीने की कसमें खाई थी, डिब्बी भी नाली में फेंकी थी। फिर क्यों?'

'देखिए भाई! छोड़ दूँगा। कसम खाई है तो छोड़ूँगा ही। किन्तु इतने

सालों से आदत सी हो गयी है। एक एडिक्शन ही समझ लीजिए। धीरे-धीरे जायेगी। दिन भर में पाँच का कोटा रखा है। अफसोस इस बात का है कि जिस इरादे से सिगरेट पीनी शुरू की थी वो पूरा नहीं हो सका।'

'अब सिगरेट पीने के पीछे क्या मंशा हो सकती है?'

'छोड़िए, इन बातों में रखा क्या है कुछ और बातें कीजिए। भाभी जान की पीएचडी पूरी हुई कि नहीं?' रफीक भाई टालने की कोशिश कर रहे थे।

'देखिए रफीक भाई! हर इनसान को अपनी प्राईवेसी का हक है। इसीलिए पिछले दस- एक वर्षों से दोस्ती के बावजूद हमलोगों ने कभी आपको नहीं टोका लेकिन हम सब लोगों को लगता है कि आपका अतीत आपकी पर्सनाल्टी पर हावी हो रहा है। आपको शेयर करना चाहिए। मवाद बहने के बाद ही घाव सूखता है।'

न जाने कब रफीक भाई की बाँयी हथेली मेरी हथेलियों के बीच आ गयी थी। जब उसमें थरथराहट शुरू हुई तो अहसास हुआ। नजरें उठाई तो देखा रफीक भाई के होंठ तेजी से फड़फड़ा रहे थे, आँखें डबडबा आयी थीं।

'कहाँ से शुरू करूँ भाईजान! और क्यूँ शुरू करूँ? आखिर हमारी कहानी जानकर भी कोई क्या करेगा? हमारे अब्बू को आपने देखा है? नाली के किनारे बैठा बीड़ी फूँकता, खाँसता, करियाया हड़ियल बूढ़ा। अल्यूमिनियम के पुराने बरतन सा। पिचका टूटा-फूटा, बेकार सा जिसका कोई वजूद न हो। और हमारे नीम पागल चाचू, तकरीर देता एक मसखरा। क्या ये ऐसे ही थे? काश! हमारी आँखों से इन्हें कोई देख पाता। अपने बचपन की यादों को मैं दिखा पाता। क्या शख्सियत थी हमारे अब्बू की। काश! मैं आपको मेन रोड की बजाजा गली वाला अपनी दो मंजिले मकान की खूबसूरती दिखा पाता। उसके पीछे की बगीची में गुलाबों और बेली की क्यारियों और रातरानी की झाड़ियों के पास जाड़े की धूप और गरमी की सोंधी शाम को अब्बू की आरामकुर्सियों पर आपको बिठा पाता जहाँ बैठकर अब्बू अपनी तरह-तरह के फ्लेवर वाली चाय पीया करते थे, और अम्मी नयी मैगजीन या बुक का कोई पन्ना या पैराग्राफ सुनाती रहती या पोइट्री के किसी लाइन पर बहस किया करती। अब्बू शहर के सफल बजाजा व्यापारियों में से एक थे। अम्मी भी पढ़ी लिखी, जहीन, लिटरेचर की जानकार। कहते हैं उनकी जैसी तालीमयाफ्ता इक्की-दुक्की शहर में थी। ये नीम पागल चच्चू उस वक्त हाई स्कूल के अव्वल स्टूडेंट हुआ करते थे और हॉकी के स्टेट लेवल के खिलाड़ी।'

रफीक भाई हाँफने लगे थे। थोड़ा रुके। बुझते सिगरेट से कश खींचा! खिडकी से बाहर आसमाँ की ओर ताकने लगे। जज्ब किये आँसुओं को रूमाल से पोछा। थोड़ी देर की खामोशी के बाद फिर बात शुरू की।...मवाद अब बह रहा था।

'तब मैं सात-आठ साल का रहा हूँगा। थोड़ी सी यादें, थोड़ा लोगों से सुनते-जानते बड़ा हुआ हूँ। तब शहर का जुगराफिया ही कुछ और हुआ करता था। अकल्लीयत के लोग खुशफहमी में थे। सन सैंतालिस में भी इस शहर में दंगें नहीं हुए थे। हर कहीं, हर मुहल्ले में अकल्लीयत खानदान के लोग बसे थे। हर पेशे, हर धन्धे में आगे बढ़ रहे थे। उन्हें क्या मालूम था कि वे सेक्यूलर इंडिया के सेकुलरिज्म पर थोड़ा ज्यादा ही भरोसा कर रहे थे। भाई जान! सन सड़सठ की छोड़ दीजिए, आज के दिन भी लाई-डिटेक्टर के सामने पूछ कर देखिए सौ में नब्बे लोग हमें गैर समझने वाले मिलेंगे। 'खाने वाले यहाँ के और गाने वाले वहाँ के' जैसे सोच से भरे। वे हमें बराबरी का हक-हकूक देने को तैयार नहीं। वे चाहते हैं हम दोयम हैं, दोयम बने रहें। जिए जरूर किन्तु एक कुत्ते की जिन्दगी।'

'न जाने कौन सा सवाल था। शायद उर्दू का राजभाषा बनने, न बनने देने का। मंशा सूबे में पहली बार बनी गैर-कांग्रेसी सरकार को बदनाम करने की थी। काले झण्डे से शहर पट गया। चन्द लोगों के दिमाग का ढक्कन फटा और खौलता हुआ सल्फ्यूरिक ऐसिड सड़कों पर बहने लगा हमारी वजूदों को खाक करता।'

'ये हमारे अब के मामूजान, तब हमारी दुकान में हेल्पर हुआ करते थे। इस आजाद गली के पुराने बाशिन्दे, उन्होंने मंजर भाँपते हुए एक दलित परिवार के खाली किये हुए इस छप्परपोश घर में ताला मार रखा था। जिस रात को हमारी दुकान में आग लगी, उसी रात को हमने अपना मकान 'अंसारी मंजिल' खाली कर दिया। अंदेशा तो था ही। सारे स्टाफ, नौकर-चाकर भी रात को घर में ही रुके थे। दंगाइयों को एक टक्कर देने की तैयारी के बावजूद अब्बू ने निकल चलने का ही फैसला लिया था। चन्द फर्लांग पर जलते दुकान की लपटों ने अफरा-तफरी मचा दी। बदहवासी में सब भाग-दौड़ कर रहे थे। अम्मी भी मुझे भूल गयीं। एक हाथ में गहने की संदूकची थामे गोदवाली छोटी बहन को सीने से लगाए सीढ़ियों से उतर गयीं। अजीब धक्का सा लगा।... एकदम ही भूल गयीं?... छोड़ दिया?... आवाज तक नहीं दीं? मैं कोठरी से खड़ा अवाक ताकता रह गया। छोटी बहन अब्बू के पास। वो पहले से ही उसे कंधे पर बिठाये नीचे ठेले पर सामान रखवा रहे थे। किसी को मेरी फिक्र नहीं थी।... सबने छोड़ दिया? सब भूल गये? क्या मैं इतना फालतू था? मैं वहीं फर्श पर बैठा सुबकने लगा। लगा मैं नहीं रहता, मर ही जाता तो अच्छा होता। ये बेरुखी तो नहीं देखने को मिलती। तभी किसी स्टाफ ने सामान के साथ-साथ मुझे भी दो मंजिले से नीचे उछाल दिया। वो चच्चू ही थे जिन्होंने मुझे थामा। मेरी हिचकी गले में घुँटकर रह गयी। मेरे होशोहवास उछाले जाने के बाद वहीं आसमान में टंगे रह गये।'

'थोड़ी देर में होश आया तो अम्मी पर बहुत गुस्सा आ रहा था। लग रहा था जोर-जोर से झकझोर कर पुछूँ क्यों मुझे छोड़ दिया?... क्यों?... भूली कैसे? मुझसे ज्यादा वह संदुकची कैसे प्यारी हो गयी? लेकिन यह ख्वाहिश आज तक पूरी नहीं हो सकी। उस रात शायद दो या तीन बजे के बीच का समय होगा। महात्मा गाँधी राजपथ से होकर जैसे ही इंदिरा गांधी स्ट्रीट घुसे, न जाने भेड़ियों का झुण्ड वहाँ कब से इन्तजार कर रहा था। काली आँधी का एक गुबार सा उठा और हमें तिनकों सा बिखरा कर चला गया। भेड़ियों के गुजरने के बाद हमारी बीस-पच्चीस की संख्या आधी से कम रह गयी। अम्मी और गोदवाली बहन भी गायब थी। संदूकची और ठेले के असबाब गायब थे। नुचे-लुटे भिखमंगे से हम आजाद गली के छप्परपोश मकान में दाखिल हुए।'

'भाई जान! हमारी और इस शहर की बात छोड़ दीजिए। नजर उठाकर देखिए पूरे हिन्दुस्तान में ऐसा कोई शहर नहीं मिलेगा जिसमें आजाद बस्तियाँ नहीं हों। ऐसा कोई गाँव नहीं मिलेगा जहाँ अलग टोले नहीं हों। और इन आजाद बस्तियों की बनावट एकदम सूअर की खोहड़

की तरह। गन्दगी और आदमियों की ठेलमठेल। मल से भरी हुई उफनती हुई नालियाँ, कूड़े-करकट, मक्खियों-मच्छरों के बीच कुत्ते की जिन्दगी। अब पैदा करते रहिए साइंटिस्ट, आईएएस, आईपीएस, इंजीनियर, डॉक्टर। पैदा करके देखिए इन खोहड़ों में पढ़ने-पढ़ाने का माहौल। कभी हो नहीं सकता। मंशा साफ है दोयम हैं, दोयम रहिए। ये बाबरी मस्जिद, रथ-यात्राएँ, गोधरा सब बहाने हैं हमें चूहा बनाने और बिल तक खदेड़ने के बहाने। अब तो बुश-ब्लेयर की फजल से पूरी दुनिया में ही ऐसा माहौल बन रहा है।'

'अम्मी के छोटे अब्बू, अन्सारी साहब, उस वक्त के स्टेट पॉलिटिक्स की बड़ी हस्ती हुआ करते थे। उनका बहुत प्रेशर पड़ा एडमिनिस्ट्रेशन पर। लेकिन वो नहीं मिलीं। न अम्मी मिलीं, न गोदवाली बहन। न उनकी लाशें। हाँ, सौ धक्के खाकर अब्बू को मकान-दुकान का कुछ मुआवजा मिला जिससे की यह फेरी का काम शुरू हो सका। बिना खाये-पिये अपनी अम्मी सरीखी भाभी जान को दिन-रात खोजते फिरते चचा कुछ ही महीनों में सीआईपी राँची पहुँच गये।'

'जैसे-जैसे मैं बड़ा होता गया अब्बू की हालत ज्यादा महसूस करता। मेरी सूरत अम्मी पर गयी थी सो अव्वल तो मेरी ओर वे ताकते नहीं थे। ताकते तो चेहरे के पार देखने लगते। गलती से नजर मुझ पर टिकती तो इरीटेट होने लगते या मुँह फेर लेते। दो तरफा नालियों से घिरे इस घर ने अब्बू को कम तबाह नहीं किया। सबेरे चबूतरे पर चाय पीने बैठते तो नालियों से उठता भभका, हगते बच्चे। अब्बू का चेहरा लाल होने लगता, देह थरथराने लगती। शायद दुर्गन्ध को बर्दाश्त करने के लिए ही बीड़ी की लत डाल ली। भला हो नयी अम्मी का जिन्होंने मेरी छोटी बहन और गृहस्थी को सम्भाल लिया।'

'दिनभर कपड़ों के बोझ के साथ फेरी और ऊपर से बीड़ी। अब्बू का चेहरा करियाने लगा। सेहत गिरने लगी। दो चार वर्षों में ही अब्बू ऐसे बदल गये कि पुराने ननिहाल से लोग हमारा हाल लेने गाहे-बगाहे आते तो उन्हें पहचान ही नहीं पाते।'

'मैं तब इण्टर में था जब पहली बार खाँसते, नाली में बलगम उगलते अब्बू को बीड़ी पीने से रोकने की कोशिश की थी और थप्पड़ खाया था। वह थप्पड़ भी मेरी जिन्दगी का पहला और आखिरी थप्पड़ था जिसके बाद हम और अब्बू दोनों रोये थे।'

'अब्बू की बीड़ी छुड़वाने के तरीके इजाद करने के चक्कर में मैंने सिगरेट पीनी शुरू की। शायद मुझे पीता देख वे नाराज हों और खुद भी बीड़ी पीना छोड़ दें। लेकिन उन्होंने मान लिया था कि मैं बड़ा हो गया हूँ। और कुछ नहीं कहा। तब से यह सिगरेट मेरी जान से लग गयी।

न जाने कब कमडेगा आया। विदाई-कार्यक्रम शुरू हुआ, कब खत्म हुआ, कुछ पता ही नहीं चला। दिमाग सुन्न हो गया था। रफीक भाई से नजर मिलाने से भी बच रहा था। लग रहा था इन सारे हादसों की जिम्मेवारी हमारे कंधों पर भी है। पाँव बोझिल हो रहे थे। कदम उठाना मुश्किल हो रहा था। अब रफीक भाई के पैरों का हवा में ठिठकने के मायने थोड़े-थोड़े समझ में आ रहे थे।

!!गुजरे हैं कई मरतबा हम दश्तो चमन से

हमलोग जमाने की हवा खाये हुए हैं!!

कमडेगा से लौटने के बाद महीनों रफीक भाई से भेंट नहीं हुई। कॉलेज अलग-अलग थे सो परीक्षाओं के मौसम ने बहुत बहाने दिये। विषय अलग होने के कारण कॉपी जाँचने के केन्द्र भी अलग-अलग। ऐसा नहीं था कि उनके खयालात नहीं आते थे। किन्तु खयाल अपने साथ नामालूम सी शर्मिन्दगी के अहसास भी साथ लाते। और शायद यह अहसासे-शर्मिन्दगी ही थी जो आजाद गली की ओर बढ़ते कदमों को रोक लेती।

परीक्षाओं और कॉपी-जाँच ने ऐसे ठोस बहाने दिये थे जिसके बिना पर 'यूनिवर्सिटी वॉयस' की प्रूफ रीडिंग और शिक्षक संघ की बैठकों में भी जाने से बचता रहा था।

तभी तबरेज भाई के फोन ने बन्द पोखर में पत्थर का काम किया, 'अपने खून को समझाइये। न प्रूफ रीडिंग में समय दे रहें हैं न एसोसिएशन की मीटिंग में। हाँ! आजकल प्रो. वीसी को तेल लगाने में थोड़ा ज्यादा ही ध्यान दे रहे हैं। एक दूसरी बात और, जो ज्यादा खतरनाक है। बिरादरी में ब्याह करते नहीं। हिन्दुआनियों के चक्कर में पिटते-पिटते बचे हैं। मर-मरा जायेंगे, तो शहर में दंगा हो जायेगा। कहाँ तो बजाजा गली में, कौन से अग्रवाल सदन की लक्ष्मी सदन के आसपास मंडराने का नया-नया चस्का लगा है।'

एक धक्का सा लगा। जिस शख्स की सैंतीस बहारें हुश्नो-इश्क से अनजान बीत चुकी हों उस पर आवारागर्दी, शोहदागिरी का आरोप। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। हालाँकि बजाजा गली से कुछ पुराने मकान का चक्कर रहा होगा इतना समझ रहा था। लेकिन कॉलेज-यूनिवर्सिटी के दिनों में भी लड़कियों से थोड़ी दूर ही रहते थे रफीक भाई। गर जबरन कोई लड़की ग्रुप में शामिल हो अनौपचारिक होने लगती तो उसे बहन बना लेते। तब हम मजाक भी किया करते कि घर में बहनों की कमी है क्या? खुदा की फजल से पाँच-पाँच बहनें हैं। फिर बाहर क्यूँ नजरे झुकाए-झुकाए बहनों की लाइन लगा रहे हैं?

तब हमें कहाँ मालूम था कि वो मान कर चल रहे थे कि उनकी अम्मी और गोदवाली बहन हैं। यहीं कहीं हैं। सचमुच उन लड़कियों में कोई उनकी बहन ही हो और अम्मी से पूछे जाने वाली उनके सवालों की सूची तो रोज घटती-बढ़ती रहती। और यह भी कि साड़ी पहननी पढ़ी-लिखी हर सुन्दर सी महिला उन्हें अम्मी ही लगती।

खैर, प्रूफ रीडिंग और बैठकों में गैरहाजिरी के लिए शिकायत तो समझ में आ रही थी। किन्तु प्रो. वीसी वाली बात हजम नहीं हो रही थी। इस मरगिल्ले, हैंहियाने वाले, दाँत निपोर प्रो. वीसी के चेहरे से भी भारी चिढ़ थी हमारे ग्रुप को। फिर अचानक क्या हो गया?

और तबरेज भाई के सम्बोधन से तो साफ था कि वो उस दिन की बतकही को भूले नहीं थे। चाय की दुकान पर तबरेज भाई सदा की तरह मसखरी के मूड में थे। लेकिन चुटकुले वही पुराने, जुलाहों की बेवकूफियों पर। रफीक और यूसुफ भाई नहीं थे तो ज्यादा बुरा लग रहा था। टाँड़ खेत में खिले काँस को चाँदनी रात में नदी समझ कर एक जुलाहे के नहाने वाले चुटकले को पिछले दिनों से कई बार सुनने के बाद आखिर मेरी बर्दाश्त खत्म हो गयी। झाड़ने के सिलसिले में ही यह बात कह दी थी कि मै भी तो बैकवर्ड हूँ एक पसमांदा। आप जैसे अशराफ, पंडितों की नजर में छोटी जात। इस बिना पर हम और रफीक भाई एक ही खून

हुए। अब से अल्ल बल्ल बकने के पहले जरा सोच लिया कीजियेगा। तबरेज भाई ने यह खून वाली बात पकड़ ली थी।

शाम को वही पुराना अड्डा। पीपल तले की चाय गुमटी की बेंच। एक छोटी सी पीतल की डिब्बी से भूनी हुई आजवाइन निकाल-निकाल कर फाँके जा रहे थे रफीक भाई। सिगरेट की तलब मिटाने का देशी तरीका अजमाया जा रहा था। फीजियोथेरेपी का भी असर चेहरे पर दिख रहा था। किन्तु निगाहों में वही परेशानी थी और आँखों मे फिक्रमन्दी। चाय आयी तो सिगरेट भी सुलगाने लगे। पूछने के पहले बता दिया पाँच से तीन पर आ गये हैं।

हम गुमसुम बैठे थे। चाय की चुस्की मे डूबे हुए, गुजरने वाले लोगों से, साइकिलों-स्कूटरों से बहुत दूर खोये हुए से। आसपास खेलते बच्चे भी हमारा ध्यान नहीं खींच पा रहे थे। मैं बीच-बीच में रफीक भाई की ओर ताक भी लेता था। किन्तु वे चाय और सिगरेट के साथ व्यस्त और उनकी निगाहें सातों आसमान की थाह लेने में। मुझे कैफी की वो लाइने याद आने लगीं, आज तुम कुछ न कहो, आज मैं कुछ न कहुँ, बस यूँ ही बैठे रहो, हाथ में हाथ लिये, गम की सौगात लिये, गर्मी-ए-जज्बात लिये और न जाने क्या-क्या। मन ही मन याद करने की कोशिश कर रहा था। शायद आखिरी पंक्ति थी दूर पर्वत पर कहीं, बर्फ पिघलने ही लगी। तब तक भाईजान की निगाहें थाह लगा कर वापस धरती पर लौट आयी थीं। अब होंठ हिले और शब्द सुनाई दिये, जहे किस्मत!

भाईजान ने बिना मेरे कुछ कहे मंजर भाँप लिया था। हमेशा की तरह तल्ख थे। आज धाँह थोड़ी ज्यादा थी 'मैं इन लोगों से आजिज आ गया हूँ। ये दोनों लोग तबरेज भाई और दिनेश भाई हर जगह ढिंढोरा पीटते चल रहे हैं, कि हमने ट्रांसफर करवा दिया। अव्वल तो यह डेपुटेशन है मुकम्मल ट्रांसफर भी नहीं। और साली इसी डेपुटेशन के लिए कम से कम सौ लोगों के सामने सिजदा किया होगा। उनके दरवाजों पर सर रगड़े होंगे। किसका-किसका नाम लूँ। और किसने मदद नहीं की? सबने अपने औकात भर मदद की ही। आपने भी अपने जानते मदद की। यूसुफ भाई ने भी अपने हिसाब से फोन-वोन करवाया ही। नहीं तो यह काइयाँ बुड्ढा यूँ ही अपने पुट्ठे पर हाथ थोड़े धरने देता।'

'दूसरी बुरी आदत है तबरेज भाई की कि दूसरों को चढ़ा देंगे और मौका माकूल नहीं लगा तो अपने पीछे हट जायेंगे। पिछले दिनों शिक्षा मंत्री के प्रोग्राम को लेकर जो सूवेनियर पब्लिश हुआ था उसकी जिम्मेवारी वीसी ने हमीं लोगों को सौंपी थी। फाइनल करने को उनके चैम्बर में बैठे थे। गर्ल्स कॉमर्स कॉलेज की प्रिंसिपल वर्मा मैडम के आर्टिकल पर हम तीनों लोगों को एतराज था। पोस्टकार्ड साइज का रंगीन फोटो और पासपोर्ट साइज की आर्टिकल। फोटो भी उसी तरह की जैसे रहती हैं पचपन की उम्र में भी खुले बाल लहराते हुए, लिपिस्टिक, गहरा मेकअप। कहीं से भी प्रिंसिपल की शान के लायक नहीं लग रहे थे, न फोटो, न आर्टिकल। बात तय हुई थी कि पहले मैं एतराज दर्ज कराऊँगा उसके बाद ये दोनों लोग भी अपने-अपने ढंग से सर्पोट करेंगे। लेकिन मैंने तो अपने अन्दाज से बात रख दी और ये लोग बुड्ढे का चेहरा पढ़कर भाँप गये कि बात चुभ गयी है सो चुप लगा गये। मैं बुरा बन गया। फोटो-आर्टिकल तो छपा ही, अन्दरूनी जानकारी मिली कि बूढ़ा डेपुटेशन खत्म करने की फिराक में है।

यह तो मेरी खुशकिस्मती थी कि साइन्स कांग्रेस के लिए प्रो. वीसी को पेपर तैयार करने के लिए मेरी याद आयी। मैंने उनकी मदद की और उन्होंने मेरी। डेपुटेशन खात्मा का खतरा टला। अब शायद मुकम्मल ट्रांसफर ही हो जाये।'

'वह बजाजा गली वाली क्या बात है भाई, कोई मार-पीट भी हुई थी शायद।' रफीक भाई ने अजीब डूबती निगाहों से देखा और देखते-देखते उनकी आँखें डबडबाने लगीं। फिर पूरी कोशिश से जज्ब करने में लग गये। आहिस्ता से खामोशी फिर हमारे बीच आकर बैठ गयी। उसके गहरे साये में दबकर लम्हें सुबकने लगे। जब सिगरेट के धुँओं से उतरी उदासी सूइयाँ चुभोने लगी तो हम उठ खड़े हुए। फिर न मैंने कुछ पूछा न भाई से कुछ बताना मुनासिब हुआ। यूँ ही चुप-चुप हम एक दूसरे से जुदा हो गये।

बाद में यूसुफ भाई से जानकारी मिली कि बजाजा गली का अग्रवाल-सदन, कुछ और नहीं अंसारी-मंजिल ही है, रफीक भाई का पुराना मकान। भाई को वहम हो गया था कि अगर किसी तरह अग्रवाल सदन की चौखट को एक बार पार कर लेते और ऊपर उस बालकनी से झाँक लेते जहाँ से उन्हें उछाला गया था तो शायद उनके पैरों की नामालूम सी तकलीफ दूर हो जाती। पैर शायद जमीं को पहचान पाते। हवा में लटके होने का भरम शायद दूर होता।

यूसुफ, रफीक भाई के दूर के रिश्तेदार भी लगते थे। सो वो सारी बातों से परिचित थे। उन्होंने यह भी बताया कि भाई की एक और ख्वाहिश थी कि काश वो अपने अब्बू को सिर्फ एक बार उसी बगीची में उन्हीं गुलाबों-बेली की क्यारियों के बीच बैठा पाते।... पूरे सुकून के साथ। और खुश्बूदार एक प्याली चाय होती और कुछ नहीं। होती तो बस पोएट्री की कोई किताब होती।

बस इन्हीं छोटी-छोटी ख्वाहिशों को पलकों पे उठाए वे बजाजा गली के गाहे-बगाहे चक्कर काटने लगे। जब देखिए उनके स्कूटर का रूख उसी ओर होता। हर बार सोचते कि अग्रवाल सदन के किसी बुजुर्ग से बात करें। लेकिन पहुँचते ही गड़बड़ा जाते। आखिर कोई क्योंकर मानता कि यह घर पहले इन्हीं का था, खास कर अग्रवाल खानदान के लोग।

रफीक साहब को भी कहाँ मालूम था कि उस मकान में उनकी छात्राएँ रहा करती हैं। बड़ी वाली तो इन्हीं के विषय में आनर्स कर रही है, छोटी वाली भी इण्टर साइंस में है और इनकी केमेस्ट्री क्लासेज की फैन। जिस घर में रफीक भाई के दो-दो मुरीद हों, घर वालों को पता लगना ही था। 'सर' के स्कूटर की आवाज सुनकर ही दोनों की खिलखिलाहट, बालकनी से ताक-झाँक और आँखों की चमक इतनी बढ़ जाती कि अंधे भी समझ लेते माजरा क्या है। भले रफीक भाई न समझे हों।

क्लासेज में लड़कियों वाले कोने की तरफ ताकने से इन्होंने तो तौबा की हुई है। वैसे इनकी पलकों पर तो ख्वाहिशों की तितलियाँ काबिज रहती थीं। उनका रंग उतरे तब तो दूसरों का रंग चढ़े। किन्तु मिस अग्रवाल्स के माँ-बाप ने अपने बच्चियों के रंग-ढंग भाँपकर अपने हिसाब से हिस्ट्री और साइकोलोजी समझी। उनकी निगाहों में कहाँ ताव थी कि वे रफीक भाई की तितलियों को देख पाते। सो अनदेखे तितलियों की कारस्तानी से गली के शोहदों और अग्रवाल साहबान के स्टाफों के हाथों बुरी तरह जलील होकर एक दिन वापस आ गये। नन्हीं तितलियों ने पलकों पर ही दम तोड़ दिया। शायद आँसुओं के गंगो-जमन में डूबने से

साँसें घुँटी हों। मजबूरी और जलालत ने चाल की लटपटाहट और बढ़ा दी। जो सोचा, हो न सका। कदमों की जमीं की तलाश बाकी रह गयी। वजूद का एक हिस्सा वहीं बालकोनी के बाहर टंगा रह गया।

!! कागज तमाम किल्क तमाम और हम तमाम

पर दास्ताने-शौक अभी नातमाम हैं!!

दिन खूँटे तुड़ाये बैल से भागे जा रहे थे। बच्चों की परीक्षाएँ, मेम साहब की बीमारी। सोचने की भी फुर्सत नहीं। महीने भी इतनी तेजी से बीत गये मानो किसी रेस मे दौड़ रहे हों। तभी 'यूनिवर्सिटी वॉयस' की बैठक की खबर ने खलल डाली। ठीक बात है, साल-डेढ़ साल से प्रकाशन रुका पड़ा था। रफीक भाई के डेपुटेशन के बाद एक दो ही इश्यू आ पाया था।

दिनेश भाई के यहाँ मीटिंग थी। रफीक भाई के सिवा सब जुट गये थे। माहौल खुशगवार था। फोन-सेल पर तो बातें होती रहती थीं। मिलना अच्छे खासे दिनों के बाद हो रहा था। शायद उसका भी असर हो। तभी रफीक भाई का स्कूटर दिखा। रंग-ढंग बदला सा, नया-नया। मालूम हुआ डेंटिंग-पेंटिंग करवायी है। भाईजान भी बदले-बदले दिखे। बाल-वाल ठीक से सँवरे हुए। क्लीनशेव्ड। ब्रांडेड शर्ट। ब्रांडेड पैण्ट। नये जूते-वूते। चेहरे पर लाली और आँखों में भरपूर चमक। चाल की लटपटाहट भी कम लगी। 'बात क्या है?'

'आपके रफीक भाई को एक रफीका मिल गयी हैं जिन्हें रफीक-ए-हयात क्या कहते हैं जीवन संगिनी बनाना चाहते हैं', तबरेज भाई ने खबर दी।

'क्या भाई जान! यह क्या सुन रहे हैं।... आपसे तो ऐसी उम्मीद न थी।... अरे! ये तो शरमा रहें। बात सचमुच सच है।'

खुशनुमा शोर से कमरा बजने लगा।

'अरे! बचपन की ही दोस्तानी हैं, रफीका साहिबा मिस तबस्सुम जहाँ। रायरंगपुर वाली छोटी बहन की ननद। इण्टर की परीक्षा देकर छुट्टी मनाने गये थे। लूडो-शूडो का खेल हुआ करता था। खूब जुगनू पकड़-पकड़ हथेलियों में भरा करते थे जनाब। इसी बहाने गुदाज हथेलियों की रंगो-खुशबू चुराया करते। अरे! मियाँ को कम मत समझिए। खेले खाए हैं। सैंतीस बहारें यूँ ही नहीं गुजरी हैं।'

सब जेनरल नॉलेज बढ़ाने पर आमादा थे। उधर रफीक भाई झेंपे जा रहे थे।

सच तो यह है कि वो वाकया रफीक भाई सचमुच भूल गये थे। सहरा की तपतपाती रेत में चार दिन चाँदनी किसे याद रहती है। भला हो पब्लिक सर्विस कमीशन वालों का जिन्होंने तबस्सुम साहिबा का सेन्टर न केवल राजधानी में बल्कि भाईजान के सिटी कॉलेज में ही दे दिया। यानी कि मिलना तय था। शायद अल्लाह का करम अपना काम कर रहा था। परीक्षा- केन्द्र के रूप में राजधानी का चयन तो खुद तब्बसुम ने ही किया था लेकिन सिटी कॉलेज में ही सेंटर पड़ेगा यह नहीं सोचा था।

'छोटी' निकाह के बाद कब मैके आयी थी यह रफीक भाई को भी याद नहीं। नयी माँ और उनकी बेटियों से कभी पटा ही नहीं। एक यह कारण हो सकता है। दूसरा कि रायरंगपुर के संयुक्त परिवार में इतना काम रहता कि साँस लेने की फुर्सत नहीं मिलती। ऊपर से चार-चार बच्चे। बस अब्बू और उनसे खतो-किताबत चलती रहती। सौतेली बहनों की शादियों में भी किसी न किसी बहाने मटियाते रहीं, न ही आयीं।

तबस्सुम अपनी खाला के यहाँ हसन-कॉलोनी में टिकी थी। नयी-नयी बसी थी कॉलोनी। तबरेज भाई जैसे प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर, बैंककर्मी लोग और कुछ व्यवसायियों ने कॉपरेटिव बनाकर दो-चार बरस पहले ही इस कॉलोनी को बसाया था। बाउन्ड्री की ऊँची दीवारों पर घरों से कम खर्च नहीं हुए थे।

आज बरसों पहले उन गुदाज हथेलियों में बन्द किये गये जुगनू सैकड़ों-हजारों की संख्या में रफीक भाई के चारों ओर मंडरा रहे थे। पन्द्रह दिनों की परीक्षा के बहाने सुबहो-शाम की भेंट ने बीच के बरस मिटा दिये थे।

जीवन में बदलाव साफ झलक रहा था। साथ ही यह भी कि पहली बार किसी ने उनके पैरों की जमीं से जान-पहचान करवा दी थी। हालाँकि हवा, उनके पैरों और जमीं के बीच की हवा, बरसों से हर पल यह कोशिश करती रही थी किन्तु रही असफल। आज एक लगाव ने, जिन्दगी की ललक ने वह काम कर दिया था ऐसा लगता था। तबस्सुम भी अब इनके लेक्चरशिप, डॉक्टरेट, यूनिवर्सिटी टॉपर आदि-आदि के रूआब से बाहर आकर सचमुच की रफीका खास दोस्त बन गयी थी। लौटने के बाद भी हर तीन-चार घंटे पर मोबाइल पर बतियाये बिना दोनों को चैन नहीं आता था। एसएमएस के लिए तो कोई टाइम की बन्दिश ही नहीं थी।

जिन्दा रहने के लिए इनसान कितने खूबसूरत बहाने ढूँढ निकालता है। एक ख्वाहिश की लाश पर दूसरी इच्छाओं की पौध। इन पहाड़ियों की पथरीली जमीन पर भी सरगुजा के फूल अफरात में खिल उठते हैं बस उस खास मौसम का इन्तजार भर करना होता है। वही सरगुजा के अनगिन फूल, नन्हीं सूरजमुखियाँ रफीक भाई के वजूद पर खिली नजर आ रही थीं। अब इन फूलों को कोई नजर न लगे। अब कोई ताप नहीं। हल्की सी भी धाँह नहीं। या खुदाया।

न जाने मैं कहाँ खो गया था। तबरेज भाई की तेज आवाज से होश आया, 'रफीक मियाँ आँख-कान खुली रखते तो तबस्सुम बेगम अब तक इनके आँगन में दो-चार बच्चे खेला रही होती। बुद्धि हो तब न। 'इन लोगों' की बुद्धि तो घुटनों में होती है। पढ़ने-लिखने से क्या होता है? हैं तो 'वही' न।'

तबरेज फिर अपनी औकात पर आ गये थे। अशराफत अपनी जोम पर थी। कमरे का तापक्रम एकाएक बदल गया था। इसका उन्हें अहसास ही नहीं था। वे अपनी रौ में बहे जा रहे थे, 'ये सन सड़सठ में अटके हैं। लगता है इनके साथ पूरी दुनिया भी गम में घुली जा रही है। ये सरासर बेवकूफी नहीं है तो क्या है। यह तो वही वाली मिसाल हुई कि एक जुलाहा रात में नाव से सफर को निकला लेकिन पाल खोलना ही भूल गया। सुबह तक पतवार से नाव को खेता रहा, लेकिन नाव जहाँ की तहाँ रह गयी। लोगों ने पूछा तो सफाई दी कि क्या करें मेरा जो गाँव है वह मेरी जुदाई बर्दाश्त नहीं कर सकता। ये भी सन सड़सठ के किनारे ही पतवार खेते जा रहे हैं। और जिन्दगी का पाल ही खोलना भूल गये।'

न जाने कौन बेवकूफी कर रहा था। पूरा कमरा उनकी आवाज

से फटा जा रहा था। एकाएक खाये जा रहे खीर की मिठास ही गायब हो गयी थी। तभी रफीक भाई ने अपनी कटोरी जोर से पटकी और कमरे से बाहर निकल गये। चेहरा तमतमा रहा था। चाल में फिर से उतनी ही लटपटाहट। स्कूटर तक पहुँचने में अच्छी खासी देर लगी।

हमें मालूम था कि रफीक भाई कहाँ गये होंगे। तबरेज भाई को छोड़ हम एक-एक कर वहीं पहुँच गये। पीपल तले की चाय गुमटी पर। वही पुराना मंजर था। वही आकाश, वही सिगरेट, वही धुँआ, वही खमोशी।

'ये अशराफ नमक है। हमारे जी-जान से लगे, ताजिन्दगी आहिस्ता-आहिस्ता गलाने वाले, यूसुफ भाई भुनभुना रहे थे।

मुझे कर्ण के रथ पर काबिज राजा शल्य की याद आ रही थी। बोल मारता, तंज कसता, छोटी जाति का अहसास करा कर्ण के मनोबल तोड़ने की कोशिश करता राजा शल्य। 'देखिए भाई! जो हुआ सो भूल जाइये। आप भी जानते हैं कि हम सब से कितना लगाव है तबरेज का। अब हर इनसान में अच्छाई-बुराई होती तो है। इनसान तो इनसान ही है भगवान तो नहीं है सो बुराइयाँ तो होंगी। मसखरापन तो ठीक है। किन्तु कास्ट को लेकर तंज नहीं कसनी चाहिए यह तो मैं भी मानता हूँ। अब माफ कर दीजिए। भूल जाइये', ये दिनेश थे, कसे तारों को ढीला करने की कोशिश में।

धीरे-धीरे माहौल हल्का हुआ। वही 'यूनिवर्सिटी वायस' के अगले अंक की रचनाओं पर चर्चा हुई। यह भी तय हुआ कि भांजे के जन्मदिन पर रफीक भाई को जरूर रायरंगपुर जाना चाहिए। इस बार बहन से, दुल्हे भाई से खुल कर अपनी भावनाओं का इजहार करके आना चाहिए।

दिन की भागम-भाग फिर शुरू। गर्मी की लम्बी छुट्टी, फिर ससुराल में शादी। शहर से लम्बे समय तक दूर रहना पड़ा। बस मोबाइल का ही एक सहारा था। हाल-समाचार मालूम होते रहते। ग्रुप से मिली खबरों से यह अन्दाज लग रहा था कि रफीक भाई का रायरंगपुर दौरा कुछ अच्छा नहीं रहा। आफतनसीब हैं रफीक भाई। इससे ज्यादा कोई बता नहीं रहा था। फिर से चेन स्मोकिंग शुरू कर दी है, पैरों का मर्ज बढ़ गया है यह भी खबर थी। उनसे बात हो नहीं पा रही थी। मोबाइल स्विच ऑफ रहता। क्या बात हो गयी, समझ में नहीं आ रहा था। मन उचट गया। जल्दी लौटने का बहाना ढूँढने लगा।

शहर लौटते ही सबसे पहले स्कूटर उठा कर आजाद-गली की ओर निकला। एसएमएस करके ग्रुप के और लोगों को खबर कर दी थी। स्कूटर रफीक भाई के घर की ओर मुड़ा तो अजब मंजर दिखा। रफीक भाई रिक्शे से घर के दरवाजे के पास उतरने की तैयारी कर रहे थे। पैर तेजी से काँप रहे थे। हाथों में एक छड़ी सी पकड़ी हुई थी। रिक्शेवाले ने बाँह पकड़ कर उतरने में सहायता की तब तक चबूतरे पर बैठे अब्बू उठे और बेटे को थाम लिया। नाली पार करते दोनों बाप-बेटे ऐसे थरथराते कदम बढ़ा रहे थे कि लग रहा था अब गिरे तब गिरे। मैंने एक्सीलेटर बढ़ाया। स्टैंड कर तेजी से बाँह थामने को बढ़ा मगर तबतक दोनों चबूतरे तक पहुँच चुके थे।

अब्बू मुझे देखकर अन्दर चले गये। रफीक भाई की आँखों में पहचान की कोई लहर नहीं उठी। हैलो का भी जवाब नहीं दिया। मिलाने को बढ़ा हाथ हवा में कुछ पल लटका रहा। मायूस हो सिमट गया। चारमीनार फूँकते रफीक भाई ने फिर आसमाँ की तरफ टकटकी लगा दी। मनहूस खामोशी हमारे बीच पसर गयी। अजब अटपटा सा लगने लगा। तब तक ग्रुप के और लोग पहुँचने लगे।

यूसुफ भाई-दिनेश भाई ने फुसफुसा कर जो बात बताई उसे सुनकर रफीक भाई की कमनसीबी पर रोना आने लगा।

सब ठीक ही चल रहा था, रायरंगपुर में। बहन और बहनोई का तो पहले से ही मन था। वे बस रफीक भाई की मंशा जानना चाहते थे। इतनी पढ़ी-लिखी लड़की को ऐसे-वैसे घर में तो देने से रहे। बरसों पहले भाई जब वहाँ गये थे तो दोनों का लगाव उन लोगों ने भी महसूस किया था। उन्हें कोई उज्र नहीं था।

लेकिन किसी की बुरी नजर लग गयी।

भाँजों के संग शहर का खूब चक्कर काटते शायद काफी थक गये थे रफीक भाई। बेडरूम में उठंग कर टी वी देखते गहरी नींद में सो गये। अब मसहरी लगाने गयी थी कि टीवी ऑफ करने, ज्यादा रात भी नहीं हुई थी। दस-साढ़े दस बज रहे होंगे। हाँ! ढंग की साड़ी पहनी हुई थी। माथे पर आँचल-वाँचल भी था तभी रफीक भाई आधी नींद में उठे और अम्मी-अम्मी कह कर झकझोरने लगे। कुछ बड़बड़ा भी रहे थे। अजीबो-गरीब हरकत से तबस्सुम काफी घबरा गयी और इन्हें झटक कर भागी। इन्हें तो उस वक्त कुछ पता ही नहीं चला। फिर आराम से गहरी नींद में सो गये। सबेरे सबका मुँह उतरा हुआ था। तबस्सुम कहीं दिख नहीं रही थी। मालूम हुआ एक एनजीओ के लोगों के साथ कोई प्रोजेक्ट पूरा करने निकली हैं। शायद तीन-चार दिनों में वापस आये। मोबाइल स्विच ऑफ बता रहा था।... वह आज तक बता रहा है। बात बिगड़ चुकी थी। 'छोटी' ने दुल्हे मियाँ के जाने के बाद इशारा किया, तब से तबियत बिगड़ती चली गयी। शायद इस बार ख्वाबों का महल ज्यादा पुख्ता और ज्यादा ऊँचा था। भरभरा कर गिरा तो गहरी चोट आयी। शायद एक बार फिर पैरों तले की जमीं गुम हो गयी। दो चार कदम चलना भी मुश्किल हो रहा है।

जिद्दी भी गजब के हैं। न चेकअप करवा रहे हैं न कोई दवा ले रहे। फीजियोथेरेपिस्ट के यहाँ जाने को तैयार नहीं होते। फिर चारमीनार पर आ गये हैं। अब एक ही रास्ता बचा है कि किसी तरह भेल्लोर ले चला जाये।

उस रात की हरकत पर कुछ बोलते ही नहीं। बहुत कुरेदने पर बस इतना बताया कि मेरी अम्मी मरी नहीं हैं। वो हैं। हर साड़ी पहनी तालीमयाफ्ता पाक नफीसा मुझे अम्मी लगती हैं। यह सच है। लेकिन उस रात क्या हुआ यह याद नहीं।

खामोशी और उदासी की मनहूस काली बिल्लियाँ फिर से हमारे चार सूँ डोलने लगीं। हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। सिर झुकाए सोचे जा रहा था आखिर कब तक कोई इस तरह जी सकेगा।

तभी यूसुफ भाई की मोबाइल की उदास धुन ने सन्नाटे को तोड़ने की हिम्मत की। अनजान नम्बर था। झिझकते हुए हैलो किया। उधर से जो हल्की सी आवाज आई उसने तो बस जादूगरी दिखाई। रफीक भाई की निगाहें जागीं। अब चश्मेनम में पहचान की परछाइयाँ काँपने लगी थीं। बिला शक उस ओर तबस्सुम थी। रफीक भाई की अश्कबार आँखें यह बता रही थीं कि सीने में जमा बरफ-सा गम अब पिघलने लगा था।

('कथादेश' जून, 2007 में प्रकाशित)

पुस्तक समीक्षा

कोरोना महामारी के समय 'वेनिस का सौदागर' नाटक की एक तहकीकात

-- विक्रम प्रताप

(16वीं सदी में विलियम शेक्सपियर ने वेनिस का सौदागर (द मर्चेंट ऑफ वेनिस) नाटक की रचना की थी। यह नाटक कितना लोकप्रिय हुआ, इसका अंदाजा लगाने के लिए इतना कहना ही काफी है कि दुनिया की कई भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और अपनी रचना काल से अब तक इसका दुनिया भर में अनगिनत बार मंचन किया जा चुका है। कोरोना महामारी के चलते लॉकडाउन जारी है। इस समय का फायदा उठाते हुए लेखक ने इस विश्व प्रसिद्ध और कालजयी रचना पर अपने चन्द शब्द लिखे हैं। इसके माध्यम से यहाँ 21वीं सदी की दो मुख्य परिघटनाओं पर भी जोर दिया गया है पहला, वित्तीयकरण जिसे सूदखोरी का ही उन्नत रूप कहा जा सकता है और दूसरा, साम्प्रदायिकता और नस्लवाद। कोरोना महामारी से भी ये परिघटना कहीं न कहीं गहराई से जुड़ती है, जिसका यहाँ केवल संकेत भर किया गया है।)

बस्सानियो मौजमस्ती में व्यस्त अमीर घराने का खुशमिजाज नौजवान है, बेलगाम फिजूलखर्ची ने उसे कंगाल कर दिया है। वह बेलमोन्ट की राजकुमारी पोर्शिया से शादी करना चाहता है, लेकिन उसे पाने के लिए बहुत अधिक पैसों की जरूरत है, क्योंकि वह किसी अमीर सामन्त से शादी करने की इच्छुक है। इसके अलावा राजकुमारी पोर्शिया आने वाले सामन्तों के सामने एक पहेली सुलझाने के लिए देती है, जिसे सुलझाने वाले सामन्त से ही वह शादी करेगी। दूसरी ओर धन का आकांक्षी बस्सानियो अपने घनिष्ट मित्र एंटोनियो से मदद के लिए कहता है, जो एक सम्पन्न व्यापारी है। एंटोनियो अपने दोस्त की मदद के लिए सहमत तो है, लेकिन अभी जहाज वापसी तक उसके पास पैसे नहीं हैं। बस्सानियो कर्ज के लिए यहूदी सूदखोर शाईलॉक के पास जाता है। लेकिन एंटोनियो ने पहले कभी शाईलॉक के साथ यहूदी होने के चलते बहुत दुर्व्यवहार किया था। एक बार भीड़ वाले इलाके में एंटोनियो ने शाईलॉक को कुत्ता कहा और उसके मुँह पर थूक दिया था। यहाँ यह बात साफ जाहिर है कि विलियम शेक्सपियर 16वीं शताब्दी के जिस वेनिश शहर का जिक्र करते हैं, वहाँ यहूदी समुदाय के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता था। इस रचना से यह भी पता चलता है कि वहाँ का कानून भी यहूदियों के खिलाफ भेदभाव बरतता था और सामान्य ईसाई लोगों में उनके प्रति नफरत भरी होती थी।

शेक्सपियर ने पीड़ित समुदाय के एक व्यक्ति को सूदखोर के रूप में चित्रित किया। सामान्यतः किसी भी समाज में सूदखोर से घृणा की जाती है क्योंकि वह लोगों की मजबूरी का फायदा उठाकर ब्याज कमाता है और धन इकट्ठा करता है। लेकिन शाईलॉक के प्रति यह खास घृणा यहूदी कौम के प्रति आम घृणा में नहीं बदलती। शाईलॉक बहुत धनी सूदखोर है। वह एक शर्त के साथ बस्सानियो को पैसे उधार देने के लिए सहमत है-- यदि बस्सानियो तय तिथि पर इसे वापस नहीं करता है, तो शाईलाक उसके दोस्त एंटोनियो के एक पाउण्ड मांस से अपने घाटे की भरपाई करेगा। बस्सानियो इस समझौते से संकोच करता है, लेकिन एंटोनियो को इसमें कोई समस्या दिखायी नहीं देती है। उसे यकीन है कि वह समय पर ही शाईलॉक का कर्ज चुकाने में सफल हो जायेगा।

एंटोनियो की जान-पहचान का एक व्यक्ति शाईलॉक से कहता है कि मुझे यकीन है अगर एंटोनियो कर्ज चुकाने में नाकाम होता है तो आप उसका मांस नहीं लेंगे। शाईलॉक की नफरत यहूदी पीड़ा के रूप में सामने आती है जो सताये गये यहूदियों के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति पैदा करती है। वह कहता है कि कर्ज तो मछली के लिए काँटे में चारे के समान है। इससे कुछ और हो या न हो, मेरा बदला जरूर पूरा होगा। उसने मुझे अपमानित किया और मेरे नुकसान पर हँसा, मुझे व्यापार में जब फायदा हुआ, तो उसने मेरा मजाक उड़ाया। मेरी कौम को अपमानित किया... मेरे दोस्तों का मनोबल तोड़ा, मेरे दुश्मनों को भड़काया। इन सबका क्या कारण है? मैं एक यहूदी हूँ! यह देखो, मेरे पास यहूदी आँखें नहीं हैं? यहूदी हाथ, अंग, भावनाएँ, स्नेह, जुनून नहीं हैं? हम (ईसाई और यहूदी) एक जैसा भोजन करते हैं? हमें एक जैसे हथियार से चोट लग सकती है? हमें रोग, इलाज, गर्म और ठण्डा, तथा एक ईसाई की तरह सर्दी और गर्मी लगती है? अगर आप हमें काँटा चुभाएँगे, तो क्या हमारा खून नहीं बहेगा? आप हमें गुदगुदी करेंगे, तो हम हँसे नहीं? अगर आप हमें जहर देंगे तो क्या हमारी मौत नहीं होगी? और अगर तुम हमारे साथ गलत करोगे तो क्या

हम बदला नहीं लेंगे? अगर हम इन मामलों में आपके जैसे हैं, तो बाकी मामलों में भी हम आपके समान होंगे। अगर एक यहूदी किसी ईसाई के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसकी सदाशयता क्या है? प्रतिशोध। अगर एक ईसाई किसी यहूदी के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो ईसाई उदाहरण के हिसाब से उसकी पीड़ा का क्या होना चाहिए? प्रतिशोध क्यों नहीं? आप व्यवहार में मेरे साथ जो खलनायकी दिखाएँगे, मैं भी उसी पर अमल करूँगा। और इस तरह चीजें बदतर होती जायेंगी।"

यहाँ हम देखते हैं कि अपने नाटक 'वेनिस का सौदागर' में शेक्सपियर आम लोगों में फैली साम्प्रदायिकता की उस भावना को चिन्हित करते हैं, जिसका शिकार आज भी बहुत से देशों और हर समाज के अल्पसंख्यक समुदाय हैं। पिछले 400 सालों में दुनिया भर में यह साम्प्रदायिकता टेढ़े-मेढ़े और ऊबड़-खाबड़ रास्तों से होती हुई आज 21वीं सदी में एक खतरनाक मोड़ पर पहुँच गयी है। आज कई देशों में नस्लवादी और फासीवादी सरकारें सत्ता में काबिज हैं। दुनिया के बड़े हिस्से में साम्प्रदायिकता का जहर फैला है। अवीवा डेच जो पुनर्जागरण और आधुनिकतावादी काल के साहित्य की विशेषज्ञ हैं, उन्होंने "वेनिस का सौदागर" को एक यहूदी पाठक के रूप में समझा। वह कहती हैं कि... इस नाटक के प्रति मेरे परिवार का रवैया उलटा था - "यह भयानक, यहूदी-विरोधी नाटक" वे इसे कहा करते थे। शाईलॉक ने जैसा अपमान झेला था, उसे हमारे कई दोस्तों और रिश्तेदारों ने कुछ दशक पहले द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यूरोप में अनुभव कर लिया था। उनका बलपूर्वक रूपान्तरण दुखद है, उनके साथ जो भी हुआ वह बहुत दर्दनाक है। मेरे समुदाय के लिए, नाटक का वह पहलू सबसे सकारात्मक है, जिसमें शाईलॉक ने अपने उत्पीड़क को "सम्मान" के साथ जवाब दिया है, जिसमें वह एक यहूदी को एक इनसान के रूप में बेहद शानदार तरीके से पेश करता है। वह कहता है-- "... अगर आप हमें काँटा चुभाएँगे, तो क्या हमारा खून नहीं बहेगा?..." (द मर्चेंट ऑफ वेनिस का एक यहूदी पाठ, अवीवा डेच, 15 मार्च 2016, बीएल-डॉट-यूके)

शेक्सपियर ने अल्पसंख्यक समुदाय की पीड़ा को सूदखोर शाईलॉक के डायलॉग में व्यक्त किया है। लेकिन उनका मानना है कि यह पीड़ा अन्याय के लिए कोई बहाना नहीं हो सकती। शाईलॉक पीड़ित है, लेकिन प्रतिशोध की भावना उसे एक इनसान भी नहीं रहने देती। वह पतित हो जाता है और इतना गिर जाता है कि किसी इनसान के मांस की माँग कर बैठता है। उसकी यह माँग दिवा-स्वप्न साबित होती लेकिन उसे भौतिक आधार मिलता है। वह आधार है-- शाईलॉक का बेहद धनी होना और सूदखोरी का धंधा करना। सूदखोरी ने शाईलॉक को न केवल अपनी इच्छा पूरी करने के लिए साधन मुहैया कराया बल्कि उसके व्यक्तित्व को भी विकृत कर दिया। यहाँ इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि किसी इनसान का पेशा, जिससे वह अपनी आजीविका कमाता है, उसके व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव डालता है। अच्छा पेशा इनसान को अच्छा बनाता है और बुरा पेशा उसे बुरा बनाता है।

कहना न होगा कि शाईलॉक ही इस नाटक का केन्द्रीय चरित्र है। उसके डायलॉग दिल को झकझोर देते हैं। उसका आचरण मन में अजीब वितृष्णा पैदा करता है। उसके प्रति सहानुभूति होते हुए भी हम उससे नफरत करना नहीं छोड़ पाते। वह हर जगह अपने व्यवहार से अन्य पात्रों पर हावी रहता है। आज जब मैं इस बात को चिन्हित कर रहा हूँ, तो इसका वाजिब कारण है। आज दुनिया की अर्थव्यवस्था में शाईलॉक की केन्द्रीय भूमिका है। बेहद खतरनाक रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ है। लेकिन आज वह वेनिस के व्यापारी की तरह सामप्रदायिक रूप से उत्पीड़ित नहीं है बल्कि वह आज की व्यवस्था का नियंत्रक है और इस व्यवस्था को गतिमान रखने के लिए साम्प्रदायिकता का साहरा ले रहा है। वेनिस का यह सूदखोर सर्वशक्तिमान वित्तीय कम्पनियाँ बन गया है। उसकी वित्तीय पूँजी ने सूदखोरी से कहीं अधिक मानवद्रोही चरित्र अपना लिया है। शाईलॉक अमरीका के वॉल स्ट्रीट पर काबिज है। वह हर देश को सूद पर पैसा उठाकर उन देशों के लोगों का मांस नोच रहा है। उन्हें गुलाम बना रहा है। काम वही है, भूमिका बदल गयी है। सम्भावना यही है कि वेनिस के व्यापारी का जो अन्त हुआ, उससे कहीं अधिक भयावह अन्त इस आधुनिक शाईलॉक का भी होगा। खैर, अब कहानी की ओर लौटते हैं।

बस्सानियो को पता चला है कि राजकुमारी पोर्शिया के पिता ने उसकी शादी के लिए एक परीक्षा छोड़ दी थी। परीक्षा में तीन टोकरी हैं-- एक सोने से बनी है, दूसरी चाँदी और तीसरी सीसे की। प्रत्येक के साथ एक शिलालेख है। मोरक्को का राजकुमार सोने की टोकरी चुनता है, एरेगन का राजकुमार चाँदी की। लेकिन उनके भाग्य में राजकुमारी पोर्शिया नहीं है। बस्सानियो सही टोकरी चुनता है, वह पोर्शिया से शादी करता है और उसका नौकर ग्रेटियानो, पोर्शिया की नौकरानी नर्सिया से।

इस बीच, एंटोनियो के जहाज समुद्र में खो जाते हैं। वह शाईलॉक का कर्ज चुकाने की स्थिति में नहीं रह जाता। सूदखोर शाईलॉक ने एंटोनियो और उसके बीच के अनुबंध को अदालत में घसीट लिया, क्योंकि वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए एंटोनियो के शरीर का एक पाउण्ड मांस काट लेने पर आमादा है। ड्यूक (न्याय मंत्री) शाईलॉक को तर्कों से समझाने की कोशिश करता है, लेकिन शाईलॉक अनुबंध को तोड़ने से इनकार करता है और कहता है कि अगर उसके साथ न्याय नहीं किया गया तो लोगों का राज्य की न्याय व्यवस्था से भरोसा उठ जायेगा। जबकि बस्सानियो ने ऋण का भुगतान तीन गुना अधिक करने के लिए कहा, फिर भी शाईलॉक ने मना कर दिया।

कहानी में नया मोड़ आता है। बस्सानियो की पत्नी पोर्शिया

वकील "बल्थजार" के वेश में छिपकर आती है, "कानून क्लर्क" के वेश में ग्रेटियानो की पत्नी नर्सिया है। कोर्ट में सभी शाईलॉक के क्रूर व्यवहार के खिलाफ हैं। दर्शक उसे गाली देते हैं। वह सिर्फ नफरत के काबिल है। लेकिन शेक्सपियर ऐसी परिस्थिति का लाभ उठाकर बड़ा सन्देश देने में कामयाब होते हैं। पोर्शिया शाईलॉक से दया की माँग करती है। वह दया को राजा के सबसे अच्छे गुणों में गिनाती है, वह ईश्वर को भी दयावान बताती है। यहाँ उसके संवाद बेहतरीन है। लेकिन सूदखोर शाईलॉक निर्मम है। उसने इनकार कर दिया। पोर्शिया एकदम मँजे हुए वकील की तरह जिरह में शाईलॉक को फँसा देती है और कहती है कि बेशक शाईलॉक एंटोनियो का मांस काट ले लेकिन खून की एक बूँद भी नहीं गिरनी चाहिए, क्योंकि यह बात अनुबंध में नहीं है। सभी स्तब्ध रह जाते हैं। पोर्शिया हमला करती है। वह कहती है कि "अगर तुमने एक ईसाई के खून की एक बूँद को बहाया तो वेनिश के कानून के हिसाब से तुम्हारी जमीन और सम्पत्ति छीन ली जायेगी। वह फिर कहती है कि इसलिए, आप मांस को काटने के लिए तैयार रहें। न तो आपको कम और न ही अधिक लेना है। लेकिन सिर्फ एक पाउण्ड मांस। यदि आप एक पाउण्ड से अधिक या कम लेते हैं और इसमें एक बाल बराबर भी फर्क आता है तो मौजूदा कानून के हिसाब से तुम्हारी मौत पक्की है और तुम्हारे सभी सामान जब्त कर लिए जायेंगे।" शाईलॉक के होश-हवास गुम हो जाते हैं। हड़बड़ी में वह अपनी शर्त वापस लेता है और मूल ऋण वापस स्वीकार करने के लिए सहमत हो जाता है।

अन्त में पोर्शिया कहती है कि "शाईलॉक ने एक विनीशियन नागरिक को नुकसान पहुँचाने की धमकी दी, कानून के हिसाब से उसकी सम्पत्ति का आधा हिस्सा वेनिस राज्य को और आधा एंटोनियो को सौप देना चाहिए।" लेकिन मौत के मुँह से वापस लौटा एंटोनियो खुश है, वह मृत्यु होने तक शाईलॉक को अपनी सम्पत्ति रखने की सहमति दे देता है।

शाईलॉक की तरह ही आधुनिक वित्तपति भी न्याय के दरबार में हार चुका है। उसके पास खुद को बचाने का कोई तर्क नहीं है। उसने जोर-जबरदस्ती से अपनी सत्ता कायम कर रखी है। वह दुनिया की 70 फीसदी सम्पदा का मालिक है और सभी आर्थिक गतिविधियों का नियन्ता। अपनी इसी नियामक ताकत के बल पर वह पहाड़ों को खोखला कर रहा है, नदियों को सुखा रहा है और जंगलों का सफाया कर रहा है। उसने पर्यावरण को इतना तहस-नहस कर दिया है कि कोरोना जैसा सामान्य फ्लू भी महामारी बनकर दुनिया पर टूट पड़ा है। जनता बेहाल है, शासक वर्ग घबराए हुए हैं। दुनिया को तभी मुक्ति मिल सकती है, जब इस वित्तपति के शासन का अन्त हो और जनता का नया राज कायम हो।

दोष सारा महामारी को गया

शब्द अपने आप ही में
खो गया
पॉजिटिव ,सचमुच,
निगेटिव हो गया

अर्थ-आशय,
कील-काँटे, फाँस में
संक्रमित है सच,
समय की साँस में
रेल की पटरी,
मजूरा सो गया

मौत आयी,
जिन्दगी की चाह में
लॉकडाउन,
लड़खड़ाया राह में
रास्ता ही,रास्ते में
रो गया

आपसी सम्वाद भी
सहमे-डरे
हैं सियासत के
अलग से पैंतरे
दोष सारा,
महामारी को गया

दौड़ते से चले
अंधी रेस में
हम प्रवासी हुए
अपने देश में
खूँ-पसीना,
हाथ-मुँह-सिर,धो गया

एक टीला रोज,
मुर्दों का उठा
देख मुर्दाघर,
हमारा दम घुटा
अधमरा मन,
लाश अपनी ढो गया।

-- यश मालवीय

साहित्य

नजीर अकबराबादी : जनता और जमीन का शायर

जन्म 1735 - निधन 1830

-- विजय गुप्त

नजीर अकबराबादी सिद्ध और सच्चे हिन्दुस्तानी कवि हैं। बिलकुल धूप की तरह उजले, मिट्टी की तरह गीले, पहाड़ की तरह ऊँचे, बरछी की तरह नुकीले और बहार की तरह रंगीले। उन्होंने आदमी और चीजों की असलियत कुछ इस तरह से बयाँ की है कि दिल छलनी-छलनी हो जाता है। एक तर्जे बयाँ देखिए--

याँ आदमी पे जान को वारे है आदमी
और आदमी पे तेग को मारे है आदमी
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी
चिल्ला के आदमी को पुकारे है आदमी
और सुन के दौड़ता है सो है वह भी आदमी (आदमीनामा)

कविता के इतिहास में नजीर लोककवि की हैसियत रखते हैं। उनका पूरा वजूद जैसे मिट्टी, हवा, पानी और आग से बना हुआ है। वह मिट्टी के, यानी धरती के कवि हैं। पानी की चमक से भरे हुए पानीदार और हवा की तरह आजाद खयाल और आग की तासीर से भरे हुए। इसीलिए वह लगातार खेत-खलिहान, कुल जहान-आसमान और इनसान की बातें करते हैं। उनके शब्द, शब्दकोश से नहीं निकलते बल्कि खुशी, आँसू और खून से तरबतर जिन्दगी के हसीन और तल्ख तजुर्बों से निकलते हैं। वह कबीर की तरह 'कागद की लेखी' नहीं 'आँखिन की देखी' कहते हैं। सीधी-सीधी और खरी-खरी। उनकी बातें दिल से निकलती हैं और दिल तक पहुँच जाती हैं। दिल से निकले सीधे-सादे मगर जलते हुए सच्चे शब्द अपनी आग और ताब से आडम्बर, झूठ और पाखण्ड से भरे नकली शब्द-महल को तहस-नहस करके रख देते हैं। नजीर देसी बोली-बानी के साथ भाषा की अद्‌भुत दौलत का शानदार समन्वय करते हैं। अपने अनूठे काव्य-विषयों और नवीन प्रयोगों से वह महाकवि ठहरते हैं।

वह कई भाषाओं और बोलियों के गहरे जानकार थे। उर्दू, हिन्दी, अरबी, फारसी, पंजाबी, ब्रजभाषा, मारवाड़ी और पूरबी का जादू उन्होंने अपनी कविता में इस तरह जगाया कि आम जनता उनकी मुरीद हो गयी। उनकी सहृदयता, सहजता और सबों पर प्यार लुटाने की अदा कुछ ऐसी थी कि सभी उन्हें अपना मानते थे और उन पर अपना हक भी जताते थे। वह सर से पाँव तक जनता के आदमी थे और उनकी कविता जनता की कविता थी। उर्दू के मशहूर आलोचक प्रोफेसर सैयद एहतेशाम हुसैन ने बिलकुल ठीक लिखा है कि, "जनता से उनका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध था कि उनके यहाँ ऊँच-नीच, हिन्दू-मुस्लिम, बड़े-छोटे का भेदभाव मिट गया था। उनके स्वभाव में ऐसी सरलता और व्यवहार में ऐसी स्वच्छन्दता पायी जाती थी कि सभी उनके मित्र थे। भिखारी और खोमचेवाले भी उनसे अपने लिए कविताएँ लिखा लेते थे।"[1]

यह सोचकर ही छाती चौड़ी हो जाती है कि हाशिये के लोग, शिष्ट समाज और ऊँचे तबके के द्वारा ठुकराये गये नीची और दलित श्रेणी के लोग उन्हें अपना दोस्त-कवि मानते थे। उन्हें अपने सुख-दुःख और पेशे से जोड़ लेते थे। शायद कविता की लोक-परम्परा, कविता की द्वन्द्वात्मकता (डाइलेक्टिक्स) यही है। जनता के साथ, जनता के लिए और जनता के बीच। नजीर हमेशा जनता के महबूब शायर रहे। बिलकुल जलेबी की तरह मीठे, रसभरे और जबान पर चढ़े हुए। उन्होंने लिखा भी है कि,

हलवाई तो बनाते हैं मैदे की, ऐ 'नजीर'
हमने ये सुखन की बनायी जलेबियाँ (जलेबियाँ)
(बातों की, कविता की)

सुखन की ये जलेबियाँ जनता ने जी भर कर चखीं और अपने प्रिय कवि को सर-आँखों पर बिठाया। नजीर अकबराबादी को जैसी लोकप्रियता और व्यापक जन-स्वीकृति मिली थी वह उनके युग के किसी और शायर को नहीं मिली। उन्होंने जैसे जात-पात, धर्म और भेदभाव से भरे सामाजिक नियम-कायदों को धता बताकर मनुष्य को बड़ा और महत्त्वपूर्ण माना था, उसी तरह उन्होंने मुख्तलिफ जबानों के बीच खड़ी हर दीवार को तोड़कर भाषाओं का एक पुल बनाया था जिस पर चलकर हिन्दुस्तानी कविता मालामाल हो गयी। "नजीर ने मातृभाषा की अकूत समृद्धि को जग जाहिर किया। इस लिहाज से उन्होंने वह कर दिखाया है जो सिर्फ कवि कुलचूड़ामणि चौसर और शेक्सपियर ही कर पाये। नजीर का हिन्दी शब्द-संयोजन अद्‌भुत है और विस्तृत भी और उनमें प्रतिभा का साहस व आत्मविश्वास ऐसा है कि वे शब्दों की नित नयी जमावट करने में गुरेज नहीं करते और मजे की बात तो यह है कि उनके आनन्दप्रद अर्थ उभरते चले जाते हैं।"[2] एक उदाहरण देखिए--

कौड़ी न हो तो फिर ये झमेला कहाँ से हो
रथखाना, फीलखाना[1], तबेला[2] कहाँ से हो
मुँडवा के सर फकीर का चेला कहाँ से हो
कौड़ी न हो तो साईं का मेला कहाँ से हो
कौड़ी के सब जहान से नक्शों-नगीन[3] हैं
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं (कौड़ी)
(1. हाथीखाना 2 घुड़साल 3. शान-शौकत)

'कौड़ी के तीन' हिन्दी का बहुत प्रचलित मुहावरा है। इसका अर्थ है धनहीन, दीन और अपमानित होना। सामन्ती और आभिजात्य समाज में गरीब होना, धनवंचित होना अपराध है। शिष्ट समाज में इस अपराध की यही सजा है कि सर झुका के चलो, नजरें चुराकर चलो। जिनके पास कौड़ी नहीं है, रुपयों की खनखनाती थैली नहीं है, वह इतने गये-बीते हैं कि उनकी इज्जत परचूनियों से भी गयी बीती है। अपनी नज्म 'कौड़ी' में नजीर लिखते भी हैं कि,

बिन कौड़ी खुरदिये[1] के बराबर भी पत[2] न थी
(1. परचूनिये 2. इज्जत)

पत तो समाज में पहले भी उन्हीं की थी और आज भी उन्हीं की है जिनके पास दौलत का अम्बार है। सोने-चाँदी, जवाहरात की भरमार है। दौलत है तो गधा भी शेर है। सोने का भण्डार है तो मूर्ख भी विद्वान है। रुपयों का पहाड़ है तो चोर भी साहूकार है। प्लीडर और लीडर है। अठारहवीं सदी में भी धन का बोलबाला था और इक्कीसवीं सदी में तो धन का नशा जैसे सर चढ़कर बोल रहा है। चारों तरफ धन का ही राज है, चोरों, डकैतों और ठगों का साम्राज्य है। अगर आप आँख के अंधे और गाँठ के पूरे हैं लेकिन बेहिसाब धन-दौलत से भरे-पूरे हैं तो यकीनन आप शहंशाहे आलम बन सकते हैं। आलिम-फाजिल लोगों के आका बन सकते हैं। अपनी जय-जयकार करा सकते हैं। और तो और सच को झूठ और झूठ को सच बना सकते हैं। धन की महिमा ही न्यारी है। यह निकृष्ट लोगों को उत्कृष्ट बना सकता है। कातिल को मुंसिफ बना सकता है। यह पीत स्वर्ण-काल है। पीत स्वर्ण यानी पीला सोना। पीले सोने के काले जादू ने हमारी सदी को जैसे डस लिया है। शेक्सपियर ने अपने नाटक 'टिमॉन ऑफ एथेन्स' में लिखा है कि,

यह पीत दास
धर्मों की श्रृंखलाओं को जोड़ेगा-तोड़ेगा,
देगा अभिशप्तों को शुभाशीष,
श्वेतकेशी कोढ़ी को भी बना देगा यह पूज्य,
चोरों को बैठाएगा साँसदों के संग,
और देगा उन्हें मान, सम्मान और स्तुति-गान

नजीर भी शेक्सपियर की तरह धन-दौलत की नीव पर टिके सभ्यता और संस्कृति के महल को अपनी बारीक नजर से देखते और परखते हैं और अपने जमाने की सच्चाई को बिना लाग-लपेट के सामने रख देते हैं।

देते हैं जान कौड़ी पर तिफलो[1]-जवानो-पीर
कौड़ी अजीब चीज है, मैं क्या कहूँ 'नजीर'
(1. बच्चा)

अमीरों के चोचले, लूटपाट, पाखण्ड, विलासप्रियता, शोषण और बेशर्मी ने ही गरीबी को जन्म दिया है और गरीबों के जीवन को नरक बना दिया है। नजीर अकबराबादी ने इस नरक को देखा था। इसके बीच से गुजरे थे और आम जनता की तकलीफों को दिल से महसूस किया था। उन्होंने दरबारी कविता की आसान और धनवान बनने की राह नहीं पकड़ी बल्कि जन कविता की ऊबड़-खाबड़ और खाई-खन्दकों से भरी राह पकड़ी। वह राजकवि बन सकते थे। ऐशो-इशरत का जीवन बिता सकते थे। सोने के महल में चाँदी के बिस्तर पर रुपयों की चादर ओढ़कर सो सकते थे। लेकिन रुपया कभी उनके पाँव की बेड़ी न बन सका। उन्होंने बड़ी हिकारत से रुपयों के दलदल में गर्क लक्ष्मीपतियों का खाका खींचा है,

इक आदमी हैं जिनके ये कुछ जर्क-बर्क[1] हैं
रूपे के जिनके पाँव हैं सोने के फर्क[2] हैं
झमके तमाम गर्ब[3] से ले ता-ब-शर्क[4] हैं
कमख्वाब, ताश, शाल, दुशालों में गर्क[5] हैं
और चीथड़ों लगा है सो है वह भी आदमी (आदमीनामा)
(1. भड़कदार (कपड़े) 2. माथे 3. पश्चिम
4. पूर्व तक 5. डूबे)

आदमी को कभी उसकी हैसियत और रुतबे से नजीर अकबराबादी नहीं आँकते। वह तो इस दर्शन के हिमायती और अलम्बरदार हैं कि 'सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा'। ठाठ-बाट और रुपया कभी उन्हें आकृष्ट न कर सका। नवाब सआदत अली खाँ ने उन्हें लखनऊ बुलाया लेकिन उन्होंने जाने से इनकार कर दिया। इसी प्रकार भरतपुर के नवाब ने उन्हें बुलाया किन्तु वे न गये।"[(4)] उन्होंने तो अपने पूर्वज कवि सन्त कुंभनदास की बहुत सुनी और गुनी हुई पंक्ति को फिर से चरितार्थ कर दिया कि, *सन्तन को कहा सीकरी सों काम।*

वह सीकरी के रास्ते नहीं गये। दौलत और शोहरत उन्होंने ठुकरा दी और ताजिन्दगी 'प्राइवेट ट्यूशन' करते हुए आगरे के ही बने रहे। आगरा के गली-कूचों और लोगों के वह शैदाई रहे। यमुना के जल और ब्रजमण्डल की आबोहवा से उनकी आत्मा नहाती और नित नवीन होती रही। उन्होंने गर्व से लिखा है कि,

आशिक कहो, असीर कहो, आगरे का है।
मुल्ला कहो, दबीर कहो, आगरे का है।।
मुफलिस कहो, फकीर कहो, आगरे का है।
शायर कहो, 'नजीर' कहो, आगरे का है।।

आगरे के इस शायर-फकीर ने जिन्दगी के साथ शायरी के भी सारे बन्धन तोड़ दिये। बदनाम गलियों में वह हँसते-खिलखिलाते

और दुआ देते रहे। मन्दिरों, मस्जिदों और पूजाघरों में हाथ जोड़ते, सजदा करते सन्तों-भक्तों की तरह प्रेम की गंगा और ज्ञान की यमुना बहाते रहे। उन्होंने अपने दिल में अनैतिक और बद्चलन करार दी गयी औरतों को बाइज्जत जगह दी और बहिष्कृत और अपमानित लोगों को गले से लगाया। वह साधारण जनों के असाधारण कवि थे। साधारण और तुच्छ विषयों पर, जिनका जिक्र आते ही बड़े और नामवर कवि नाक-भौंह सिकोड़ने लगते थे, नजीर ने मस्ती में डूब कर लिखा। उनके काव्य-विषयों की विविधता और वर्णन करने की शैली हैरान कर देती है। उन्होंने हर मौसम यानी वसन्त, गर्मी, जाड़ा और बरसात के विविध रंग दिखाये। आदमी के जीवन-चक्र यानी बचपन, जवानी और बुढ़ापे की बड़ी अनोखी और दिलकश तस्वीरें खींचीं और मौत के सन्नाटे का हौलनाक नजारा भी दिखाया। आगरे की ककड़ी, तिल के लड्डू, तरबूज, सन्तरा और जलेबी के स्वाद चखाये तो भंग के तरंग में डुबोया भी। मेले-ठेले, पशु-पक्षी, तैराकी, कुश्ती के साथ जिन्दगी की दुश्वारियाँ भी दिखायीं। ताजमहल की खूबसूरती के साथ रोटी की जरूरत और रोटी के दर्शन को भी रेखांकित किया। भक्ति भाव में रसलीन होकर जहाँ कन्हैया, शिवजी, हजरत मोहम्मद साहब, हजरत अली, गुरुनानक, सूफी सन्त शेख सलीम चिश्ती के गुण गाये और श्रद्धा के फूल चढ़ाये वहीं होली, दिवाली और शब-बरात से जिन्दगी के हर अंधेरे कोने को रंग और रौशनी से गुलजार किया।

कविता जैसे उनकी साँसों में रची-बसी थी। उन्होंने ऐसे विषयों पर कविता लिखी जो काव्य-विषय माने ही नहीं जाते थे। उन पर लिखना बेअदबी, बाजारूपन और बेहूदगी समझी जाती थी। नजीर ने सामन्ती समाज की काव्य रूढ़ियों को, उसके सौन्दर्य-शास्त्र को तोड़-फोड़कर रख दिया। उन्होंने आम आदमी, जिसकी कोई वकत नहीं है, जिसके कंधे पर पहाड़ है, जिसकी आँखों में तूफान है, जिसके पावों में धरती को नाप लेने का हुनर है और जिसका दिल दुःख और दर्द से भरा हुआ है, उसे पूरी जिद और ताकत के साथ कविता के केन्द्र में स्थापित कर दिया। अपनी बातें कहने, लिखने और सुनाने में उन्होंने किसी की भी परवाह नहीं की, न आभिजात्य कवि-आलोचकों की और न उनके प्रतिमानों की। वह अपनी पर आयेंगे तो "....वे कुछ ऐसी बातें भी कह जायेंगे जो सामन्ती युग के सभ्य समाज में वर्जित थीं-- जैसे गरीबी का रोना, मौत का डर और रोटियों का महत्त्व। स्पष्ट है कि साधारण किन्तु सम्पूर्ण जीवन के ऐसे यथार्थवादी कवि को सम्भालना उस समय की सामन्ती दरबारी चेतना के वश की बात नहीं थी। इसलिए तत्कालीन आलोचकों ने बाजारूपन के नाम पर उनकी लोकप्रियता से छुट्टी पा ली।"[5]

नजीर ने काव्य वर्जनाओं को ही नहीं तोड़ा बल्कि सामाजिक विज्ञान को, जो सिर के बल उलटा खड़ा था उसे सीधा खड़ा कर दिया। उन्होंने यथार्थ के इतने तीखे, सच्चे, चमकदार, परतदार और साफ चित्र दिखाये कि आँखें फटी की फटी रह गयीं। उन्होंने मुफलिसी, बीमारी, लाचारी, बेगारी, बेकारी के साथ भूख, मौत और रोटी के बीच पिसते और मरते आदमी का जो शोकगीत अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में रचा था, उसे इक्कीसवीं सदी के हिन्दुस्तान में हम आज सुन रहे हैं। सुन ही नहीं रहे हैं बल्कि ध्वनि तरंगों को आँखों के परदे पर चलता-फिरता हुआ देख रहे हैं। गोया इतिहास की परछाइयाँ अपनी कब्रों से निकलकर जीती-जागती सामने आ गयी हैं। 'कोरोना लॉकडाउन' के इस मनहूस समय में हजारों-हजार दुखी, भूखी और सतायी हुई गरीब-गुर्बों की पैदल चलती थकी-हारी भीड़ हमारी तथाकथित पूँजीवादी सभ्यता के मुँह पर जोरदार तमाचा है। नजीर अकबराबादी ने जमाने पहले लिखा था, जरा पढ़िए और आज के दर्दनाक हालात पर उसे चस्पा कीजिए, बाखुदा दिल चूर-चूर हो जायेगा--

जब आदमी के हाल पर आती है मुफलिसी[1]
किस-किस तरह से उसको सताती है मुफलिसी
प्यासा तमाम रोज बिठाती है मुफलिसी
भूखा तमाम रात सुलाती है मुफलिसी
ये दुःख वो जाने जिस पे कि आती है मुफलिसी (मुफलिसी)
(1. गरीबी)

दुःख और विपत्ति की इस भीषण घड़ी में जब पूँजीपतियों की सरकार भलमनसाहत का ड्रामा करती है, भूखे-प्यासे, बेचैन और मरणान्तक थकान से जूझते लोगों से क्षमा माँगकर दानवीरता का चोला धारण करती है तब अतीत से आती हुई नजीर की तंज भरी पुकार शैतान के चेहरे से इंसानियत का नकाब नोच कर फेंक देती है,

जब रोटियों के बँटने का आकर पड़े शुमार
मुफलिस को देवें एक तवंगर[1] को चार-चार
गर और माँगे वह तो उसे झिड़के बार-बार
इस मुफलिसी का आह बयाँ क्या करूं मैं यार
मुफलिस को इस जगह भी चबाती है मुफलिसी
(1. मालदार)

मालदार और मुफलिस, करोड़पति और खाकपति को सत्तापक्ष एक नजर से नहीं देखता। अमीर उसके सर का ताज है और गरीब पैरों की जूती। गरीब का खून वह चूसता है और उसी खून से अमीर को सुर्खरू बनाता है। सुर्खरू बनाने का यह खेल सदियों से चल रहा है।

नजीर अकबराबादी भी आज से लगभग डेढ़ सदी पहले तुलसी की भावभूमि पर पहुँचते हैं और लिखते हैं कि,

किस्मत से चार पैसे जिन्हें हाथ आते हैं।
अलबत्ता रूखी-सूखी वो रोटी पकाते हैं।।
जो खाली आते हैं, वो करज लेके जाते हैं।
यूँ भी न पाया कुछ तो फकत गम को खाते हैं।।

सोते हैं कर किवाड़ को इक आह मार बन्द।।
जितने हैं आज आगरे में कारखाना-जात।
सब पर पड़ी है आन के रोजी की मुश्किलात।।
किस-किस के दुःख को रोइए और किसकी कहिए बात।
रोजी के अब दरख्त का मिलता नहीं है पात।।
ऐसी हवा कुछ आ के हुई है एक बार बन्द।।
('शहरे आशोब')

सत्ता और मालिकों द्वारा ठुकराये गये जीविकाविहीन लोगों का कुसूर क्या था? ये दुःख और अभाव के मारे हुए लोग रोजी के दरख्त से कुछ पत्ते ही तो तोड़ने निकले थे ताकी रोटी खरीद सकें। रोटी के लिए ही तो घर से बेघर हुए थे और रोटी के लिए ही फिर घर जा रहे थे। रोटी ने कैसे-कैसे खेल दिखाये और कैसे-कैसे नाच नचाये!

सचमुच रोटी के खेल निराले हैं। अमीरजादे के भरे हुए पेट में रोटियों का धमाल देखिए,

रोटी से जिसका नाक तलक पेट है भरा
करता फिरे है क्या वो उछल-कूद जा-बा-जा
दीवार फाँदकर कोई कोठा उछल गया
ठट्ठा, हँसी, शराब, सनक, साकी, उस सिवा
सौ-सौ तरह की धूमें मचाती हैं रोटियाँ (रोटियाँ)

और भूखे पेट की कैफियत देखिए--

पूछा किसी ने यह किसी कामिल[1] फकीर से
यह मेह्रो-माह[2] हक[3] ने बनाये हैं काहे से
वह सुन के बोला, "बाबा, खुदा तुझको खैर दे
हम तो न चाँद समझें न सूरज हैं जानते
बाबा हमें तो यह नजर आती हैं रोटियाँ"
(1. पूर्ण 2. सूर्य-चन्द्रमा 3. ईश्वर)

नजीर अकबराबादी पहले ऐसे शायर हैं जिन्होंने चाँद और सूरज में रोटी देखी। अल्लाह के तसव्वुर में भी रोटियों का दीदार किया, 'अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ।' उनसे पहले किसी शायर ने पूरी सृष्टि को रोटी के बिम्ब में नहीं बाँधा है। रोटी में पूरा ब्रह्माण्ड देख लेना साधारण आँखों का काम नहीं है। यह उस्तादाना कमाल है और इस कमाल के लिए शिव की तीसरी आँख चाहिए। नजीर के पास कविता की तीसरी आँख है। ध्वंस के साथ सृजन। मृत्यु के साथ जीवन। पतझड़ और वसन्त दोनों को उन्होंने साधा है।

आने को आज धूम इधर है बसन्त की
कुछ तुमको मेरी जान खबर है बसन्त की
होते हैं जिससे जर्द जमीं-ओ-जमाँ[1] तमाम
ऐ मेहर तलअतो[2] वो सहर[3] है बसन्त की (बसन्त)
(1. जमीन और जमाना, धरती और समय
2. खूबसूरत, रूपवान 3. सुबह, भोर)

वसन्त यानी जिन्दगी और पतझड़ यानी मौत।
दिन रात दुन मची है यहाँ और पड़े हैं जंग
चलती है नित अजल[1] की सनाँ[2] गोली और तुफंग[3]
(मौत)
(1. मौत 2. भाला 3. बन्दूक)

नजीर 'अजल की सनाँ' के बीच बहार की बाँसुरी लिए हुए हैं। वह अजल से आँखें मिलाते हैं और जीवन के सुर साधते हैं। वह सपूर्ण जीवन के कवि हैं। फिराक गोरखपुरी साहब ने उन्हें 'टेढ़ी-मेढ़ी नदी का बहाव' और 'खुले मैदान में गूँजती हुई वंशी' कहा है। वंशी की इस टेर को, सौन्दर्य और जीवन की पुकार को उनके समकालीनों ने नहीं सुना। सुना भी तो उसे फूहड़ और दो कौड़ी का कहा। उन्नीसवीं सदी के महत्त्वपूर्ण आलोचकों ने उन्हें बाजारू कवि माना। नवाब मुस्तफा-खाँ 'शेफ्त' ने तो नजीर को निकृष्ट कवि घोषित कर दिया। नजीर अकबराबादी को उनका वास्वतिक श्रेय उनके जीवन काल में नहीं मिला। वे उपेक्षित, अममानित और शिष्ट साहित्य की चौहद्दी से हमेशा बहिष्कृत रहे। महान नाटककार और आला दर्जे के ड्रामानिगार हबीब तनवीर ने अपने क्लासिक नाटक 'आगरा बाजार' में जैसे नजीर और उनके युग को जीता-जागता उतार दिया है। इस नाटक में हम नजीर अकबराबादी को देख सकते हैं। उन्हें छू सकते हैं और अपनी धड़कनों में महसूस कर सकते हैं। यह हबीब साहब का कमाल है कि वह हमें बीसवीं या इक्कीसवीं सदी से उठा कर अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में ले जाते हैं और हम देखते हैं कि नाटक का एक पात्र तजकिरानवीस कहता है कि, "भई बहुत बागो-बहार आदमी है, खुशमिजाज, शुगुफ्ता-उफ्ताद (प्रसन्नचित्त), हर शख्स से हँस कर मिलने वाला, ऐसा कि शायद जिसकी मिसाल दुनिया में मुश्किल से मिलेगी। लेकिन शायरी-आँ चीजे दीगर अस्त (यह दूसरी चीज है)। फोहशकलामी (अश्लील लेखन), हर्जागोई (बकवास, अश्लीलता, फूहड़पन, फक्कड़पन), इब्तजाल और आमियाना मजाक (साधारण रुचि) की तुकबन्दी को हमने शेर नहीं माना। मियाँ नजीर को शायर मानना उन पर बहुत बड़ा बुहतान (लांछन) होगा। शोअरा के तजकिरे में उनकी कोई जगह नहीं है।"

नजीर पूरी जिन्दगी शायर होने का लांछन झेलते रहे। बाहर से वह खुशमिजाज और फक्कड़ दिखे लेकिन भीतर आत्मसंघर्ष और पीड़ा की आग में जलते रहे। आभिजात्य साहित्य ने उन्हें फटीचर माना और आलोचकों ने उन्हें फूहड़ करार दिया। रीछ का रूपक लेते हुए उन्होंने मन के उथल-पुथल और संघर्ष का जिक्र अपनी नज्म 'रीछ का बच्चा' में कुछ इस तरह किया है,

कहता था कोई हमसे "ओ मियाँ कलन्दर[1]
वह क्या हुए अगले वो तुम्हारे थे जो बन्दर?"
हम उनसे ये कहते थे, "ये पेशा है कलन्दर
हाँ छोड़ दिया बाबा उन्हें जंगले[2] के अन्दर
जिस दिन से खुदा ने ये दिया रीछ का बच्चा
(रीछ का बच्चा)

(1. फकीर 2. जंगल)

और यह बन्द देखिए--

जब कुश्ती की ठहरी तो वहाँ सर को जो झाड़ा
ललकारते ही उसने हमें आन लताड़ा
गह[1] हमने पछाड़ा उसे, गह उसने पछाड़ा
एक डेढ़ पहर फिर हुआ कुश्ती का अखाड़ा
गो हम भी न हारे न हटा रीछ का बच्चा
(1. कभी)

गरज यह कि नजीर कभी अखाड़े से बाहर नहीं हुए। वह धरतीपकड़ पहलवान की तरह खम ठोके रहे। उन पर हमला-दर-हमला होता रहा। वह चोटिल भी हुए, दिल रंजूर हुआ और उदास भी। उनका एक शेर उम्र भर लम्बी उदासी को भी जैसे उदास कर जाता है--

पीरी[1] में भी जिस तरह उसको दिल-अफसुर्दगी[2]
वैसी ही थी उन दिनों जिन दिनों मैं था जवाँ
(1. बुढ़ापा 2. उदासी)

लेकिन उदासी कभी उनका स्थायी भाव नहीं रहा। वह तो उत्साह, उम्मीद और प्यार के धागों से कविता का ताना-बाना बुनते रहे। जीवन की छोटी-छोटी खुशियों पर निसार होते रहे। रोजमर्रा की बेहद मामूली चीजों और साधारण लोगों के सुख-दुःख से उनकी कविता की देह बनी जिसने उनकी आत्मा को आसमान तक उठा दिया। जनता की शक्ति ही उनकी कविता की शक्ति है। वह राजमार्ग के राजकुमार नहीं, तंग गलियों के सिपहसालार हैं। उनकी शक्ति और प्रेरणा का स्रोत वह जनता है जो गली-कूचों, सड़क-चौबारों, खेतों, खलिहानों और कारखानों तक फैली हुई है। इस फैली हुई, उपेक्षित और बिखरी हुई जनता को कविता के केन्द्र में ले आना नजीर अकबराबादी का क्रान्तिकारी और युगप्रवर्तक कार्य है।

'आगरा बाजार' में हबीब तनवीर बहुत खूबसूरती और कलात्मकता के साथ नजीर की शायरी और उनके युग के जीते-जागते पात्रों का पुनर्सृजन करते हैं। फकीर, लड्डूवाला, तरबूजवाला, बरफवाला, कनमैलिया, पानवाला, ककड़ीवाला, मदारी, रेवड़ीवाला, चनेवाला, बरतनवाला, किताबवाला, शायर, तवायफ और तजकिरानवीस जब मंच पर आते हैं तो जैसे नजीर का युग करवटें बदलने लगता है। उनकी शायरी का इन्द्रधनुष सात रंग में जगमगाने लगता है। दूर अतीत के धुंध को चीरती हुई नजीर अकबराबादी की पुकार सुनाई देती है,

आलम है सब मुअत्तर[1] तेरे करम[2] की बू से
हुरमत है दोस्तों को हजरत तुम्हारे रू से
यह चाहता हूँ अब मैं सौ दिल की आरजू से
रखियो 'नजीर' को तुम दो जग में आबरू से
ऐ मूजिदे-हर-अहसाँ[3] हजरत सलीम चिश्ती
(शेख सलीम चिश्ती)

(1. सुगन्धित 2.पा 3.हर पा करने वाले)

नजीर की यह दुआ कुबूल हो गयी। आज उनके यश की सुगन्ध चारों दिशाओं में फैली हुई है। कविता के दीवाने आज उन्हें बहुत प्यार, खुलूस और एहतराम से याद करते हैं। गुजश्ता उन्नीसवीं सदी ने उन्हें ठुकराया था लेकिन आने वाली सदियों ने उन्हें सर-माथे पर बिठाया। कविता का आँगन जो कभी उनके लिए बन्द कर दिया गया था, वह अब उनकी अगवानी के लिए सौ-सौ बाँहें फैलाए खड़ा था। जीवन की आग में निरन्तर जलकर, उपेक्षा की ज्वाला में निरन्तर तपकर नजीर कुन्दन बन गये। उन्होंने कविता को सोने की अमिट चमक से भर दिया। वह सच्चे अर्थों में जनता के कवि थे। जनता से ही सब कुछ लिया, जनता के लिए ही रचा और सब कुछ जनता को ही सौंपकर,

'वह जिन्द-ए-अदब[1] हुए ता-हश्र[2] बरकरार।'
(मौत)

(1. अमर 2. कयामत तक)

सन्दर्भ

1. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रोफेसर सैयद एहतेशाम हुसैन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2016, पृष्ठ 98।

2. हिन्दी-उर्दू साझा संस्कृति, हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोश (1879) की भूमिका, एस. डब्ल्यू फैलन, हिन्दी अनुवाद : रविकान्त और एना रूथ जे., राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नयी दिल्ली, पृष्ठ 110।

3. साहित्य और कला, कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स, सम्पादक और अनुवादक : रमेश सिन्हा, इण्डिया पब्लिशर्स, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 140-141।

4. उर्दू भाषा और साहित्य, फिराक गोरखपुरी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण 2008, पृष्ठ 47।

5. उपर्युक्त, पृष्ठ 49।

कोरोना महामारी बनाम अन्य बीमारियाँ

पूरी दुनिया पर कोविड-19 का साया मण्डरा रहा है। हर प्रकार के सर्दी-जुकाम के लिए जिम्मेदार "कोरोनावायरस" नामक विषाणु-परिवार के इस वायरस का असल नाम "सार्स-कॉव-2" है। इस बीमारी ने दुनिया में खास तौर पर अमीर और विकसित देशों को अपना निशाना बनाकर उनकी कमर तोड़ दी है। लेकिन भारत में भी यह बीमारी अब भयानक रफ्तार से बढ़ती जा रही है। इससे निपटने के लिए सरकार तीन लॉकडाउन कर चुकी है। पूरा देश ठप्प है। दुनिया के अधिकतर देशों की ही तरह भारत में भी इस वायरस को लाने वाले अमीर और उच्च वर्ग से लोग हैं, इनसे भी ज्यादा जिम्मेदार वह सरकार है जिसने इन्हें समाज से अलग रखने की जरूरत ही महसूस नहीं की।

कोविड-19 के इलाज के लिए अभी तक कोई वैक्सीन या दवाई वैज्ञानिक नहीं खोज पाये हैं। हालाँकि भारत की अधिकांश जनता तो सैकड़ों ऐसी बीमारियों से मरने को मजबूर है, जिनका इलाज सम्भव है। इसलिए जनता के लिए तो ये बीमारियाँ भी किसी लाइलाज महामारी से कम नहीं हैं। हमारे देश में बीमारी के खिलाफ लड़ने में भी भेदभाव नहीं है, क्या हर बीमारी से इतनी ही मुस्तैदी से नहीं लड़ा जाना चाहिए, जितना कोविड-19 से लड़ा जा रहा है। मिसाल के लिए भारत में सबसे ज्यादा कहर बरपाने वाली कुछ बीमारियाँ हैं-- हृदय रोग, डायरिया, टीबी, कैंसर, डेंगू, मलेरिया, आदि। भारत में लगभग पाँच लाख लोग हर साल कैंसर से मर जाते हैं। दुनिया में कैंसर से होने वाली मौतों में भारत सबसे आगे है। टीबी के मामले में भी ऐसा ही है। यह रोग हर साल चार लाख से ज्यादा भारतीयों को अपना शिकार बना रहा है। हालाँकि अधिकतर अमीर और विकसित देशों में टीबी गुजरे जमाने की बीमारी बन चुकी है, लेकिन भारत में आज भी यह बीमारी सबसे ज्यादा लोगों को अपना शिकार बनाती है। डायरिया भी एक ऐसी ही बीमारी है, यह हर साल पाँच साल से कम उम्र के लगभग एक लाख बच्चों की मौत का कारण बनती है। मच्छर के काटने से होने वाला डेंगू ऐसी बीमारी है जिसे अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के छोटे-छोटे देश भी खत्म कर चुके हैं लेकिन भारत में हर साल यह हजारों लोगों को अपनी चपेट में ले लेता है। कमोबेश यही हाल हर बीमारी का है। इन बीमारियों में से अधिकतर के फैलने का कारण भरपेट पौष्टिक भोजन न मिलना और स्वच्छ आबो-हवा में न रहना है। इन कारणों को खत्म करने के गम्भीर प्रयास किसी सरकार ने नहीं किये हैं।

इन साधारण बीमारियों से वही लोग मरते हैं, जो सबसे ज्यादा आजीविका संकट का सामना करते हैं और समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े तबके से आते हैं। लेकिन भारत सरकार इन बीमारियों के खिलाफ वैसा मोर्चा लेती हुई नहीं दिखती, जैसा कोविड-19 के खिलाफ लेती दिखायी दे रही है। सरकारी तंत्र का पूरा अमला आज जितना मुस्तैद दिखाई दे रहा है, उतना पहले कभी नहीं देखा गया भले ही प्रयास दिखावटी हो। शायद इसकी वजह यह है कि पूरी दुनिया की ही तरह भारत में भी इसके पहले शिकार, रसूखदार और आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग हुए हैं, जिनकी सेवा के लिए पूरा तंत्र काम करता है।

जब इतनी मुस्तैदी के बावजूद भी सरकार न तो पर्याप्त मात्रा में टेस्ट कर पायी और न ही डॉक्टरों को पर्याप्त मात्रा में "व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण" यानी पीपीई उपलब्ध करवा पायी तो जनता का ध्यान भटकाने के लिए कोविड-19 के संक्रमण के फैलाव को हिन्दू-मुस्लिम का शर्मनाक साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया और बीमारी के फैलाव का सारा ठीकरा एक खास समुदाय के सिर पर फोड़ने की कोशिश की।

जबकि असल कारण यह था कि सरकार के पास किसी भी बिमारी से निपटने के लिए कोई स्वास्थ्य ढाँचा है ही नहीं। इस देश में कोरोना के आने से बहुत पहले ही इलाज मोटा मुनाफा देने वाला धन्धा बन चुका है। कुकुरमुत्ते की तरह हर गली मोहल्लों में जो निजी नर्सिंग होम उग आये थे वे इस संकट की घड़ी में अपने दरवाजे बन्द करके भाग गये। दूसरी तरफ बड़े-बड़े सरकारी अस्पताल इसलिए बेकार हो गये क्योंकि उनका इलाज महँगा है कि 80 फिसदी आबादी उसे वहन ही नहीं कर सकती। सरकारी अस्पतालों पर पहले ही इतना बोझ कि वे चाहकर भी संतोषजनक इलाज नहीं दे सकते। अगर हमारे देश में आबादी के हिसाब से सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार हो तो हम कोरोना महामारी से भी अच्छी तरह निपट लेते और दूसरी तमाम बीमारियों से भी। कोरोना के दौरान ही पूरी दुनिया में स्वास्थ्य सेवाओं के राष्ट्रीकरण की माँग जोर-शोर से उठी है। हमें भी अपने देश में इसके लिए संघर्ष करना चाहिए।

स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण मुर्दाबाद!

--विशाल विवेक

यस बैंक की तबाही : लूट का नतीजा

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था भयावह आर्थिक संकट का शिकार है। महाराष्ट्र के 'पीएमसी बैंक', कर्नाटक के 'श्री राघुवेन्द्र सहकारी बैंक' के बाद अब देश के 5 सबसे प्रतिष्ठित निजी बैंकों में शुमार 'यस बैंक' का दिवालिया होना इसका ताजा उदाहरण है।

आरबीआई ने यस बैंक के लेन-देन पर 30 दिनों के लिए रोक लगा दी थी। बैंक से रुपया निकासी को 50,000 रूपये प्रतिदिन तक सीमित कर दिया गया था। इसके साथ ही आरबीआई ने यस बैंक के निदेशक मण्डल को बर्खास्त कर 'एसबीआई' के वरिष्ठ आर्थिक अधिकारी और उप प्रबंध निदेशक प्रशान्त कुमार को यस बैंक के मामले की जाँच-पड़ताल के लिए नियुक्त किया। शुरूआती जाँच-पड़ताल द्वारा बैंक के निजी कम्पनियों, उद्योगपतियों व राजनेताओं को अवैध रूप से कर्ज बाँटने का खुलासा हुआ। इसके लिए प्रवर्तन निदेशालय ने यस बैंक के संस्थापक राणा कपूर तथा दूसरे कई लोगों को धन शोधन के मामले में गिरफ्तार किया।

यस बैंक प्राइवेट बैंकों में तेजी से उभरकर सामने आया और जल्दी ही इसने देश के शीर्ष 5 निजी बैंकों में स्थान बना लिया। यस बैंक तीन इकाइयाँ चलाता है-- यश एसेट मैनेजमेंट सर्विस, यश कैपिटल और यस बैंक। यस बैंक की स्थापना राणा कपूर और अशोक कपूर ने 2004 में की थी। 2005 में यस बैंक ने 'मास्टरकार्ड इंटरनेशनल' के साथ साझा कर अन्तरराष्ट्रीय गोल्ड और सिल्वर डेबिट कार्ड के क्षेत्र में पदार्पण कर रिटेल बैंकिंग में अपना कदम रखा। दिसम्बर 2017 तक यस बैंक की देश भर में एक हजार से ज्यादा शाखाएँ और 18 हजार के लगभग 'एटीएम' स्थापित हो चुके थे। यस बैंक में 18 हजार कर्मचारी कार्य करते हैं।

यस बैंक नेट बैंकिंग में लगी 20 निजी कम्पनियों का साझेदार था। आज नेट बैंकिंग, मोबाइल नेट बैंकिंग बड़े शहरों में आम बात बन चुकी है। नोटबन्दी के समय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के 'कैशलेस' के नारे को खूब प्रचारित किया गया था। 'पेटीएम', 'फोनपे' जैसी नामचीन कम्पनियाँ यस बैंक की साझेदार थीं। देश भर में होने वाले 'यूपीआई' लेन-देन का 35 प्रतिशत यस बैंक से सम्बन्धित इन्हीं कम्पनियों द्वारा होता था। 2004 से 2005 के बीच यस बैंक देश में सबसे तेजी से उभरने वाला, निजी कम्पनियों का चहेता बैंक था। उसी समय इसके तेजी से उभार पर शंका जताते हुए एक अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सेवा प्रदाता कम्पनी 'यूवीएस' ने इसके कामकाज के तरीकों पर सवाल उठाये थे। 'यूवीएस' ने बताया था कि यस बैंक निजी कम्पनियों को अपनी क्षमता से ज्यादा कर्ज बाँट रहा है,। वह भी ऐसी कम्पनियों को जिनसे कर्ज वापस आना मुश्किल है। लेकिन यस बैंक लगातार ऐसी कम्पनियों को कर्ज बाँटता रहा। इनमें हाल ही में डूबी कम्पनियाँ-- डीएचएफएल, अनिल अम्बानी की रिलायंस ग्रुप, आईएफ एण्ड एससी आदि शामिल हैं। यस बैंक द्वारा दिये गये कर्जो में 25 फीसदी कर्ज गैर बैंकिंग कम्पनियों, रियल एस्टेट और विनिर्माण के क्षेत्र में लगी कम्पनियों को दिया गया। जबकि ये क्षेत्र पहले ही आर्थिक मन्दी की मार झेल रहे हैं। मौजूदा एनडीए सरकार ने यस बैंक के खिलाफ कड़े कदम उठाने के बजाय उसके सहयोगी बनकर उसके गोरखधन्धे को बढ़ावा दिया।

2014 से 2019 के मात्र पाँच सालों में तक यस बैंक द्वारा दिये गये कर्जों की रकम 55,633 करोड़ से पाँच गुणा बढ़कर 2,41,499 करोड़ तक पहुँच गयी। ये कर्ज सरकार के नजदीकी लोगों और चहेती कम्पनियों को बाँटे गये। जिनमें एस्सेल ग्रुप के मालिक, राज्यसभा सदस्य सुभाष चन्द्रा और अनिल अम्बानी प्रमुख हैं।

इस पूरे मामले में सरकार और आरबीआई की भूमिका बहुत संदिग्ध हैं। क्योंकि 'आरबीआई' द्वारा यस बैंक के लेन-देन पर रोक लगाने से एक दिन पूर्व ही गुजरात की एक कम्पनी ने बैंक से 265 करोड़ रूपये निकाले थे।

यस बैंक देश में बैंकिंग क्षेत्र के गहराते संकट की पोल खोलता है जो कि निजी कम्पनियों की लूट का नतीजा है। आज निजी कम्पनियों का कुल 9 लाख करोड़ से ज्यादा कर्ज बट्टा खाता यानी एनपीए हो चुका है। सरकार इन कम्पनियों पर कोई कार्रवाई करने के बजाय इनके लिए राहत पैकेज जारी करती है।

आरबीआई ने यस बैंक को आर्थिक संकट से उबारने की जिम्मेदारी स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया को सौंपी है। स्टेट बैंक यस बैंक के 49 फीसदी शेयर लगभग 2 हजार कारोड़ में खरीदकर उसे सकंट से उभारेगा। लेकिन सरकार ने उन नीतियों और उन लुटेरों के खिलाफ कुछ नहीं किया जिन्होंने 'यस बैंक' को डुबोया। इसका केवल यही अर्थ है कि जिस रोग से यह बैंक दिवालिया हुआ अब वही रोग इसके जरिये एस बी आई में भेज दिया गया है।

--सतेन्द्र सिद्धार्थ

दिल्ली दंगे का सबक

फरवरी के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में जो हुआ वह सतही समानताओं के बावजूद हुबहू दंगा नहीं था। कम से कम इस शब्द से हम जो मतलब समझते हैं वैसा तो कतई नहीं। न ही इसे पुराने जमाने की परिभाषाओं जैसे "साम्प्रदायिक हिंसा" या "जातीय संहार" के जरिये अभिव्यक्त किया जा सकता है। सच्चाई यह है कि अभी तक हमारे पास ऐसा कोई एक शब्द या शब्दयुग्म नहीं है जिससे इस घटना को परिभाषित किया जा सके। दरअसल यह एक जारी परियोजना का नवीनतम चरण है, न कि कोई अलग-थलग घटना। इस परियोजना के बारे में चर्चा करने से पहले यह दर्ज करना शायद ज्यादा मददगार हो सकता है कि इसे पुरानी परिभाषाओं में फिट क्यों नहीं किया जा सकता?

विशद चित्रण

अगर 2002 का गुजरात दंगा मोबाइल फोन के शुरुआती जमाने की घटना थी, तो उसके बरक्स दिल्ली की हिंसक उन्मादी भीड़ ने स्मार्ट फोन के दौर में सार्वजनिक हिंसा के साथ भारत की पहली मुलाकात की पटकथा लिखी है। झूठेपन का निश्चित खतरा होते हुए भी निसन्देह यह पहली घटना है जहाँ थोक में हिंसा का अथाह ऑडियो-विजुवल दस्तावेजीकरण लगभग तुरन्त ही सामने आ गया। उधमी हिंसा की भयावह कार्रवाइयों की वीडियो क्लिप सोशल मीडिया में भरी पड़ी हैं जो वाकपटुता के साथ वह सब भी कह देती हैं जिन्हें शब्दों में बयाँ नहीं किया जा सकता। ये तस्वीरें जितनी खौफनाक हैं, इनका असर उससे भी ज्यादा चौंकाने वाला है। अमानवीयता के इस विशद चित्रण ने न तो पीड़ा जगायी, न ही हृदय परिवर्तन किया। इसके उलट इसने पक्षपात को और गहरा किया तथा रुख को और ज्यादा मजबूत किया। एक हफ्ते बाद तो कम से कम ऐसा ही लगा।

इसका एक स्पष्टीकरण है मीडिया, खास तौर पर टेलीविजन और डिजिटल माध्यम। हमारा समाज कभी मीडिया से इतना सराबोर नहीं रहा और न ही हमारा मीडिया कभी आज जैसा जबरदस्त पक्षपाती रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का बड़ा हिस्सा आँख मूँदकर और दृढ़ता से शासक पार्टी और सरकार के समर्थन में है तथा उस प्रधानमंत्री की चापलूसी में मशगूल है जो इस मीडिया की नजर में गलतियों से परे है। यहाँ तक कि तथाकथित गोदी मीडिया अकाट्य प्रमाणों के सामने होते हुए भी असमर्थनीय व्यक्ति के लिए समर्थन का कोई न कोई रास्ता ढूँढ ले रहा है, इनमें से आक्रामक तत्व तो 'वैकल्पिक तथ्यों' के सहारे ही हमलावर हो जा रहे हैं।

लेकिन स्पष्टीकरण का बड़ा हिस्सा कहीं और है और यह कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। दिल्ली की हिंसा और इसका परिणाम इस सच्चाई की ओर इशारा करते हैं कि आज जनता के बहुत बड़े हिस्से में नफरत भर दी गयी है और इस हिस्से को एक ऐसा टीका लगा दिया गया है जो हर प्रतिरोधक को बेअसर कर देता है। ऐसे लोगों को यकीन है कि सभी जरूरी तथ्य उनके पास पहले से मौजूद हैं। उन्हें उनकी विश्वदृष्टि के खिलाफ दिये गये तर्कों को इसके खिलाफ एक षड़यंत्र के रूप में देखने के लिए गढ़ा गया है। उनकी कट्टर आस्थाएँ बेतरतीब विकृतियाँ या अतीत की विरासत नहीं हैं। वे जमीनी स्तरों पर लम्बे और श्रमसाध्य वैचारिक कार्यों का नतीजा हैं। इसका प्रतिरोध कैसे करें और इसके असर को कैसे खत्म करें यह हमारे दौर का केन्द्रीय सवाल है।

शाहीन बाग मॉडल

अतीत के बड़े दंगों से इस घटना का एक अनोखा फर्क यह है कि इसमें पहले जैसा कोई स्पष्ट उकसावा मौजूदा नहीं रहा है। 1984 की हिंसा सिक्ख अंगरक्षकों द्वारा प्रधानमंत्री की हत्या से फूटी थी, जबकि 2002 में गोधरा में रेल में हुई मौतों के लिए मुस्लिमों को दोषी ठहराया गया था। 2020 में ऐसा कुछ भी नहीं रहा सिवाय सीएए और एनआरसी के विरोध के, जिसका प्रतीक शाहीन बाग है। शाहीन बाग, जो महज एक जगह होने से कहीं ज्यादा एक प्रेरणादायक मॉडल है, इसका बेलगाम हिंसा और हत्याओं के लिए उकसावा बन जाना काफी अनोखा है। यह एक शान्तिपूर्ण विरोध प्रदर्शन है जिसका नेतृत्व अलग-अलग उम्र की औरतों के हाथ में है, जिनमें उम्रदराज औरतें भी शामिल हैं। यह निरन्तर राष्ट्रवादी प्रतीकों का आह्वान करता रहा है, इसको भाषा गैर-साम्प्रदायिक भाषा का इस्तेमाल करता है और संविधान की प्रस्तावना को अपने घोषणापत्र के रूप में स्वीकार करता है। शाहीन बाग का विरोध प्रदर्शन का यह मॉडल पूरे देश में तेजी से फैल रहा है (कहीं ज्यादा, कहीं कम), जो 2014 में मोदी-शाह की जोड़ी के सत्ता में आने के बाद उनके सामने आयी पहली महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चुनौती है।

इस विरोध प्रदर्शन ने रोज आने-जाने वालों को चाहे कितना भी परेशान किया हो और चाहे राजनीतिक कार्यकर्ताओं के विरोधी

गुटों के बीच कितने भी अन्दरूनी टकराव हुए हों इसके बावजूद जो संगठित लूट, आगजनी, हत्या इसके नाम पर हुई उसको किसी भी तरह जायज नहीं ठहराया जा सकता है। दिल्ली की हिंसा दिल्ली को विधान सभा चुनाव में केन्द्र की शासक पार्टी को खारिज करने की "सजा" है, यह तर्क एक अपर्याप्त स्पष्टीकरण है क्योंकि इस चुनाव में हार से बड़े परिदृश्य पर बहुत ज्यादा फर्क नहीं पड़ा है। इस हिंसा से पहले और खास तौर पर इसके बाद आम आदमी पार्टी की चूक और छूट मौजूदा राजनीति की एक और बड़ी सच्चाई की ओर इशारा करती है। मोदी-शाह परियोजना की उपलब्धियों में सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि आज कोई भी बड़ी पार्टी मुस्लिम समर्थक दिखने का रत्तीभर खतरा भी उठाने को तैयार नहीं है।

बाजी पलटने वाला मोड़

इस तर्क को और विस्तारित किया जा सकता है। दिल्ली की हिंसा मोदी-शाह परियोजना के 2019 के बाद के चरण के उस निर्णायक मोड़ को चिन्हित कर सकती है जब राष्ट्रवादी तथा मुस्लिम विरोधी एजेण्डा ने चुनावी मजबूरियों को तोड़ने लायक आवेग पैदा कर दिया है। अगर यह सही है तो यह एक आवेगपूर्ण घटना है। इसका अर्थ है कि हिन्दू-बहुसंख्यावादी एजेण्डे ने राजनीतिक लड़ाई इतने निर्णायक ढंग से जीत ली है कि अब वे चुनाव हारने का जोखिम भी उठा सकते हैं। दूसरे शब्दों में अब चुनाव "कमतर" स्थानीय या तात्कालिक मुद्दों पर जीता या हारा जायेगा, लेकिन हारने वाले और जीतने वाले दोनों ही हिन्दू और बहुसंख्यकवाद का समर्थन करेंगे। उलटी तरफ से देखा जाये तो सिर्फ और सिर्फ चुनावी राजनीति के बाहर ही हिन्दू-बहुसंख्यकवाद को चुनौती दी जा सकती है।

लेकिन मोदी-शाह परियोजना हिन्दू-बहुसंख्यकवादी एजेण्डे से भी कहीं बड़ी और अलग है। यह फर्क महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जो इन दोनों के खिलाफ हैं उनके लिए एकमात्र आशा की किरण यही है।

सामान्य रूप से कहा जाये तो मोदी-शाह परियोजना दो लोगों के लिए सत्ता हथियाने और कब्जे में रखने का एक घोर स्वेच्छाचारी दाँव है। यह परियोजना एक ही साथ दो घोड़ों पर सवार है-- दरबारी कॉर्पोरेटवाद और हिन्दू-बहुसंख्यकवाद। 2019 के चुनाव में लगातार दूसरी जबरदस्त जीत के बाद ही मोदी-शाह जोड़ी ने इस योजना के वर्चस्वशाली हिस्सेदार तथा इसके सहयोगी बनने लायक ताकत हासिल की। लेकिन अब भी इस जोड़ी को दोनों की जरूरत है। मोदी-शाह जोड़ी और इनके दोनों सहयोगियों के बीच या खुद सहयोगियों के बीच की आपसी सम्भावित टकराहट का मैदान ही इस जोड़ी के खिलाफ चुनौती खड़ा करने की सबसे उर्वर जमीन है।

ठोस राजनीतिक शर्तों के आधार पर इन मैदानों का खाका बनाना बहुत मुश्किल लेकिन बेहद जरूरी कार्यभार है। यह बात स्पष्ट है कि यह ऐसी जगह है जहाँ अब तक किसी ने कदम नहीं रखा और मोदी-शाह जोड़ी की सफलता ने इस परिदृश्य को रूपान्तरित कर दिया है। निश्चय ही, चुनौती देने वालों को लगभग पूरी तरह आत्मसमर्पण कर चुके उन सभी संस्थानों से टकराना होगा जिन्हें संवैधानिक रूप से इस तरह बनाया गया था कि वे ठीक ऐसे ही लोकतान्त्रिक संघर्षों की हिफाजत करें, जिनमें न्यायालय, पुलिस, नौकरशाही, मीडिया, विश्वविद्यालय और यहाँ तक कि सूचना इकठ्ठा करने वाली संस्थाएँ शामिल हैं।

अन्दर झाँककर देखिये

आखिरकार, 2020 की दिल्ली की यह घटना इससे पहले की सभी "साम्प्रदायिक हिंसा" की घटनाओं से मुख्यतः दो कारणों के चलते अलग है। पहला, यह मुसलमानों के "दलितीकरण" के एक साफ-सुथरे अभियान की शुरुआत को दर्शाती है, जिसके बारे में यहाँ बात नहीं हो सकती। दूसरा, यह मौजूदा भारतीय राजनीति में एक मोड़ की शिनाख्त करती है। इस नतीजे तक पहुँचने के सारे लक्षण स्पष्ट रूप से हिंसा के दौरान नहीं, बल्कि उसके बाद दिखायी दिये। पछतावे की तयशुदा गैर-मौजूदगी और उन्हीं आवाजों में उन्हीं नारों (जिसमें "गोली मारो" भी शामिल है) को उन जमावड़ों में उछालना जिसे अब "अमन का जुलूस" कहा जा रहा है, उसमें एक सन्देश छिपा हुआ था। स्मार्ट फोन में नक्शे की एप्लीकेशन की भाषा में कहें तो वह मानसिकता जिसे "हिन्दू राष्ट्र" कहा जाता है, अब मंजिल नहीं रह गयी - बल्कि यह शायद हमारी मौजूदा अवस्थिति बन चुकी है।

इससे पहले कि बहुत देर हो जाये हम भारतीयों को, खासकर उन्हें जो उस विराट बहुमत के साथ खुद को जोड़ते हैं या दूसरे लोग उन्हें इसका हिस्सा मानते हैं, हिन्दू होने के नाते, एक महत्त्वपूर्ण सवाल पूछना चाहिए। क्या यह वही है जो हम चाहते हैं?

-- सतीश देशपाण्डे

द हिन्दू में प्रकाशित लेख का अनुवाद

दिल्ली दंगे की जमीनी हकीकत

भारतीय समाज के लिए नासूर बन चुकी साम्प्रदायिकता की समस्या ने देश को अनेकों जख्म दिये हैं। इसकी वजह से भारत के दो टुकड़े हुए और आजाद भारत ने धार्मिक हिंसा के अकथनीय कत्ल-ओ-गारत में अपनी आँखें खोलीं। जख्म का आलम यह है कि एक से समाज उभरता नहीं है तब तक दूसरा सतह पर उभर आता है। आजादी के बाद की किसी भी सरकार ने इसे दूर करने के लिए ईमानदारी से न तो कोई योजना बनायी और न ही उस पर कभी विचार किया। पिछले छः सालों से जब से भाजपा की हिन्दुत्ववादी सरकार सत्ता में है तब से साम्प्रदायिकता का विस्तार इस हद तक हो चुका है कि इसके चरित्र में गुणात्मक बदलाव आ गया है और यह एकतरफा बन गयी है।

फरवरी के अन्त में हुआ दिल्ली दंगा इस बदलाव का ताजा उदाहरण है जिसकी भूमिका भाजपा नेता कई महीने पहले से भड़काऊ बयान और भाषण देकर बनाते आ रहे थे। दिल्ली चुनाव, जो साम्प्रदायिकता बनाम विकास के बीच लड़ा गया और जिसमें भाजपा की साम्प्रदायिकता के मुकाबले आम आदमी पार्टी के विकास की जीत हुई, इस दौरान प्रचार रैलियों में भाजपा नेताओं द्वारा "देश के गद्दारों को, गोली मारो सालों को" और "कपड़ों से देशद्रोहियों की पहचान हो जायेगी" जैसे बयान देकर लगातार दिल्ली की हवा में साम्प्रदायिकता का जहर घोलने का काम किया जा रहा था। दरअसल मोदी सरकार ने लगातार दूसरी बार सत्ता हासिल करते ही जो संविधान विरोधी नागरिकता संशोधन कानून पारित किया उसका संविधान में यकीन रखने वाले हर भारतीय नागरिक ने इसका जाति-धर्म की दीवारों से ऊपर उठकर विरोध किया। इस विरोध में मुस्लिम नागरिक खासतौर से शामिल हुए। इस कानून के खिलाफ देशव्यापी प्रदर्शनों का केन्द्र बना दिल्ली का शाहीन बाग नामक इलाका विरोध प्रदर्शन के अपने रचनात्मक तौर-तरीकों के कारण देश-विदेश में चर्चित हुआ। शाहीन बाग के अहिंसक विरोध प्रदर्शन को प्रसिद्धि मिलने के चलते देश-दुनिया में मोदी सरकार की सीएए को लेकर आलोचना होने लगी। जिसके चलते भाजपा नेताओं की पूरी कोशिश थी कि किसी भी तरह विरोध प्रदर्शनकारियों को बदनाम करके इन आलोचनाओं से पीछा छुड़ाया जाये। इस काम में भाजपा के सभी राष्ट्रीय तथा स्थानीय नेताओं के साथ-साथ जरखरीद मीडिया भी लग गया। जब साम्प्रदायिकता का माहौल पूरी तरह से पक गया तो बारूद में चिंगारी लगाने का काम आम आदमी पार्टी से भाजपा में शामिल हुए विधायक कपिल मिश्रा ने किया। कपिल मिश्रा ने पुलिस की मौजूदगी में ऐलान किया कि अगर प्रदर्शनकारी नहीं हटे तो वह अपने समर्थकों को लेकर खुद उन्हें हटायेगा हालाँकि अपने महीनों लम्बे प्रदर्शन के दौरान प्रदर्शनकारियों की ओर से एक भी ऐसी घटना नहीं हुई जिससे किसी की धार्मिक भावनाएं आहत हो। तुरन्त कपिल मिश्रा को गिरफ्तार करने के बजाय पुलिस अधिकारी मूकदर्शक बनकर खड़े रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसी दिन शाम को सीएए समर्थकों पर विरोधियों ने पथराव शुरू कर दिया। जिसने भयानक दंगे का रूप ले लिया जो दंगा तीन दिन तक बदस्तूर जारी रहा। जिसमें पचास बेगुनाहों की जान चली गयी और लगभग तीन सौ लोग घायल हुए। दिल्ली पुलिस का एक हेड कॉन्सटेबल भी इस हिंसा का शिकार हुआ। इसके अलावा करीब 300 घर और दुकानें फूँक दी गयीं जिससे करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ। इस दौरान दर्जनों ऐसी घटनाएँ हुईं जिसने पुलिस प्रशासन के सामप्रदायिक रुख को स्पष्ट किया।

यह एक अलग किस्म का दंगा था। यह हिन्दू-मुस्लिम में सीधा टकराव न होकर मुस्लिम कालोनियों और घरों को एकतरफा निशाना बनाने जैसा था। योजनाबद्ध तरीके से किये गये हमलों में हमलावर भाड़े के गुण्डों जैसा सुलूक कर रहे थे। निश्चय ही मुस्लिम पक्ष ने कई जगह इन्हें माकूल जबाव भी दिया।

साम्प्रदायिक दंगों के इतिहास में वैसे तो हमेशा से भारतीय पुलिस की भूमिका संदिग्ध रही है। लेकिन दिल्ली के हालिया दंगों में यह भूमिका एकदम स्पष्ट हो गयी जब पुलिस साफ तौर पर हमलावरों के पक्ष में ही खड़ी दिखायी दी। सुनियोजित तरीकों से हुए इन दंगों में तीन दिनों तक दंगाइयों को जैसे खुला छोड़ दिया गया था। सैकड़ों ऐसी फोटो और वीडियो क्लिप सामने आयी, जिसमें पुलिस या तो मूकदर्शक बनी खड़ी है या दंगाइयों में शामिल होकर हमलावर है। क्या कोई राजनीतिक ताकत पुलिस को ऐसा करने के लिए निर्देश दे रही थी या पुलिस ने खुद ही एक पक्ष को सही और दूसरे को गलत मान लिया था और राजसत्ता उसके इस रुख से खुश थी। दंगों के दौरान पुलिस की भूमिका पर पूर्व डीजीपी प्रकाश सिंह का कहना है कि "दिल्ली दंगों के दौरान पुलिस को देखकर लगा मानो उसे लकवा मार गया हो।" यह बयान ही पुलिस की भूमिका को स्पष्ट कर देता है। हालाँकि पुलिस वाले भी उसी भारतीय समाज से आते हैं जिसमें बचपन से ही धार्मिक नफरत की घुट्टी पिलायी जाती है। और भारतीय पुलिस भी कमोबेश उन्हीं पूर्वाग्रहों से ग्रसित है, जिनसे आमतौर पर पूरा समाज ग्रसित है। इन दंगों के दौरान "द टेलीग्राफ" नामक अखबार ने ठीक ही लिखा था कि "गुजरात मॉडल दिल्ली पहुँच गया है।" यह बात 2002 के गुजरात दंगों के दौरान पुलिस की भूमिका की तरफ इशारा करते

हुए में कही गयी थी।

दिल्ली का दंगा उस समय हुआ जब अमरीका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प भारत दौरे पर थे। लेकिन उन्होंने इसे भारत का आन्तरिक मामला कहकर कोई टिप्पणी करने से इनकार कर दिया। लेकिन पिछले छः वर्ष से भारत वैश्विक स्तर पर अपनी उस धर्मनिरपेक्षता की छवि को तेजी से खोता जा रहा है जिसके लिए वो जाना जाता रहा है। दुनिया के कई देशों ने इन दंगों पर अपनी प्रतिक्रिया दी--

ईरान के विदेश मंत्री जावेद जरीफ ने ट्वीट करके कहा कि "भारत में मुसलमानों के खिलाफ प्रायोजित हिंसा की ईरान निन्दा करता है। सदियों से ईरान और भारत दोस्त रहे हैं। मैं भारत की सरकार से आग्रह करता हूँ कि सभी नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करें।" इससे पहले धारा 370 हटाने और सीएए को लेकर मलेशिया, तुर्की और पाकिस्तान ने भी भारत सरकार से अपनी चिन्ता जाहिर की थी। हालाँकि भारत सरकार ने इसे आन्तरिक मामला कहकर खारिज कर दिया था। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों की उच्चायुक्त ने भी दिल्ली हिंसा पर चिन्ता जाहिर करते हुए कहा कि भारतीय राजनेताओं को ऐसी हिंसा रोकनी चाहिए।

दिल्ली में दोबारा चुनाव जीतकर सत्ता में आयी आम आदमी पार्टी ने दंगों को रोकने में कोई सक्रिय हस्तक्षेप नहीं किया और मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने भी राज्य सरकार की शक्तिहीनता का बहाना बनाकर दंगे की हर प्रकार की जिम्मेदारी से हाथ खींच लिया। दूसरी ओर राजनीतिक पार्टियों के नेता भी सोशल मीड़िया पर ट्वीट करने से आगे नहीं बढ़े और न्यूज चैनल तो लगातार भड़काऊ खबरें दिखाकर आग में घी डालने का काम करते ही रहे। जबकि इतिहास में गाँधी जी जैसे नेता सम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए सीधे उन्मादी भीड़ में घुस जाते थे और क्रान्तिकारी पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी तो कानपुर में इसी नफरत को रोकने के दौरान ही शहीद हुए थे।

साम्प्रादायिक दंगों के बारे में कभी शहीद भगतसिंह ने कहा था कि **"भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। इन धर्मों ने भारत का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है।"**

लेकिन बात उनकी चिन्ता से बहुत आगे बढ चुकी है। दंगे एकतरफा रूप धारण कर चुके हैं, मीडिया उन्हें रोकने के बजाय बढ़ावा देता है और सरकार ने देश छवि की परवाह करना छोड़ दिया है।

--विशाल विवेक

उत्तर प्रदेश में गैरकानूनी पोस्टर लगाकर प्रदर्शनकारियों से हरजाना वसूला गया

मार्च में उत्तर प्रदेश की सरकार ने सारे कानूनों को ताक पर रखकर लखनऊ में सीएए विरोधी प्रदर्शनकारियों के पोस्टर सार्वजनिक तौर पर जारी किये। इन पोस्टरों में 57 लोगों की फोटो, उनका पूरा नाम और पता लिखा गया। सरकार ने बिना किसी कानूनी कार्यवाही के इन्हें दंगाई घोषित कर दिया। इन पर 'नागरिकता संसोधन कानून' का विरोध करते हुए सरकारी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने और तोड़-फोड़ करने का मनमाना आरोप लगाया गया। पोस्टर में लिखा गया कि इन्हें प्रशासन को एक करोड़ 15 लाख का मुआवजा चुकाना होगा और ऐसा न करने पर उनकी सम्पत्ति तक कुर्क कर ली जायेगी।

उत्तर प्रदेश सरकार की बदले की भावना से की गयी कार्रवाई को देखते हुए इलाहबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश गोविन्द माथुर ने इस मामले पर स्वतः संज्ञान लिया और रविवार को ही लखनऊ के पुलिस कमीश्नर और डीएम को उच्च-न्यायलाय में हाजिर होने के आदेश दिया। मुख्य न्यायाधीश ने उत्तर प्रदेश सरकार के इस कदम को बेहद अन्यायपूर्ण बताते हुए पूछा कि आपने किस कानूनी नियम से नाम सार्वजनिक किये? साथ ही अदालत ने सरकार को फटकार लगाते हुए याद दिलाया कि 'कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर 1973' के अनुसार सिर्फ अदालत के पास ही यह अधिकार है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति का पोस्टर जारी करने का आदेश दे सकती है, जो कानूनी प्रक्रिया से भाग रहा हो। लेकिन उत्तर प्रदेश सरकार खुद न्यायधीश बन बैठी। अदालत ने जल्द से जल्द उन पोस्टरों को हटाने के आदेश जारी किये। अपने पक्ष में कोई दलील न दे पाने की स्थिति में सरकार तानाशाही पर

उतर आयी और उलटा अदालत को ही चेताने लगी कि यह मामला आपके क्षेत्र से बाहर है, इसलिए आपको बीच में आने का कोई अधिकार नहीं हैं। आजाद भारत में कोई राज्य सरकार शायद ही पहले कभी उच्च न्यायलय के खिलाफ गयी।

यह पहला मामला नहीं है जब उत्तर प्रदेश सरकार मनमानी पर उतर आयी है, मुख्यमंत्री बनने के पहले से ही योगी आदित्यनाथ विवादों में बने रहे हैं, खासकर अपनी मुस्लिम विरोधी गतिविधियों और बयानों के चलते। मानवाधिकारों की वकालत और शोध करने वाले एक अन्तरराष्ट्रीय स्वयं सेवी संगठन 'ह्यूमन राइट्स वॉच' की एक रिपोर्ट के अनुसार उत्तर-प्रदेश में मार्च 2017 से अगस्त 2018 के बीच 63 लोग पुलिस हिरासत में मर चुके हैं, जिनमें अधिकतर मुस्लिम थे। इनमें से अधिकांश लोगों के बेकसूर होने की बात बाद की जाँच में पुष्ट भी हो गयी। कई लोग मानते हैं कि योगी का साम्प्रदायिक इतिहास बहुत पुराना है, 2002 में इन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के नाम पर 'हिन्दू यूथ मिलीशिया' का निर्माण किया था। इस संगठन को 2005 में उत्तर प्रदेश के मऊ और 2007 में गोरखपुर के दंगे भड़काने का दोषी पाया गया था। आदित्यनाथ पर यह भी आरोप है कि उन्होंने 2011 में मुस्लिम महिलाओं को कब्रों से निकाल कर बलात्कार करने और उन्हें जलाने तक की बात कही थी। साम्प्रदायिक बयान, दंगा भड़काना और समाज में वैमनस्व को बढ़ावा देने के नाम पर उनके ऊपर कई केस लग चुके हैं। उत्तर प्रदेश लगभग 20 करोड़ लोगों का घर है जिसमें 19 प्रतिशत मुस्लिम आबादी है, ऐसे में साम्प्रदायिक नफरत से जुड़ी राजनीति समाज के ताने-बाने को तोड़ सकती है। मुख्यमंत्री बनते ही आदित्यनाथ ने खुद अपने ऊपर लगे सारे मुकदमों को निरस्त कर दिया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने 'नागरिकता संसोधन कानून' का विरोध करने वालों पर कठोर दमन चक्र चलाया। लखनऊ, मेरठ, कानपुर, बिजनौर, वाराणसी आदि शहरों से अनेकों खबरें आयीं, जिसमें सरकारी आदेश पर पुलिस ने हजारों लोगों को जेल में डाल दिया। प्रशासन पर यह भी आरोप लगा कि उसने मुस्लिम घरों में लूटपाट की और शान्तिपूर्वक विरोध करनेवाले निहत्थे लोगों पर गोलियाँ तक चलायीं। उत्तर प्रदेश में पुलिस की गोली से लगभग 6 लोगों की मौत हुई। सरकार की इस बर्बर कार्रवाई के खिलाफ पूरे देश में इनसाफपसन्द लोगों ने आवाज उठायी और जब सच्चाई को सामने लाने के लिए एक गैर-सरकारी संस्था ने मरने वालों के परिवार से बात की तो चौंकाने वाले तथ्य सामने आये। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में बताया कि पुलिस की गोली से मरने वाले अधिकांश लोग तो विरोध में शामिल भी नहीं थे। इनमें से एक मेरठ निवासी आसिफ भी था, जिसकी उम्र महज 20 साल थी। पुलिस ने उसे 20 दिसम्बर को हुई घटना का मास्टरमाइण्ड बताया लेकिन सच्चाई इसके उलट थी, वह रिक्शा चलाता था और जब पुलिस ने उसे मारा तब वह अपना रिक्शा रखकर घर आ रहा था। उनकी रिपोर्ट में ऐसी ही कई जुल्म की दास्ताँ बतायी गयी है।

उत्तर प्रदेश पुलिस ने इलाहाबाद की मशहूर डॉक्टर माधवी मित्तल के रेडियोलॉजी क्लीनिक पर छुट्टी के दिन अचानक छापा मारकर उसे सील कर दिया, सनद रहे डॉक्टर के पति 'नागरिकता कानून' के विरोध प्रदर्शन में शामिल हुए थे जिसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ी। जब सामाजिक कार्यकर्ता, छात्र और आम मेहनतकश लोग 'नागरिकता कानून' के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करके सरकार से सवाल कर रहें हैं, तब उनकी आवाज को दबाने के लिए सत्ता एक सामाजिक वातावरण तैयार कर रही है, जिसके जरिये इन्हें ही गद्दार घोषित करके भीड़ द्वारा इनकी हत्या करवायी जा सके। पिछले दिनों 'अर्बन नक्सल', 'राष्ट्र-विरोधी', 'विकास-विरोधी' आदि शब्दों का निर्माण इसी षड्यंत्र का हिस्सा है, धर्मांधता में डूबे लोग इसका सबसे आसान शिकार बनते हैं। मुस्लिम विरोधी मानसिकता को बढ़ावा देकर पिछले कुछ सालों में एक ऐसी भीड़ तैयार की गयी है जो इशारा मिलते ही किसी को भी पीट-पीटकर मार सकती है।

सरकार ने जिन 57 लोगों को गद्दार घोषित करके पोस्टर जारी किये हैं, उनमें से 53 लोगों पर तो कानून के तहत अभी तक कोई दोष भी साबित नहीं हो पाया है। इन लोगों में सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक बड़ी संख्या है, जो समय-समय पर सरकार की गलत नीतियों के खिलाफ आवाज उठाते रहे हैं। इनमें 76 साल के पूर्व आईपीएस एस आर दारापुरी, सामाजिक कार्यकर्ता और कलाकार दीपक कबीर, 80 वर्षीय वकील मो. सोहेल, सामाजिक कार्यकर्ता सदफ जाफर आदि शामिल हैं। अब योगी सरकार इनके नाम और पते सार्वजनिक करके इन्हें उसी निर्मित भीड़ का शिकार बनाना चाहती है, जिससे विरोध करने वालों को कुचल दिया जा सके और सरकार एकतरफा जन-विरोधी नीतियों को आसानी से लागू कर सके।

-- मोहित पुण्डीर

बोल्सोनारो की नयी मुसीबत

'शोले' फिल्म में 'मौसी' ने 'जय' से कहा, "बेटा आदमी की पहचान उसके यारों-दोस्तों से होती है"।

हमारे प्रधानमंत्री जी के दुनिया में बहुत से दोस्त हैं। उनमें से दो खास दोस्त हैं-- इजराइल के राष्ट्रपति नेतेन्याहू और ब्राजील के राष्ट्रपति ज्येर बोल्सोनारो। जी हाँ, वही बोल्सोनारो जिन्हें इस बार गणतंत्र दिवस पर भारत सरकार ने खास मेहमान बनाया था। जो पिछले दिनों कोरोना मामले पर बेहूदी हवाई बयानबाजी करने के चलते दुनिया भर में बदनाम हुए थे।

ट्रम्प! जी नहीं, ट्रम्प दोस्त नहीं है। दोस्त धमकाते नहीं।

नेतेन्याहू पर इजराइल में भ्रष्टाचार के केसों का अम्बार लगा है। वह किसी तरह राष्ट्रपति भवन तक पहुँचने में कामयाब तो हो गये हैं लेकिन लगता है ज्यादा दिन वहाँ टिक नहीं पाएँगे। बोल्सोनारो के खिलाफ भी जाँच बैठा दी गयी है और लगता है कि उन्हें राष्ट्रपति भवन छोड़ना पड़ेगा। बोल्सोनारो ने हाल ही में संघीय पुलिस प्रमुख को बर्खास्त कर दिया था। यह फैसला अब उन पर भारी पड़ रहा है।

बोल्सोनारो अपने चहेते पूँजीपतियों की बेशर्मी से खुलेआम मदद करने, राजनीतिक विरोधियों को ठिकाने लगाने, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पर्यावरणवादियों और लैंगिक अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न करने और चन्द धन्नासेठों के मुनाफे के लिए धरती माँ के फेफड़े कहे जाने वाले अमेजन के जंगलों में आग लगवाने जैसे कुकर्मों के चलते पहले ही बहुत बदनाम हो चुके हैं।

शायद इस बार वह अपने दौर के सबसे बड़े संकट का सामना कर रहे हैं। पिछले महीने उन्होंने स्वास्थ्य मंत्री लुईस हेनरिक को बर्खास्त कर दिया था। इसके बाद बोल्सोनारो के मजबूत राजनीतिक सहयोगी और न्यायमंत्री सेर्गियो मोरो ने भी मंत्रीमण्डल से इस्तीफा दे दिया। उनका आरोप था कि कुछ बड़े राजनेता संघीय पुलिस के ढाँचे से छेड़-छाड़ कर रहे हैं। अटोर्नी जरनल मोरो के पक्ष में आ गये और सर्वोच्य न्यायालय से इन आरोपों की जाँच का आदेश देने की गुजारिश की। न्यायालय ने 60 दिन में जाँच पूरी करने का आदेश दिया।

पुलिस ने राष्ट्रपति और उनके दो बेटों, (दोनों उच्च राजनीतिक पदों पर हैं) के खिलाफ फर्जी खबर फैलाने, भ्रष्टाचार और माफिया गिरोह से सम्बन्ध रखने की जाँच शुरू कर दी। इसी दौरान राष्ट्रपति ने पुलिस प्रमुख को बर्खास्त करके उनकी जगह अपने बेटे के एक 'मित्र' को बहाल कर दिया। उनके इस कदम से मोरो के आरोप खुद ही साबित हो गये। अब बोल्सोनारो के सर पर दो तलवारें लटकी हैं-- पुलिस की जाँच और ज्यादा तेज हो गयी है तथा कोरोना महामारी के चलते देश भारी आर्थिक संकट में फंस चुका है।

मोरो और हेनरिक की जोड़ी ने पूर्व राष्ट्रपति लूला को भ्रष्टाचार के झूठे आरोपों में फँसाने और बोल्सोनारो को राष्ट्रपति के पद तक पहुँचाने में प्रमुख भूमिका निभायी थी। मंत्री बनने से पहले मोरो जज थे। लूला को सजा करवाने वाले समूहों के साथ मोरो की साँठ-गाँठ के प्रमाण पिछले साल ही सामने आ गये थे और यह भी साफ हो गया था कि मोरो, हेनरिक और बोल्सोनारो की तिकड़ी ने देशी-विदेशी पूँजी के दम पर न्यायपालिका, कार्यपालिका और मीडिया के एक हिस्से को अपने पक्ष में लेकर तथा जनता को गुमराह करके जीत हासिल की थी।

किसी सयाने ने कहा है कि चोरों के बीच चोरी के वक्त तो एका होता है लेकिन मुसीबत में जूतम-पैजार होता है। और हाँ, मौसी ने कहा था-- बेटा आदमी की पहचान उसके यारों-दोस्तों से होती है"।

--प्रवीण

ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था की खामियाँ

सरकार ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था लाने का विचार बना रही है, लेकिन इस तरह की शिक्षा की अपनी तमाम कमियाँ हैं। ऐसी पढ़ाई स्कूल-कॉलेजों के मालिकों और सॉफ्टवेयर कम्पनियों के लिए मुनाफे का बढ़िया स्रोत्त है, लेकिन इससे बड़ी संख्या म. शिक्षक बेरोजगार होंगे। उनकी जिन्दगी तबाह हो जायेगी। अर्थव्यवस्था का संकट और बढ़ जाएगा।

ऐसी शिक्षा छोटे बच्चों को कुछ भी सिखा नहीं पाएगी, जब उन्ह. ऊँगली पकड़कर सिखाने की जरूरत होती है। यह न तो बड़े छात्रों को कुछ दे पाएगी क्योंकि अच्छी शिक्षा के लिए टीचर-स्टूडेंट के बीच जीवंत रिश्ता होना जरूरी है। छात्र अपने हमउम्र छात्रों से बहुत कुछ सीखते हैं, उससे वंचित हो जायेंगे।

96 प्रतिशत प्रवासी श्रमिकों को सरकार से राशन नहीं मिला, 90 प्रतिशत को लॉकडाउन के दौरान मजदूरी नहीं मिली

अंग्रेजी दैनिक 'द हिन्दू' की डेटा टीम द्वारा किया गया सर्वेक्षण

विभिन्न राज्यों में फँसे 11,159 प्रवासी मजदूरों के सर्वेक्षण में पाया गया कि 8 अप्रैल से 13 अप्रैल के बीच, 90 प्रतिशत से अधिक मजदूरों को सरकार से कोई राशन नहीं मिला। इनमें से लगभग 90 प्रतिशत को उनके नियोक्ताओं ने कोई भुगतान नहीं किया है। 27 मार्च से 13 अप्रैल के बीच हुए सर्वेक्षण में शामिल 70 प्रतिशत मजदूरों के पास 200 से भी कम रुपये बचे थे।

भोजन और धन में गिरावट

चार्ट में उन प्रवासी मजदूरों का प्रतिशत दिखाया गया है, जिन्हें सरकार या अन्य स्रोतों से, राशन या पका हुआ भोजन नहीं मिला और जिन्हें 8 अप्रैल से 13 अप्रैल के बीच नियोक्ताओं ने कोई भुगतान नहीं किया। जबकि इस दौरान जिन मजदूरों को सरकार या अन्य स्रोतों से पका हुआ भोजन मिला उनके प्रतिशत में मामूली सुधार हुआ, इनमें से अधिकांश को सरकार से राशन या अपने नियोक्ताओं से मजदूरी नहीं मिली।

क्या फँसे हुए मजदूरों को जरूरी चीजें हासिल हुईं?

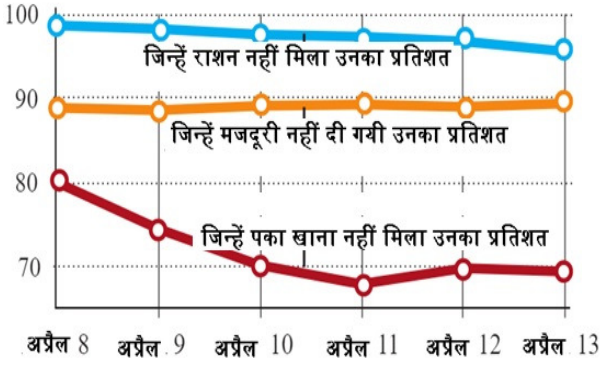

चुकते भण्डार

यह चार्ट उन प्रवासी श्रमिकों का प्रतिशत दिखाता है जिनके पास एक दिन से भी कम का राशन बचा था।

तेजी से खत्म होता राशन

प्रवासी मजदूरों के बड़े हिस्से को सरकार या गैर सरकारी संगठनों से न तो राशन मिला और न ही पका हुआ खाना और उन्हें

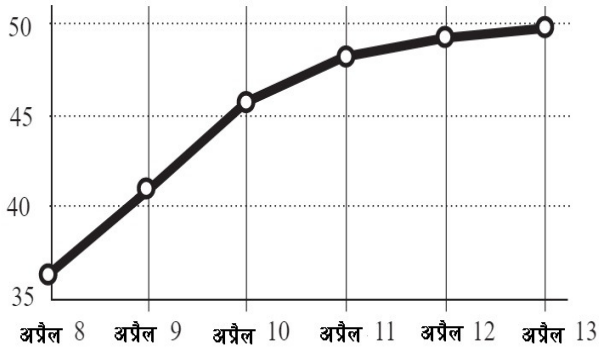

तेजी से खत्म होता राशन

उनकी मजदूरी का भी भुगतान नहीं किया गया, ऐसे मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ती गयी जिनके पास एक दिन से भी कम का राशन बचा था।

सबसे बुरी तरह प्रभावित राज्य

निम्नलिखित बिन्दु ऐसे प्रवासी मजदूरों का प्रतिशत दिखाते हैं जिन्हें राशन और पका हुआ भोजन जैसी जरूरी चीजें नहीं मिलीं तथा जिनके पास 27 मार्च से 13 अप्रैल के बीच जीवन गुजारने के लिए 200 रुपये से भी कम बचे थे। उत्तर प्रदेश में फँसे मजदूरों की हालत सबसे खराब थी।

राशन के बिना छोड़ दिये गये लोग

पूरे भारत में सर्वेक्षण में शामिल मजदूरों में से 96 प्रतिशत मजदूरों ने बताया कि उन्हें सरकार से राशन नहीं मिला है।

उत्तर प्रदेश में 100 प्रतिशत प्रवासी मजदूरों को राशन नहीं मिला।

महाराष्ट्र में 99 प्रतिशत को राशन नहीं मिला।

कर्नाटक में 93 प्रतिशत को राशन नहीं मिला।

जिन्हें पका हुआ भोजन नहीं मिला

सर्वेक्षण में शामिल 70 प्रतिशत मजदूरों ने कहा कि उन्हें सरकार या स्थानीय संगठनों से खाना नहीं मिला है।

उत्तर प्रदेश में 64 प्रतिशत प्रवासी मजदूरों को पका हुआ

भोजन नहीं मिला।

कर्नाटक में 80 प्रतिशत को पका हुआ भोजन नहीं मिला।

महाराष्ट्र में 58 प्रतिशत को पका हुआ भोजन नहीं मिला।

दिल्ली और हरियाणा में 66 प्रतिशत को पका हुआ भोजन नहीं मिला।

राशन की मौजूदा स्थिति

सर्वेक्षण में शामिल 70 प्रतिशत मजदूरों ने कहा कि उनके पास केवल दो दिनों का ही राशन है।

उत्तर प्रदेश में 100 प्रतिशत प्रवासी मजदूरों ने कहा कि उनका राशन केवल 2 दिनों तक चलेगा।

महाराष्ट्र में 90 प्रतिशत ने ऐसा ही कहा।

दिल्ली और हरियाणा में 82 प्रतिशत ने यही कहा।

वित्त की स्थिति

सर्वेक्षण में शामिल 70 प्रतिशत मजदूरों ने कहा कि लॉकडाउन के दौरान जीवित रहने के लिए उनके पास 200 रुपये से भी कम हैं।

उत्तर प्रदेश में 87 प्रतिशत प्रवासी मजदूरों के पास 200 रुपये से कम थे।

हरियाणा में 76 प्रतिशत मजदूरों के पास 300 रूपये से कम थे।

('द हिन्दू' से साभार,)

पीएम केयर से मजदूरों को क्या मिला?

उदयपुर में वेदान्ता कम्पनी का जिंक प्लाण्ट है, इसमें जापान, चीन, ताइवान के वैज्ञानिक वर्ग के अलावा हजारों भारतीय कर्मचारी और दिहाड़ी प्रवासी मजदूर काम करते हैं। पीएम केयर के नाम पर वेदान्ता ने 100 करोड़ का ऐलान किया। फिर जब देश में सैलरी काटने का चलन शुरू हुआ तो पूरे ग्रुप की सैलरी काट के पीएम केयर को देने वाली राशि को बढ़ा कर 201 करोड़ कर दिया गया। अब उदयपुर में कोरोना के केस अचानक बढ़ गये, अब आंकड़ा 100 से अधिक हो गया है। शहर में कर्फ्यू लगा है, मजदूरों को पहले जबरजस्ती रोका गया और अब ट्रेन का झुनझुना दे दिया गया। अब उनके पास न खाने को पैसे हैं न कही जाने की सुविधा, ना ही सर छुपाने को छत और ऊपर से राजस्थान की ये भीषण गर्मी का मौसम अलग। ट्रेनों की घोषणा तो हुई, लेकिन वहाँ भी कमीशन खोर बैठे हैं। कल गुजरात में भाजपा नेता द्वारा ट्रेन टिकट में कमीशन खोरी की जानकारी आयी थी, तो समझ लीजिए कि ट्रेन टिकट आसानी से नहीं मिल रहे। अब मजबूरन ये मजदूर उदयपुर के स्थानीय लोगों के रहमो-करम पर हैं। आखिर कितने दिन खिला देगा कोई?

कंस्ट्रक्शन क्षेत्र की एक कम्पनी है लार्सन एंड ट्यूब्रो (एलएण्डटी), ये बड़े-बड़े ठेके लेती है। देश के अलग-अलग राज्यों में कंस्ट्रक्शन से लेकर इंफ्रास्ट्रक्चर और नॉन बैंकिंग फाइनेंस तक में फैली है। एलएण्डटी ने मोदी जी के पीएम केयर में 150 करोड़ रुपये दान किये जबकि इसकी कंस्ट्रक्शन साइट पर मजदूर भूखे मर रहे हैं। फूड कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया से गेहूँ चावल खरीद कर मजदूरों को देने की बजाय ये पैसा पीएम केयर में इसलिए दिया जा रहा है क्योंकि इसमें इनकम टैक्स में भी छूट है और सरकार के हितैषी भी बन जायेंगे। इन कम्पनियों की पहली प्राथमिकता अपने कामगारों को खाना-रहने का बन्दोबस्त की बजाय पीएम केयर क्यों है?

मुकेश अम्बानी ने और अडानी ने पीएम केयर में 500 करोड़ दिये लेकिन इन्हीं के मजदूरों की गुजरात से रोज खबरें आ रही हैं। क्या यह पैसा सीधे मजदूरों की मदद नहीं कर सकता था? टाटा ने 1500 करोड़ दे दिये जबकि इससे आधे पैसों में मजदूरों के लिए 6 महीने रहने-खाने का बन्दोबस्त हो सकता था, छोटे बड़े हर उद्योगपति ने औकात अनुसार दान दिया है। सीधा सा कारण है कि उद्योगपतियों को सरकार से काम है, सरकार कोरोना के बाद लेबर लॉ और मजदूरों के हितों वाले सारे नियम स्थगित कर देगी और यही व्यापारी वर्ग इन्हीं मजदूरों के खून और खाल में से पीएम केयर फंड का पैसा वसूल लेगा। उद्योगपतियों का टैक्स माफ होगा, ट्रिब्यूनल में फँसे मुकदमों में क्लीन चिटें मिलेंगी, पुरानी पेनाल्टी माफ होंगी, ग्रीन ट्रिब्यूनल या इनकम वाले केस में धीरे से कमजोर साक्ष्य देकर छोड़ दिया जायेगा, इस तरह ये पीएम केयर वाला पैसा एक तरह से खुले में चन्दे की तरह चलेगा।

फैक्ट्री मजदूरों के बीच काम करनेवाले एनजीओ ने जब उद्योगपतियों से सम्पर्क किया तो उनमें से एक ने कहा कि "डूबते धंधों में जो बचा था उसे देश का प्रधान फकीर माँग ले गया है, तो अब हम एनजीओ की मदद भी कैसे करें।"

-- लक्ष्मी प्रताप सिंह

कोरोना जाँच और इलाज में निजी लैब-अस्पताल फिसड्डी

सरकार स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण पर आमादा है, जबकि निजी अस्पताल कोविड-19 के इलाज और जाँच में फिसड्डी साबित हुए हैं।

सरकार ने निजी अस्पतालों की जाँच फीस काफी मँहगी तय की, जबकि इन अस्पतालों द्वारा उससे कहीं ज्यादा फीस वसूलने या जाँच में आनाकानी करने के मामले भी सामने आये।

निजी अस्पतालों की मुनाफाखोरी तो जगजाहिर है, इस महामारी से निपटने में, इलाज और जाँच के मामले में उनकी लापरवाही भी खुलकर सामने आयी है।

देश में कुल कोविड-19 जाँच लैब में 30 प्रतिशत निजी क्षेत्र के हैं, जबकि कुल जाँच में इनकी भूमिका सिर्फ 12.18 प्रतिशत है। दिल्ली, मुम्बई जैसे महानगरों को छोड़कर बाकी जगहों में सरकारी लैब की तुलना में इनके जाँच का अनुपात तो बहुत ही कम है।

इंडियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) के मुताबिक सरकार ने कोविड-19 की जाँच के लिए 607 लैब को अनुमति दी, जिनमें से 180 लैब यानी लगभग 30 प्रतिशत निजी क्षेत्र के हैं। लेकिन जहाँ तक सैम्पल की जाँच का सवाल है, देश भर में सरकारी लैब में 25 लाख सैम्पल की जाँच हुई, जबकि निजी लैब में सिर्फ 5 लाख सैम्पल। जहाँ तक संक्रमित रोगियों के इलाज का सवाल है, निजी अस्पतालों ने बहुत ही कम रोगी भर्ती किये और वहाँ रोगियों की मृत्युदर भी सरकारी अस्पतालों से ज्यादा है।

दिल्ली के सबसे महँगे मैक्स अस्पताल में कोरोना का हर चौथा मरीज आईसीयू में भेजा गया है। हालाँकि 65 मरीजों में से सिर्फ एक को ही वेण्टिलेटर सपोर्ट पर रखना पड़ा है। दूसरी ओर देश के सबसे बड़े सरकारी अस्पताल एम्स में कोरोना के कारण भर्ती किये गये 31 मरीजों में से सिर्फ एक को आईसीयू में ले जाया गया है और चालीस मरीजों में से एक को वेण्टिलेटर सपोर्ट पर रखा गया है। इस तथ्य की व्याख्या आप करें लेकिन मोदीजी की नीति यह है कि सरकारी अस्पतालों पर खर्च घटाया जाये और ज्यादा से ज्यादा प्रायवेट अस्पताल बढ़ने दिये जाये। गरीब लोगों को आयुष्मान योजना से जोड़ दिया जाये और बाकी लोग स्वयं स्वास्थ्य बीमा करवाएँ। यही नीति अमरीका की है। यूरोप की नीति इससे उलट है।

आज कोरोना के चलते अमरीका दुनिया में सबसे ज्यादा तबाह हुआ है जबकि वह सबसे धनी देश है जिसके पास दुनिया के प्राइवेट अस्पतालों के नेटवर्क का सबसे बड़ा और सबसे बेहतर हिस्सा है। कोरोना के चलते वहाँ की आबादी का एक हिस्सा बीमा कम्पनियों की शर्तों के जाल में जितना कोरोना से मर रहा है उससे भी ज्यादा कर्ज से मर रहा है क्योंकि निजी अस्पतालों के लिए महामारी मुनाफा कमाने का सबसे बड़ा अवसर लेकर आयी है।

निजीकरण के समर्थक इस झूठ का सहारा लेते हैं कि सरकारी विभागों में काम नहीं होता, लेकिन कोरोना आपदा के अनुभव ने इस झूठ का पर्दाफाश कर दिया। सच तो यह है कि आज सरकारी स्वास्थ्य सेवाएँ नहीं होतीं तो स्थिति इससे भी भयावह होती। लेकिन विडम्बना यह कि हाल ही में केन्द्र सरकार ने सभी राज्यों के स्वास्थ्य सचिवों को बड़े सरकारी अस्पतालों और मेडिकल कॉलेजों के निजीकरण की कार्रवाई तेज करने के लिए लिखा है। कॉरपोरेट की चिन्ता में डूबी सरकार स्वास्थ्य सेवाओं की हकीकत को नजरअन्दाज करके आज भी सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण को बढ़ावा दे रही है।

सोमोजा स्टेडियम में सोमोजा अनावरण करता है, सोमोजा की प्रतिमा का

यह मत समझना कि मुझे यकीन है कि लोगों ने
यह प्रतिमा मेरे सम्मान में बनायी है,
क्योंकि मुझे तुमसे बेहतर पता है
कि मैंने खुद ही इसे बनाने का आदेश दिया।
मुझे नहीं लगता कि इसके जरिये
भावी पीढियाँ मुझे याद करेंगी
जानता हूँ मैं कि लोग एक दिन इसे ढा देंगे।
मैंने जीते-जी अपना स्मारक बनाना
इसलिए भी नहीं चाहा
कि मेरे मरने के बाद तो तुम लोग बनाओगे नहीं--
मैंने इसे बनवाया कि मैं जानता हूँ,
तुम इससे नफरत करोगे।

--अरनेस्तो कार्देनाल

सरकार बहादुर कोरोना आपके लिए अवसर लाया है!

यह बात विवादों से परे है कि अब तक इस कोरोना महामारी का सबसे अधिक फायदा सरकारों ने उठाया है, दूसरे स्थान पर पूँजीपति/उद्योगपति हैं। खुद प्रधानमन्त्री मोदी जी ने स्वीकार किया कि यह हमारे लिए एक अवसर है। प्रवासी मजदूर पैदल चलते-चलते भूख, प्यास और थकावट के चलते मर रहे हैं। कुछ ट्रेनों से कटकर मर गये। कुछ कुएँ में कूदकर, तो कुछ बस और ट्रकों से कुचलकर मारे गये। लेकिन कोरोना सरकार बहादुर के लिए ऐसा शानदार अवसर लाया है, जिसका दर्शन सरकार ने पहले कभी नहीं किया था।

बात आगे बढ़ाने से पहले कोरोना के ताजा मामले का विश्लेषण देखिये। 5 जून तक कोरोना के 227 हजार मामले सामने आ चुके थे, लेकिन इससे क्या नतीजा निकलता है? अगर देश में मात्र 227 हजार मामले ही होते, जिनके बारे में पता चल चुका है और जिन्हें इलाज के लिए क्वेरेनटाइन किया जा चुका है। तो डरने की कोई बात नहीं होती और इसके बाद नये मामले मिलने बन्द हो जाते। लेकिन। इससे अधिक संख्या में वे मामले हैं, जिनका पता नहीं चल पाया है, यह बात दावे से कही जा सकती है, क्योंकि ऐसे लोग ही चुपचाप बाहर लोगों को संक्रमित कर रहे हैं और मरीजों की संख्या न केवल बढ़ रही है बल्कि उनके बढ़ने की रफ्तार भी तेज हो रही है।

यह हम सबके लिए चिंता की बात है और सरकार के लिए अवसर की बात। सरकार को यह अवसर अपने आप नहीं मिल गया, बल्कि उसने इसके लिए काफी प्रयास किया। जैसे--

--सही कोरोना जाँच के बिना विदेश से लोगों को आने दिया गया।

--समय रहते पीपीई किट और मास्क आदि सुरक्षा के उपायों की व्यवस्था नहीं की गयी।

--ताली, थाली, दिया, मोबाइल करके अंधविश्वास फैलाया गया और लोगों का ध्यान भटकाया गया।

--कोरोना के खिलाफ देशव्यापी टास्क फॉर्स की कोई व्यवस्था नहीं की गयी।

--वैज्ञनिकों के कार्यदल की सलाह नहीं ली गयी/नहीं मानी गयी।

--करोड़ों की संख्या वाले प्रवासी मजदूरों को इधर-उधर भटकने दिया गया।

इन सब बेशकीमती प्रयासों से सरकार को सकारात्मक नतीजे मिले। 25 मार्च यानी लॉकडाउन की शुरुआत में जो मामले सैकड़ों में थे, दो महीने बाद अब वे लाख में पहुँच गये। सरकार की अनन्त सफलता पर बधाई।

मुझे नहीं पता कि सरकार ने यह सफलता बकायदा योजना बनाकर हासिल की या यह उसके निकम्मेपन की फसल है। फिलहाल, अब काटने के लिए वह फसल तैयार हो गयी है, जिसका बीज उन्होंने पहले लॉकडाउन के समय बोया था। सरकार को मिलने वाले चार फायदे यानी 4 एल इस तरह हैं-- लैंड, लेबर, लिक्विडिटी, एंड लॉ। इसे खुद सरकार बहादुर ने स्वीकार किया है। अब इसका मतलब भी समझ लेते हैं।

लैंड-- किसानों से जमीन का अधिग्रहण करके सहोदरों को देने में मदद मिलेगी।

लेबर-- मजदूरों के अधिकारों को कम करके उनसे अधिक से अधिक काम कराके तिजोरियाँ भरी जायेंगी।

लिक्विडिटी-- रूपये-पैसे रसूखदार लोगों की झोली में बहते हुए आ जायेंगे।

लॉ-- ऐसे कानून पास कराने में मदद मिलेगी जो जनविरोधी होगा और जनता का शोषण और दमन बढ़ा देगा।

सरकार ये सारे अवसर भुना पाने में सफल होगी, क्योंकि लॉकडाउन के चलते 'पुलिस राज' कायम किया जा चुका है, विरोध कर नहीं सकते। इसलिए सरकारें मनमाना काम करती रहेंगी। आगे भी लॉकडाउन जारी रहने की सम्भावना है, बशर्ते, जनता बगावत न कर दे।

लेकिन उसका भी उपाय किया जा चुका है। लॉकडाउन को हल्का किया जाएगा, लेकिन धारा 144 कायम रहेगी। यानी आप विरोध प्रदर्शन के लिए संगठित नहीं हो सकते।

आप भुखमरी के शिकार न हों, इसलिए पुलिस वालों से ऑफिस/काम पर जाने की गिड़गिड़ाते हुए अनुमति माँगेंगे। रहमदिल पुलिस वाले आपको जाने देंगे। कभी-कभी दिखावे के लिए दो-चार डंडे फटकार देंगे। इस तरह लॉकडाउन का पालन भी होगा और जरूरत के लगभग सभी कारोबार चालू हो जाएगा। गैर-जरूरी कारोबार से जुड़े लोगों को आराम से भूखों मरने दिया जाएगा, उसी तरह जैसे प्रवासी मजदूरों को सड़कों पर भटकने और मरने के लिए छोड़ दिया गया।

मजदूरों-कर्मचारियों के हितों पर हमले के खिलाफ नये संघर्षों के लिए कमर कस लें!

आप बिलकुल चिन्ता न करें। आपकी यह नौकरी गयी है, तो इससे बेहतर नौकरी आपका इन्तजार कर रही होगी। बस आउटर पर खड़ी ट्रेन की तरह उसे भी सिग्नल मिलने की देरी है। फिर तो आपकी पौ बारह हो जाएगी। पाँचों उंगलियाँ घी में और सिर कड़ाही में होगा। ऐसे ही मैसेज आपको मिल रहे होंगे, जो आपके दिल की धड़कन कभी बढ़ाते हैं तो कभी सुकून पहुँचाते हैं। कुछ दिन पहले जब सेलरी आधी मिली थी, तब भी आप सोच रहे थे कि चलो कोई बात नहीं, जल्दी ही अच्छे दिन आएँगे।

कोरोना संकट को सरकार अवसर के रूप में देख रही है, जबकि कुछ साथी इसे "कॉन्सिपिरासी थिअरी" के रूप में समझ रहे हैं। उनका मानना है कि पहले से संकटग्रस्त बुर्जुआ अर्थव्यवस्था के पास आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं था। जनविरोधी सरकारों ने दुनिया भर में एक हौवा खड़ा किया। इससे उन्हें लॉकडाउन करने और मजदूरों पर हमला करने का वैध बहाना मिल गया। उनकी इस थिअरी को इस बात से बल मिलता है कि सरकारों ने बड़े पैमाने पर मजदूरों और कर्मचारियों के अधिकारों में इतिहास की सबसे बड़ी कटौती करनी शुरू कर दी है। सभी श्रम कानूनों को खत्म करके, 12 घण्टे का कार्य दिवस बनाकर (जिसे अपनी चालबाजी के तहत केवल स्थगित किया गया है और आने वाले समय में फिर से लागू कर दिया जाएगा।) आज हमें पूँजी के हमले के सामने खुला छोड़ दिया गया है।

इस "कॉन्सिपिरासी थिअरी" का बाकी हिस्सा बिलकुल सही लग सकता है, लेकिन यह कहना कि मजदूर वर्ग के अधिकारों में कटौती करने के लिए वायरस को बनाया गया और सरकारों ने अपने-अपने देश में इसे फैल जाने दिया, थिअरी की यह बात यथार्थ की अतिरंजना है और सच से परे है। अभी इस बात के पुख्ता सबूत नहीं मिले हैं कि कोरोना वायरस को लैब में बनाया गया है।

इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मजदूर वर्ग और नौकरी पेशा वर्ग के बहुसंख्यक लोगों के सामने जीवन-मरण का सवाल खड़ा हो गया है। निजी कम्पनी, स्कूल, कॉलेज और अन्य संस्थानों ने लोगों की छँटनी शुरू कर दी है। वे अपने यहाँ वर्क फोर्स को आधा या तिहाई करने पर आमादा हैं। इसके साथ ही 'ऑनलाइन वर्क प्रोग्राम' बनाये जा रहे हैं, जिसमें पहले से भी कम कर्मचारियों की जरूरत रह जायेगी। इन सबसे मालिकों की बल्ले-बल्ले हो रही है।

भारत की केन्द्र और राज्य सरकारों ने मालिकों और पूँजीपतियों के फायदे के लिए बड़े पैमाने पर मजदूर-कर्मचारियों के हितों पर हमला शुरू कर दिया है। उसकी एक बानगी देखिए--

यूपी-- श्रम कानूनों को स्थगित कर दिया गया है। न तो यूनियन बनाने, न हड़ताल करने और न ही मजदूरी, बोनस या इंसेंटिव बढ़ाने की मजदूर माँग कर सकते हैं।

राजस्थान-- अब 8 घंटे के बजाय 12 घंटे काम यानी हर दिन 4 घंटे अधिक काम कराया जाएगा और इसके खिलाफ कोई अपील नहीं कर सकते।

मध्य प्रदेश-- 40 मजदूरों तक वाली फैक्ट्रियों में मजदूरों की हालत गुलामों से भी बदतर हो जाएगी।

मध्य प्रदेश, गुजरात, यूपी, राजस्थान और अन्य प्रदेशों में उद्योगपतियों को खुली छूट देनेवाले इसी तरह के काले कानून लागू हो गये हैं। सरकार द्वारा लगाये गये लॉकडाउन का असली मकसद अब खुलकर सामने आ गया है। राज्य सरकारों ने अपने यहाँ मजदूरों के खिलाफ अंग्रेजी राज से भी अधिक काले कानून लागू कर दिये हैं। इन सबसे से मजदूर और कर्मचारी गुलामी, बेरोजगारी और भुखमरी की चक्की में पिस जायेंगे और बेमौत मारे जायेंगे। आप अपने इर्द-गिर्द उन चेहरों को पहचान सकते हैं, मौत जिनकी तरफ धीमे कदमों से पहुँच रही है। इनमें खुद आप और हम भी हो सकते हैं।

यह हम पर है कि हम धीमी मौत को गले लगा लें तथा मीठे व धीमे जहर को खुद पर हावी हो जाने दें या संघर्षों का दामन थामकर एक नया इतिहास रच दें। आप भाइयों से अपील है--

न हताश हों, न निराश हों!

नये संघर्षों के लिए कमर कस लें!

आगामी संघर्षों के तूफान में खुद को झोंक दें!

मजबूरी, गुलामी और अन्याय के काले धब्बों को मिटा दें!

वित्त मंत्री द्वारा घोषित पैकेज में वीजीएफ क्या है?

वित्त मंत्री द्वारा घोषित पैकेज में इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास के लिए निजी पूँजीपतियों को वाएबिलिटी गैप फंडिंग (वीजीएफ) देने की बात प्रमुख है। इसे समझना चाहिए। उदाहरण के लिए अम्बानी की मुम्बई मेट्रो को लेते हैं जिसकी कुल लागत 2356 करोड़ बतायी गयी थी। इसमें से अम्बानी ने मात्र 1896 करोड़ लगाये, शेष 660 करोड़ उसे केन्द्र-राज्य सरकार ने दिये इसी वीजीएफ के नाम पर जबकि इसके बदले सरकार को कम्पनी में एक शेयर तक न मिला। वैसे तो उससे भी अधिक कुछ होता नहीं। जिसका कम्पनी पर नियंत्रण होता है असली कमाई वही करता है। पर खैर, हमारा मुद्दा अभी वीजीएफ है।

इसके पीछे तर्क दिया जाता है कि पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप में जो पूँजीपति पूँजी लगायेगा उसे कम से कम एक निश्चित दर पर मुनाफा मिलना चाहिए, नहीं तो पूँजीपति निवेश नहीं करेंगे और 'विकास' ठहर जाएगा। हाल का मुझे ठीक मालूम नहीं, पर बैंक में काम के दौरान जो प्रोजेक्ट रिपोर्ट देखी थी, वह 16 प्रतिशत न्यूनतम मुनाफा दर के आधार पर थी।

इसके बाद सम्भावित आय का हिसाब लगाकर मुनाफा देखा जाता है। उदाहरण-- प्रोजेक्ट की कुल लागत 1300 रुपये है और उस पर संचालन खर्च के बाद सालाना नेट आय 160 रुपये होगी तो 16 प्रतिशत लाभ के लिए पूँजी निवेश 1000 रुपये से अधिक नहीं हो सकता। अतः सरकार पूँजीपति को 16 प्रतिशत लाभ सुनिश्चित करने के लिए 1300 रुपये कुल लागत में से 300 रुपये देती है, ताकि निजी पूँजीपति 1000 रुपये निवेश करके ही 1300 रुपये पूँजी का मालिक बन जाये!

मुख्य बात के पहले यहाँ एक मुद्दा तो लागत को अधिक और सम्भावित आय को कम दिखाकर की जाने वाली खुली बेईमानी का है जो भारतीय पूँजीवाद का सर्वज्ञात रहस्य है। इसके जरिये अक्सर बैंक लोन और वीजीएफ मिलकर ही कुल लागत से अधिक होता है और पूँजीपति अपनी ओर से एक धेला भी लगाना तो दूर प्रोजेक्ट पूरा होने के पहले ही कुछ मुनाफा कमा लेता है। इसी वजह से कई पूँजीपति प्रोजेक्ट अधूरे छोड़ने की प्रवृत्ति के लिए 'मशहूर' हैं। दूसरा बेईमानी वाला तरीका है जो मुम्बई मेट्रो में अम्बानी ने अपनाया-- आमदनी /लाभ की गणना 6-15 रुपये का टिकट मानकर की गयी थी पर चालू होते ही उसने भाड़ा 10-40 रुपये कर दिया। संविधान और जनतंत्र के चौकीदार सुप्रीम कोर्ट ने भी इसमें बाधा देने को अम्बानी की आजादी का हनन माना!

लेकिन मुख्य बात यह है कि सभी को 'प्रतिभा, परिश्रम व जोखिम से अमीर बनने का समान मौका' देने वाली पूँजीवादी व्यवस्था असल में पूँजीपतियों के लिए न्यूनतम लाभ सुनिश्चित करने हेतु तो सार्वजनिक धन को उपहारस्वरूप निजी मालिकाने में सौंप देती है, जबकि श्रमिकों के लिए जीने लायक न्यूनतम मजदूरी, काम के घण्टे, सुरक्षा उपाय, शौचालय जैसी न्यूनतम मानवीय सुविधायें उपलब्ध कराने को मालिकों-मजदूरों के मध्य 'स्वतंत्र काण्ट्रैक्ट के समान जनवादी-संवैधानिक अधिकार' का उल्लंघन माना जाता है। सबकी न्यूनतम आय के लिए रोजगार गारण्टी या बेरोजगारी भत्ते की व्यवस्था करना तो दूर की बात है, न्यूनतम मजदूरी के आधे पर ही ग्रामीण मजदूरों को 100 दिन काम की गारण्टी की जो आधी-अधूरी योजना है, उसे भी पैसे की बरबादी बताया जाता है। सुप्रीम कोर्ट तो मजदूरी पाने के अधिकार से ही इनकार कर देता है और सबके लिए भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य पर खर्च को 'टैक्सपेयर' के पैसे की बरबादी व खैरात करार दिया जाता है।

-- मुकेश असीम

जब हम नौजवान थे, तभी वे हमसे कहते थे कि कोई विकल्प नहीं है, कि दुनिया समतल है और एक ऊपर उठती लहर सभी नावों को उछाल देगी। लेकिन ऊपर उठती लहर तो कर्ज का सैलाब था और जीवन-रक्षक नावों को हटा कर उनकी जगह काफी अरसा पहले से बाजार का हृदयहीन तर्क रखा जाने लगा था।

जब हम निराशा के इस सागर की ओर निगाह गड़ाते हैं, तो असली विकल्प के लिए हमारी एकमात्र उम्मीद बस अन्तहीन संघर्ष ही बचती है। जब यह व्यवस्था आम जनता को क्रन्तिकारी होने की ओर धकेल रही हो, तो आप को पता है कि आप इतिहास के अन्त के निकट नहीं हैं-- उसके उस सिरे पर हैं जहाँ से उसे आगे जाना है।

-- जेरोमे रूस (21 वीं सदी में क्रान्ति की आवश्यकता और अर्थ)

कोविड-19 और कॉरपोरेट कुटिलता

कोविड-19 वायरस का जन्म कैसे व कहाँ हुआ, यह एक अनसुलझा रहस्य है। इसको लेकर अमरीका और चीन के बीच आरोप-प्रत्यारोप का सिलसिला विगत तीन माह से अनथक जारी है। आए दिन गुत्थी सुलझने के बारे में बिना सिर-पैर के दावे किये जा रहे हैं। खुद अमरीकी राष्ट्रपति ट्रम्प ऐसी हास्यास्पद बातें करने में सबसे आगे हैं, यद्यपि अमरीकी जनता ने उनके कहे को गम्भीरतापूर्वक लेना बन्द कर दिया है। रिपब्लिकन पार्टी के अनेक नेता भी अब अपने नेता की खुलकर आलोचना करने लगे हैं।

आम धारणा बन रही है कि डोनाल्ड ट्रम्प अपनी असफलताओं पर पर्दा डालने के लिए चीन पर निशाना साध रहे हैं ताकि इस वर्ष होने वाले चुनावों में वे जीत हासिल कर सकें। इन दो देशों के दरम्यान जारी परस्पर दोषारोपण का एक और पहलू है। अमरीका विश्व की पहली महाशक्ति है एवं चीन उसे अपदस्थ कर खुद पहले स्थान पर आने की हर सम्भव उपाय कर रहा है। पारम्परिक व आण्विक शस्त्रास्त्रों के अलावा जैविक-रासायनिक अस्त्रों के अनुसंधान में भी दोनों महाशक्तियाँ लगी हुई हैं। साथ-साथ वाणिज्यिक प्रतिस्पर्धा भी चल रही है। द्वंद्व के इस कुहासे में जानना कठिन है कि सत्य क्या है।

भारत की जनता भी अपने पूर्व अनुभव के कारण चीन पर भरोसा नहीं करती। दोनों देशों के बीच साल दर साल बढ़ते हुए व्यापार के बावजूद चीन के इरादों पर हमें शंका बनी रहती है। इसीलिए नॉवल कोरोना वायरस की उत्पत्ति और प्रसार के लिए चीन को अपराधी मानने पर सामान्य जन को सहज ही विश्वास हो जाता है। लेकिन भारत में कोरोना प्रकोप के दौरान जो स्थितियाँ बनीं, उन्हें देखते हुए तो शंका की सुई कहीं और जाकर ठहरती है। सन्देह होता है कि यह कहीं बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेट तंत्र का रचा षड़यंत्र तो नहीं है! सोच कर देखें कि इस वैश्विक महामारी के फैलने के बाद सामान्य जनजीवन स्थगित सा हो गया है। सारी जनतांत्रिक संस्थाएँ व परम्पराएँ कोल्ड स्टोरेज में डाल दी गयी हैं। जान है तो जहान है के भय से बचाव के लिए हर देश में सारे नागरिक अधिकार एक सर्वोच्च सत्ता को सौंप दिये गये हैं या उसने अपने आप ले लिये हैं। कहना न होगा कि ऐसा वातावरण पूँजीवादी ताकतों को बहुत रास आता है। यह उस एकल खिड़की प्रणाली यानी सिंगल विंडो सिस्टम का उच्चतम शिखर है जिसे अपने देश में निचले स्तर पर लागू करने के अनेक प्रयोग हुए हैं। अनेक कथित उदारवादी नौकरशाहों की समझ में आम जनता के कष्ट दूर करने के लिए इससे बेहतर और कोई उपाय नहीं है।

खैर, इसका कोई प्रमाण फिलहाल उपलब्ध नहीं है कि भारत में कोरोना वायरस के फैलने के पीछे बहुराष्ट्रीय निगमों या भारतीय कॉरपोरेट प्रतिष्ठानों का हाथ है, लेकिन यह तो आईने की मानिन्द साफ है कि देशी कम्पनियों ने सत्ता तंत्र के साथ मिलकर एक अभूतपूर्व विश्वव्यापी और देशव्यापी संकट का दुरुपयोग अपनी निर्लज्ज स्वार्थपूर्ति के लिए करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है। यह कहते हुए हम बड़ी भूल करते हैं कि चौबीस मार्च को लॉकडाउन की घोषणा करने के पहले प्रधानमंत्री को राज्यों को विश्वास में लेना चाहिए था और अप्रवासी श्रमिकों व अन्यों को अपने घर लौट जाने के लिए तीन-चार दिन का समय देना चाहिए था। क्या प्रधानमंत्री और उनके विश्वस्त मंडल में शामिल प्रबुद्ध जनों को यह अनुमान नहीं था कि मात्र चार घण्टे के नोटिस पर इतना बड़ा कदम उठाने के परिणाम क्या होंगे? विमुद्रीकरण यानी नोटबन्दी के समय भी तो प्रधानमंत्री की इसी आधार पर आलोचना हुई थी, लेकिन उससे उनकी सेहत पर क्या फर्क पड़ा? इस चार साल पहले के घटनाक्रम का संज्ञान लेते हुए वर्तमान का विश्लेषण करने से सही नतीजे पर पहुँचा जा सकेगा।

मैं यह मानता हूँ कि मोदी सरकार को एकाएक लॉकडाउन करने के सम्भावित असर का सही-सही अनुमान था। सरकार जानती थी कि तमाम आर्थिक गतिविधियाँ बन्द हो जाने के बाद देश के विभिन्न प्रदेशों में दूर-दूर से आए अप्रवासी कामगारों की उनके कार्यस्थल पर कोई उपयोगिता नहीं रह जाएगी, नियोक्ताओं की रुचि उनकी सेवाएँ जारी रखने में रंच मात्र भी नहीं रहेगी, उनके भरण-पोषण का जिम्मा उठाना भी अधिकतर की क्षमता के बाहर होगा और बेरोजगार हो गये श्रमिक इस अनिश्चितता के माहौल में पराई जगह पर लाचार व खाली बैठे रहने के बजाय अपने गाँव लौटना चाहेंगे। इस सोमवार को मोदी जी ने खुद ही माना कि घर लौटने की इच्छा रखना तो मनुष्य मात्र का स्वभाव है। इस सत्य को जानते हुए भी श्रमिकों की घर वापसी के लिए बार-बार गुहार लगाने के बावजूद यातायात व्यवस्था न करने या उसमें देरी करने के पीछे क्या मकसद था? जबकि दूसरी ओर विदेशों में फंसे भारतीय नागरिकों व कोचिंग ले रहे युवजनों की घर वापसी के लिए केन्द्र सहित अनेक राज्यों ने भी माकूल प्रबंध करने में कोई देरी नहीं की।

इस परिप्रेक्ष्य में और इसके बाद के कतिपय निर्णयों पर गौर करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचने को बाध्य होते हैं कि सर्वशक्तिमान पूँजीहितैषी सत्ता ने वर्ग विभाजित इस देश की मेहनतकश जनता को उसकी 'औकात' बताने का एक अनुपम अवसर कोरोना महामारी के माध्यम से पा लिया है। उसे पता था कि धीरे-धीरे कर मजदूरों और कामगारों की संघर्ष क्षमता पूरी तरह खत्म हो गयी है। उनमें पहले जैसी एकजुटता नहीं है। ईश्वर और भाग्य पर उनका भरोसा पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। आज की विषम परिस्थितियों में वे अपने आप को बचाने के उपाय सोचेंगे, बजाय लड़ने के। लड़ें भी तो किसके सहारे और कौन सी उम्मीद लेकर? और सचमुच यही हुआ। सरकार बहादुर ने पूँजी निवेशकों को सुनहरा मौका दे दिया कि वे अपनी शर्तों पर 'देश के पुनर्निर्माण' में भागीदारी कर सकें। वैसे तो उनके हक में वातावरण

निर्माण आज से चार दशक पहले प्रारम्भ हो चुका था, नब्बे के दशक में नींव पुख्ता हो गयी थी, लेकिन अगर कहीं तिनके सी ओट भी थी तो वह पूरी तरह हट चुकी है। इसके आगे चलकर क्या परिणाम हो सकते हैं उसकी चिंता किसी को नहीं है। शायद इसलिए कि कुछ एक अपवादों को छोड़कर लगभग हर देश इसी रास्ते पर चल रहा है।

विडम्बना यह है कि समाज में न्याय और समता के पक्ष में जिनसे खड़े होने की अपेक्षा की जाती है वे दृश्य से ओझल हैं। कुछ एक चैनलों और अखबारों में मर्मस्पर्शी तस्वीरें दिखा देने से कुछ होना जाना नहीं है। उनको देखकर हम कुछ देर के लिए विचलित हो जाते हैं, चार आँसू बहा लेते हैं और फिर हमारी भावनाओं का शमन हो जाता है। हमारी वैचारिक और शाब्दिक संवेदना तो उनके साथ होती है लेकिन यथार्थ के धरातल पर हम उनसे उतने ही दूर होते हैं जितने बिहार से तमिलनाडु या छत्तीसगढ़ से काश्मीर। यह मेरा अज्ञान हो सकता है लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि दिल्ली से या और स्थानों से जब श्रमिक घर लौटने लगे तो उनसे मिलने, उन्हें हिम्मत बंधाने, उनकी मदद करने कौन पहुँचे? किसी-किसी पत्रकार ने उनकी मदद की, कई उदार हृदय नागरिक भी उनके पास गये, गुरुद्वारों ने लंगर खोले, मस्जिदों ने ठहरने की जगह दी, कहीं मंदिरों ने भी उदारता का परिचय दिया, लेकिन इनके अलावा और कौन गया? मैं सोचता हूँ आज गोदा ताई याने गोदावरी परूलेकर होतीं तो क्या करतीं। श्रीपाद अमृत डांगे, एस एम बनर्जी, मधु लिमये आज क्या कर रहे होते? मुझे आज अपने छत्तीसगढ़ के प्रकाश राय, सुधीर दादा, जीवनलाल साव और रामसहाय तिवारी भी बहुत याद आ रहे हैं।

-- ललित सुरजन

(देशबंधु में 14 मई 2020 को प्रकाशित)

कोरोना महामारी से नहीं, स्वास्थ्य कर्मचारियों से लड़ रही है सरकार

फरवरी के आते-आते यूरोप में लाखों की संख्या में लोग कोरोना से संक्रमित हो गये। इसके बाद भी भारत सरकार ने महामारी को गम्भीरता से नहीं लिया। नतीजा यह हुआ कि अब तक इससे 2 लाख से ज्यादा लोग संक्रमित हो चुके हैं और पांच हजार से अधिक लोग मारे जा चुके हैं। इसके बावजूद पहले से खस्ता हाल स्वास्थ्य सुविधाओं को बेहतर नहीं किया गया। इतना ही नहीं, जिसने भी सरकार की कमियों पर सवाल उठाया, उसके खिलाफ दमनात्मक उपाय आजमाए गये। जैसे-- **त्रिपुरा राज्य में जब नर्सों ने स्वास्थ्य विभाग की खामियों को उजागर किया और सरकार को पत्र लिखकर पीपीई किट, टेस्टिंग किट, सेनेटाईजर, मास्क, ग्लव्स आदि के बारे में सूचित किया तो वहाँ की सरकार ने उन नर्सों पर ही मुकदमा दर्ज करने के आदेश दे दिये। दूसरे घटनाक्रम में जम्मू-कश्मीर प्रशासन ने मेडिकल कर्मचारियों के लिये एक सर्कुलर जारी कर कहा कि अगर कोई भी कर्मचारी या डॉक्टर स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी को प्रिन्ट मीडिया या सोशल मीडिया में उजागर करेगा तो उसे 6 महीने की जेल होगी या उस पर आर्थिक जुर्माना लगाया जायेगा।**

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के आकड़ों के अनुसार 11,600 भारतीयों पर एक डॉक्टर उपलब्ध है और 1826 भारतीयों के लिए एक बेड उपलब्ध है। 84,000 लोगों पर एक आइसोलेशन वार्ड या कमरा उपलब्ध है। दिल्ली स्टेट हॉस्पिटल नर्सेस यूनियन ने सरकार को सुविधाओं के अभाव के कारण काम न करने की चेतावनी दी। उन्होंने बताया कि हम कई दिनों से अपने घरों पर नहीं जा सकीं है इसलिए हमें अस्पताल में रहना पड़ रहा है। एक कमरे में ही सात नर्सों को एकसाथ रहने पर मजबूर हैं। जरूरी सुरक्षा उपकरणों की भारी कमी है।

बिहार में 83 जूनियर डॉक्टरों ने कॉलेज प्रबन्धन, बिहार स्वास्थ्य विभाग, मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा है जिसमें उन्होंने पीपीई किट और एन95 मास्क के न होने के बारे में लिखा है। शिकायत करने पर कॉलेज प्रबन्धन ने जूनियर डॉक्टरों को धमकाते हुए कहा है कि आपकी डिग्री हमारे पास है। मतलब आप डॉक्टर बनोगे या नहीं ये प्रबन्धन तय करेगा। ऐसे ही हालत मध्यप्रदेश की है। वहाँ की खबरों पर ध्यान दें तो स्वास्थ्य उपकरणों की कमी के चलते ही वहाँ के मेडिकल विभाग के कर्मचारियों से लेकर उच्च अधिकारी भी कोरोना से संक्रमित हो गये हैं।

-- ललित कुमार

लॉकडाउन और कोरोना काल में खुदकुशी बनी नयी महामारी

-- अमरीक सिंह

विश्वव्यापी कोरोना वायरस की महामारी के दिये लॉकडाउन से बद से बदतर हुए हालात अब खुदकुशी की बीमारी फैला रहे हैं। पंजाब में 26 मई को आत्महत्या के तीन ऐसे मामले पुलिस में दर्ज हुए जो सीधे तौर पर लॉकडाउन और उससे वाबस्ता बेरोजगारी तथा आर्थिक तंगहाली की नागवार देन हैं। दो आत्महत्याएँ महानगर लुधियाना में हुईं तो एक प्रवासी मजदूर ने पटियाला में खुद अपनी जान ले ली। चार अन्य जगहों से आत्महत्या की कोशिश की खबरें हैं। संकेत साफ हैं कि खुदकुशी की बीमारी बदस्तूर फैल रही है। पंजाब में इससे पहले भी लॉकडाउन में बेरोजगार और आर्थिक बदहाली में आए बीस के करीब लोगों ने खुदकुशी की है और पचास से ज्यादा ने कोशिश। वे मामले अलहदा हैं जो पुलिस में दर्ज नहीं हुए।

27 मई को महानगर लुधियाना के एक निजी बैंक के गोल्ड लोन विभाग में काम करने वाले 35 वर्षीय रवीश कुमार ने नौकरी जाने पर अपनी जान दे दी। पहले उसने बैंक के बाहर बैठ कर बाकायदा अपनी वीडियो बनाई और देर शाम नहर में कूदकर आत्महत्या कर ली। वीडियो में उसने साफ तौर पर कहा कि लॉकडाउन के दौरान बैंक ने उसे नौकरी से जवाब दे दिया था। उसे टर्मिनेशन लेटर भी नहीं दिया गया और न बकाया तनख्वाह। उसने अपने घर के हालात का वास्ता देकर पैसे माँगे लेकिन प्रबंधन ने एक नहीं सुनी।

वीडियो में रवीश ने साफ तौर पर कहा कि वह इस सबसे परेशान होकर आत्महत्या करने जा रहा है। इसी वीडियो में रवीश ने अपने दोस्तों और सगे सम्बन्धियों से बूढ़े माता पिता का ध्यान रखने के लिए कहा और उन्हें राशन मुहैया कराने की भी बात की। देर शाम बस्ती जोधेवाल के न्यू सुभाष नगर के रहने वाले रवीश का शव एक नहर से बरामद हुआ।

रवीश की मां शशि के अनुसार उसने उन्हें भी फोन पर कहा था कि इन बदतर हालात का वह सामना नहीं कर पा रहा और आत्महत्या कर रहा है। इसके बाद परिजन उसे ढूंढने निकले तो नहर किनारे उसका मोटरसाइकिल और अन्य सामान मिला और बाद में लाश। साहनेवाल के एसएचओ इन्द्रजीत सिंह पुष्टि करते हैं कि लॉकडाउन के दौरान पैदा हुए हालात के चलते रवीश आर्थिक बदहाली में था और उसने इसीलिए आत्महत्या की। दो बैंक अधिकारियों के खिलाफ आत्महत्या के लिए मजबूर करने के लिए मामला दर्ज किया गया है।

26 मई को तड़के लॉकडाउन की वजह से काम-धंधा चौपट होने से आजिज लुधियाना के महासिंह नगर के रहने वाले 52 वर्षीय श्यामलाल ने घर में फन्दा लगा लिया। मृतक के परिजनों के मुताबिक कोरोना वायरस के बाद लागू लॉकडाउन उन्हें दो जून की रोटी के लिए भी मोहताज कर रहा था और मुखिया श्यामलाल से घरवालों की भूख बर्दाश्त से बाहर हो रही थी। इसका दुखद नतीजा उनके फन्दे पर लटक जाने से मिला।

इसी दिन पटियाला की घन्नौर अनाज मंडी में एक प्रवासी मजदूर ने फन्दा लगाकर जान दी। 19 साल का गोविन्द प्रसाद इन दिनों बेरोजगार था। राजपुरा में मजदूरी करते गोविन्द के पिता राज बली ने बताया कि इन दिनों उनका बेटा लॉकडाउन से हासिल आर्थिक बदहाली के चलते जबरदस्त मानसिक पीड़ा का शिकार था। 26 मई को घन्नौर से फोन आया कि उनके बेटे ने फन्दा लगाकर खुदकुशी कर ली। जब वह अपने भतीजे को साथ लेकर वहाँ पहुँचे तो देखा कि गले में तार डालकर लड़के ने फन्दा लगा रखा था। उस कमरे में, जहाँ वह रहता था। परिवार ने घर वापसी के लिए पंजीकरण कराया हुआ था।

फरीदकोट, बठिंडा, लुधियाना और तरनतारन में 26 मई को 4 लोगों ने खुदकुशी की कोशिश की। इनमें एक महिला भी शामिल है। इस आत्मघाती कदम उठाने की सबकी वजह लॉकडाउन से मिली घोर आर्थिक बदहाली है। हालात किस तरफ जा रहे हैं, बखूबी समझा जा सकता है।

(जनचौक से साभार, पंजाब के वरिष्ठ पत्रकार अमरीक सिंह की रिपोर्ट।)

राज कहाँ तक राज रहेगा मंजर-ए-आम पे आएगा
जी का दाग उजागर हो कर सूरज को शरमाएगा
शहरों को वीरान करेगा अपनी आँच की तेजी से
वीरानों में मस्त अलबेले वहशी फूल खिलाएगा

-- इब्ने इंशा

भगवानपुर खेड़ा, मजदूरों की वह बस्ती जहाँ न रवि पहुँचता है, न कवि!

-- अमित मितवा

(कोरोना महामारी और लॉकडाउन की सबसे बुरी मार मजदूर वर्ग पर पड़ रही है। जमीनी हालात का पता लगाने के लिए और राहत देने के लिए विकल्प मंच, शाहदरा के सदस्य कई किराये के मकानों में गये, जहाँ बड़ी संख्या में मजदूर रहते हैं। वहाँ जिस तरह के हालात देखने को मिले, वह कल्पना से परे है। यहाँ उसकी ग्राउण्ड रिपोर्टिंग दी जा रही है। हमारी आपसे गुजारिश है कि हमें अपनी प्रतिक्रिया से जरुर अवगत कराएँ।)

गरीबी, कंगाली, जहालत भरी जिन्दगी जीते भिखारी तो देखे थे, मगर मजदूर जो दुनिया का सृजनकर्ता है, जिसके दम पर सारी फैक्ट्रियाँ, नगर निगम के काम, सार्वजनिक साफ-सफाई, हॉस्पिटल के तमाम काम चलते हैं, उसकी ऐसी बुरी दुर्दशा हो रही होगी, इसकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। मजदूरों की हालत को जब नजदीक से जाकर देखा, तो हमारी साँसे हलक में ही अटक गयीं।

तीन फुट चौड़ी एक गली, जिस गली में सूरज की रोशनी भी नहीं पहुँचती। उस गली में भरी दोपहरी में अंधेरा रहता है। गली में घुसते ही अजीब सी बदबू सनसनाते हुए नाक में घुस गयी और उसने हमारे जेहन को जकड़ लिया। ज्यादातर लोग घर के बाहर बैठे मिल गये। आते-जाते लोगो को देखने के अलावा शायद अब उनके पास कोई काम नहीं है, जिससे उनका वक्त भी कटे।

जब हम एक चार मंजिला मकान में घुसे तो बाहर से लेकर अन्दर तक पूरे मकान में सीलन थी और दीवारों से पपड़ियाँ उखड़ रही थीं। शायद सीलन और पपड़ियाँ वहाँ रहने वालों का ध्यान बामुश्किल ही खींच पाती हो।

अब हम एक ऐसे जीने से पहली मंजिल पर पहुँचे, जिसकी चौड़ाई इतनी कम थी कि बामुश्किल एक आदमी जा सकता है, दूसरी तरफ के व्यक्ति को रुककर इन्तजार करना पड़ता है। पहली मंजिल पर पांच कमरे हैं, जिनमें से सभी की लम्बाई और चौड़ाई लगभग 6 गुना 6 फुट की होगी। पहले कमरे में एक औरत मिली जो तीन बच्चों और पति के साथ रहती है। पति क्या करता है? यह पूछने पर उसने जवाब दिया कि ठेला चलाते हैं। एक हफ्ते से काम पर नहीं गये। अब पता नहीं कब काम मिलेगा? हमारे घर में आज शाम के लिए ही आटा बचा हुआ है। आगे भगवान ही मालिक है। क्या होगा? यह कहते हुए उसके चेहरे पर अथाह पीड़ा थी और चिन्ता की लकीरें उसकी झुर्रियों में बदल गयीं थीं।

हमने घर के अन्दर ताक-झांक की। चार डब्बे रसोई होने की कोशिश कर रहे थे, जो खाली हो गये थे। जमीन पर चटाई भी नहीं थी। बेड की बात कौन करे? पूरा फर्श गन्दगी से काला हो गया था। घर में कोई खिड़की या रोशनदान भी नहीं था। था तो केवल एक बल्ब, जो बहुत बुझी-बुझी रोशनी फैलाने की कोशिश कर रहा था। अब आगे कुछ पूछने की हमारी हिम्मत नहीं हुई। बस हमने इतना कहा कि शाम तक हम दोबारा आते हैं आपके लिए कुछ राशन लेकर।

अगले कमरे के लिए एक ही कदम बढ़ाना पड़ा। इस कमरे में 6 लोग रहते हैं। आप लोग क्या काम करते हो? ऐसा पूछने पर उन्होंने बताया कि चैन कुप्पी का काम करते हैं। चैन कुप्पी का क्या काम होता है? यह हमारी समझ के बाहर था। उन्होंने बताया कि शाहदरा फलाईओवर के नीचे हम रोज जाते है। वहाँ से हमको 400 रुपये दिहाड़ी पर कोई भी ठेकेदार ले जाता है। दिल्ली में किसी भी फैक्ट्री में, जहाँ ट्रक में भारी सामान लोड होता है, उसे दूसरी जगह पर अनलोड किया जाता है। हम सब मिल कर भारी सामान को चैन लगाकर रॉड के सहारे चढ़ाते हैं। यानी वे हैवी लेबर का काम करते हैं और बदले में पूरे दिन की मजदूरी 400 रुपये ही मिलती है। फिर हमने पूछा कि काम रोज मिल जाता है क्या? उन्होंने कहा कि महीने में 15 से 20 दिन काम मिल जाता है। मगर अभी तो कोई काम ही नहीं है। घर पर ही पड़े रहते हैं। 2 दिन का राशन ही बामुश्किल बचा है। यहाँ हमारे मध्यम वर्ग के पाठक के मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि 400 रुपये दिहाड़ी का काम 15 से 20 दिन मिल जाये, तो भी हर महीने छः से आठ हजार बनते हैं, फिर उनकी हालत इतनी खराब क्यों है? पहला, महीने के हजार रूपये किराए के चले गये, क्योंकि शाहदरा जैसी जगह पर एक छोटे कमरे का किराया भी पांच से छः हजार मासिक है। बाकी उनके खाने और दवा में खर्च हो जाता है, जिसमें से बचाकर उन्हें अपने परिवार को भी गाँव में भेजना होता है, क्योंकि उन पर कुछ और लोग निर्भर होते हैं।

कमरे के आकार की तरफ हमारा ध्यान जाना लाजिमी था। इतने छोटे से कमरे में छः लोग एक साथ कैसे सोते होंगे? खाना बनाने से लेकर दिनचर्या के बाकी के काम उसी छोटे कमरे में कैसे करते होंगे? उनके जिस्म की खाल हड्डियों से चिपकी हुई थी। जो उनके द्वारा किये गये लम्बे अथक परिश्रम की गवाह हैं जो ढकेलते हैं दुनिया के पहिये को और नहीं खाते कोई विटामिन और प्रोटीन!

इस बिल्डिंगनुमा मकान में पुताईवाले, घरों में पीओपी करनेवाले, लकड़ी पर पोलिश करनेवाले, ठेला चलानेवाले और दूसरे कई पेशों से जुड़े लोग रहते हैं। मगर न तो वो अपनी जिन्दगी की गाड़ी को ठेल पा रहे थे, न ही उनके कमरो में कोई पीओपी की महक थी, न ही फर्नीचर नुमा कोई चीज, न दीवारों पर कोई रंग। मौजूद थी दीवारों पर पपडियाँ, सीलन, दमघोंटू हवा, बेचैन करने वाली उमस।

बेचैनी के साथ अगले कमरे की तरफ मुड़ा तो दरवाजा बन्द। खटखटाने पर आधा दरवाजा खुला,। कमरे के अन्दर रोशनी नहीं है। जब मैंने उससे पूछा कि आपके पति कहाँ है? तो वह बोली कन्नौज गये थे, काम के लिए अब तक नहीं लौटे हैं। शायद वह भी लॉकडाउन में वहीं फँस गये हैं। पूछने पर पता चला कि दो छोटे बच्चे भी उस कमरे में रहते हैं। और एक उसकी कोख में, जो बात वह नहीं बता पायी। उसके चहरे पर एक अनजाना डर था। शायद उस 15 कमरों की बिल्डिंगनुमा मकान में 125 लोगों के बीच अकेली महिला होने का डर। हमने पूछा घर पर कुछ खाने के लिए है क्या? वह बोली कुछ भी नहीं। अब मेरी हिम्मत नहीं हुई कि यह पूछ सकूँ कि कितने दिन से नहीं है। बस यह कह पाया कि हम कुछ राशन लेकर आते है। आप चिन्ता न करो। पता नहीं यह दिलासा मैं उसे दे रहा था या अपने आप को।

जिस भी कमरे में हम गये, सभी का हाल खराब था। एक बैचैनी और तड़प लेकर हम बाहर आये। एक अजीब कशमकश के साथ हम अगले मकान की ओर चले। इस मकान की पहली मंजिल पर कुछ कमरे थे, जिन्हें तीन कमरे कहूँ या 4 कमरे, मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। फिर भी बताने की कोशिश करता हूँ। हम जिस जीने से होकर पहली मंजिल पर पहुँचे, उस जीने की चौड़ाई एक से सवा फुट होगी। जी नहीं, लिखने में या मेरे देखने में कोई चूक नहीं हुई। उस जीने की चौड़ाई सवा फुट से ज्यादा नहीं होगी।

उसमें भी दो घुमाव थे। पहली मंजिल पर मकान मालिक की बहू रहती है। दूसरी मंजिल का जीना भी सवा फुट चौड़ा ही था। जिसमें दो घुमाव और थे और झुकने के बाद भी सिर ऊपर न टकरा जाये इसलिए ऊपर वाला हिस्सा शायद हथोड़े से तोड़ा गया था। किसी तरह हम दूसरी मंजिल पर पहुँचे। जीने के ठीक सामने एक कमरा था जिसमें झाकने की मेरी इच्छा हुई। झाँकने के साथ ही कमरा खत्म हो गया। शायद उसे जबरदस्ती कमरा बनाया गया था उसकी लम्बाई और चौड़ाई 6 गुना 3 फुट ही होगी। उसमें दो लड़के रहते थे। एक छोटा गैस सिलेण्डर और दो बर्तन थे। उनके लिए आज दिन का खाना मकान मालकिन ने ही दिया था और 200 रुपये भी। वे दोनों लड़के 20-20 साल के होंगे जो बेलदारी करते हैं।

उसी से लगा हुआ एक और कमरा था, जिसमें चार लड़के रहते हैं। जिनकी उम्र 15-18 साल के बीच होगी। चारों ही ठेकेदार के नीचे पीओपी का काम करते हैं। उनको 250 रुपये प्रति दिन मिलता है। यह काम वे पिछले 2 साल से कर रहे हैं। कमरे में न कोई चटाई है, न कोई बिस्तर और न ही कोई सामान। बस दो चार बिखरे हुए कपड़ों के अलावा कुछ नजर नहीं आया।

उसी मकान में दो कमरे के अलावा लगभग चार फुट की जगह और बच गयी थी। उसे लकड़ी के फट्टे लगा कर कवर किया हुआ था। उसमें एक ताला भी लगा था। मन में जिज्ञासा पैदा हुई तो पूछ लिया कि यह क्या है? लड़का बोला कि जो इसमें रहता है, वह बाहर गया है। अभी यहाँ नहीं है। मैंने कहा कि यह जगह किसी आदमी के रहने के लिए नहीं हो सकती किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने फट्टों के बीच की खाली जगह से झांककर देखा तो उसमें कुछ कपड़े दिखायी दिये।

मुझे लगा कि कोरोना से शायद बच गये तो गरीबी और भूख इनको निगल जायेगी। सरकार हवाई घोषणाएँ करती रहेगी। प्रशासन निष्ठुर बना रहेगा। घरों में दो महीने का समान भरनेवाले सज्जन सोचते हैं कि अब कोई भूखा नहीं सो रहा होगा। लेकिन जमीन पर हालात कैसे हैं, यह लोगों के बीच जाकर ही पता चलता है।

तीसरे मकान की तीसरी मंजिल पर एक रसोई में भी एक आदमी रहता है, जिसका किराया 1500 रुपये महीना है। शायद अब रसोई को भी कमरा कहना होगा। जीने के नीचे बची जगह को भी क्या एक अदद कमरा कह सकते हैं? जी हाँ, उसमें भी दो नौजवान लड़के रहते हैं, जो कॉपर फैक्ट्री में तार खिंचाई का काम करते थे, लेकिन अब नहीं।

ये सब हकीकत है। हमने इसे अपनी आँखों से देखा है। जिसे विश्वास नहीं उसे मैं खुला निमंत्रण दे रहा हूँ कि आओ, देश की राजधानी दिल्ली के शहादरा इलाके में, मैं आपको ये नजारे नंगी आँखों से दिखाउँगा। आप आयें और जरुर आयें। आप दिल्ली में चमचमाती मेट्रो, शॉपिंग मॉल, लग्जरी गाड़ियाँ, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, दिल्ली के मुख्यमंत्री आदि के शानदार निवास स्थान जरूर देखें। लेकिन मेरे दोस्त एक अदद निगाह उधर भी डाल लें, जिधर न केवल धन की देवी लक्ष्मी देखने से परहेज करती हैं, बल्कि जहाँ हर तरह की संस्कृति या मानव विकास की तमाम उपलब्धियाँ कहीं दिखायी नहीं देतीं। यहाँ जो हमने देखा, उसके बाद ऐसा लगता है कि तमाम नैतिकता और आदर्शों की बातें पाखण्ड हैं। लेकिन जिन्दगी कभी हार नहीं मानती। आँखों में एक ख्वाब लिए आगे बढ़ती जाती है। अगर उनके ख्वाबों के साथ हम आपने ख्वाब जोड़ लें तो हमें एक नयी दिशा मिलती है। इन ख्वाबों को एक न एक दिन जमीन पर जरूर उतारा जायेगा।

लॉकडाउन, मजदूर वर्ग की बढ़ती मुसीबत और एक नयी दुनिया की सम्भावना

- राजेश कुमार

कोरोना संकट पर देश-दुनिया में इतनी ज्यादा उथल-पुथल मची है और इस का असर इतना व्यापक है कि इसे एक लेख में समेटना लगभग नामुमकिन है। दुनिया के हर देश और हर इनसान के पास कोरोना को समझने और समझाने का अपना न्यारा तरीका है। लेकिन जो तथ्य और रिपोर्टें सामने आयीं हैं, उनके आधार पर एक आम राय तक पहुँचने की कोशिश की जा सकती है।

कोरोना महामारी ने दुनिया की उत्पादन व्यवस्था को लगभग ठप्प कर दिया है। सरपट दौड़ने वाली रेलें जाम हैं, समुद्र में घूमने वाले जहाज रुके पड़े हैं, आकाश चूमने वाले हवाई जहाज चूहे की तरह अपनी माँद में बैठे रहने को मजबूर हैं। शीशे की गगनचुम्बी इमारतों से कबूतरों की आवाज आने लगी है, जहाँ न दिन का पता होता था न रात का। तीन शिफ्ट में धड़-धड़ चलने वाली मशीनों के चक्के रुक गये हैं। धधकती भट्टियों से उठती आग बुझ गयी है।

ऐसी स्थिति में भारत में जारी लॉकडाउन से करोड़ों लोगों के काम छूट चुके हैं। उनके हाथ अचानक खाली हो गये हैं। लॉकडाउन के अगले दिन से ही शहरों से गाँव की ओर मजदूरों का रेला जा रहा हैं। कई एजेंसियों ने दावा किया है कि यह इतिहास का सबसे बड़ा पलायन है। दिल्ली से पूर्वी उत्तर प्रदेश, जयपुर और मध्यप्रदेश के लोग पैदल ही अपने घरों को चल पड़े। बॉम्बे से फैजाबाद तक लोग पैदल आये। महाराष्ट्र से गुजरात और राजस्थान के लिए लोग छोटे-छोटे बच्चों को कंधों पर उठाये चले आये। इस पलायन में एक हिस्सा निम्न मध्यम वर्ग का भी है जिसे वेतन काटने की शर्त पर भी दस दिन की छुट्टी नहीं मिलती थी। वह भी इस संकट के समय अपने परिवार के पास आने के लिए पैदल चल पड़ा। पर पलायन में शामिल लोगों का बहुत बड़ा हिस्सा दिहाड़ी मजदूर, पीस रेट पर काम करने वाले, सिक्योरिटी गार्ड, ड्राइवर, सेल्समेन, रिक्शा चलाने वाले और विभिन्न पेशे में लगे अस्थायी मजदूरों का है। अगर लॉकडाउन के साथ ही सरकार ने इन सबके खाने-पीने, किराये और न्यूनतम मजदूरी की गारंटी की होती तो शायद इतने बड़े स्तर पर हुए पलायन को रोका जा सकता था।

कोरोना महामारी और लॉकडाउन के चलते दुनिया भर में माल की खपत घट गयी है। विदेशों से आने वाले ऑर्डर रद्द हो गये। खरीदार पुराने खरीदे माल का भुगतान भी नहीं दे रहे। इससे निर्यात पर निर्भर कारखानों और सेवा संस्थानों की माली हालत गड़बड़ा गयी है। इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन ने सम्भावना जताई है कि कोरोना की वजह से 40 करोड़ नौकरी चली जायेंगी। भारतीय निर्यात संघ के अध्यक्ष ने बताया कि कोरोना के चलते निर्यात क्षेत्र की डेढ़ करोड़ नौकरियों पर खतरा है। आधे से ज्यादा ऑर्डर रद्द हो चुके हैं। परिधान निर्यात संवर्धक परिषद के चेयरमेन के अनुसार चमड़ा, जवाहरात, आभूषण और वस्त्र उद्योग बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। 25-30 लाख नौकरी इस क्षेत्र में चली जायेंगी। परिधान के क्षेत्र में 70 फीसदी उद्यम लघु और मध्यम स्तर के हैं। करोड़ों लोग इस क्षेत्र में काम करते हैं। यहाँ तक कि खेती के बाद सबसे ज्यादा लोग इसी क्षेत्र में लगे हुए हैं, जिनमें ज्यादातर असंगठित क्षेत्र से जुड़े हैं। वे किसी ठेकेदार के नीचे अस्थायी मजदूर हैं या पीस रेट पर अपने घरों से काम करते हैं।

इस चौतरफा संकट की मार समाज के अलग-अलग वर्गों पर अलग-अलग तरह से पड़ रही है। इसमें सबसे भयानक स्थिति में है शहरी क्षेत्रों का मजदूर वर्ग। अपनी माली हालत सुधारने के लिए ही उसने गाँव से शहर की ओर रुख किया था। गाँव में तो वह पहले ही भूखों मरने के कगार पर था। आज वह शहर से भूखा और बेरोजगारी से तंग आकर वापस गाँव पहुँच रहा है। जो थोड़ी बहुत बचत थी वह लॉकडाउन के पहले हफ्ते के राशन में ही खत्म हो गयी। अब वह पूरी तरह से सरकारी सहायता पर निर्भर है। पहले वह शहर से कुछ रुपया बचाकर गाँव में अपने परिवार के गुजारे के लिए भेजता था अब वापस मँगवा रहा हैं। इन रुपयों से ग्रामीण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था के पहिये भी घूमने लगते थे। उनका परिवार गाँव की दुकानों से कपड़े, दवा और साबुन-तेल आदि सामान खरीदकर अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाता था। अब यह चक्र टूट रहा है। इससे ग्रामीण इलाके में रोजमर्रा की जरूरत के सामानों की खपत में और कमी आएगी। पहले से ही कुपोषण के शिकार ग्रामीण क्षेत्र में खाने-पीने की चीजों की खपत और भी घट गयी हैं। 2017-18 में ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य उपभोग 2011-12 के मुकाबले दस फीसदी कम हुआ था। कोरोना से बढ़ी बेरोजगारी इसे अकल्पनीय स्तर तक गिरा सकती है। कोरोना और भूख दोनों में होड़ लगी है कि कौन देश की गरीब आबादी को पहले मारे। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन और

मुनाफे का असमान वितरण भूख को जिताने में मदद करेगा। कोरोना संकट ने भुखमरी को बढ़ाने में आग में घी का काम किया है। पटरी से नीचे उतरी हुई अर्थव्यवस्था के सामने बड़े-बड़े गड्ढे खोद दिये हैं।

दूसरा पीड़ित वर्ग है निम्न मध्यम वर्ग। इसका एक हिस्सा ऑनलाइन काम में लगा हुआ है और बहुत बुरी शर्तों पर काम कर रहा है। घर तथा कार लोन की किस्त, बच्चों की मोटी फीस में तनख्वाह का 90 प्रतिशत खर्च करने वाला यह वर्ग बेहद तनाव में है। दो महीने बिना तनख्वाह के निर्वाह करना इसके बूते के बाहर है। इसलिए 10-12 घंटे ऑफिस का काम घर पर ही ऑनलाइन करने में (इसके लिए आजकल एक नया शब्द चलन में आया है-- वर्क फ्रॉम होम) लगा है। इसकी न कोई ट्रेनिंग दी गयी है और न ही जरूरी उपकरण हैं। दिन-रात ऑनलाइन रहकर काम करना पड़ता है. व्हाट्सअप, जूम और जीमेल पर बार-बार मैसेज और नोटिफिकेशन नींद हराम कर देते हैं। इन्टरनेट की खराब स्पीड की झुँझलाहट भी कम नहीं है। इन सब दिक्कतों और उलझनों के बावजूद कई कम्पनियों ने लॉकडाउन के दौरान अपने कर्मचारियों की तनख्वाह आधी कर दी है तथा काम पहले से ज्यादा बढ़ा दिया।

मध्यम वर्ग जिसके पास बचत का काफी पैसा बैंक में जमा है, वह इन दिनों खूब मस्त है और सरकार के हर कदम का गुणगान कर रहा है। इनके साथ ही सबसे मौज में देश का पूँजीपति वर्ग है। यह अपने नौकरों सहित आइसोलेशन में हैं। श्रम और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण से इन्होंने अकूत सम्पदा इकट्ठी की है। अब ये मजे से अपनी छुट्टी बिता रहे हैं। इनमें से कुछ प्रधानमंत्री द्वारा संचालित पीएम केयर फण्ड में मदद जमा कर रहे हैं। इसके अपने राजनीतिक फायदे हैं। जिसकी बड़ी कीमत देश को बाद में चुकानी पड़ती है-- कभी देश के अमूल्य प्राकृतिक संसाधनों के मिट्टी के मोल बिकने से तो कभी श्रम कानूनों के पूँजीपति के हित में बनने से। जबसे प्रधानमंत्री ने पीएम केयर फण्ड बनाया है यह तभी से विवादों में है, यह आरटीआई के दायरे में नहीं आता है, जिसके चलते इसमें आसानी से धाँधली की जा सकती है। पहले से मौजूद प्रधानमंत्री राहतकोष, जो आरटीआई के दायरे में आता है, उसकी जगह पीएम केअर फण्ड क्यों बनाया गया? इसका कोई जवाब सरकार के पास नहीं है।

कोरोना संकट आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के ऊपर किस तरह कहर बनकर टूटा है कि उनके हाथ और जेब दोनों खाली हो गये हैं। राज्य और केन्द्र सरकारों ने उन्हें राहत पहुँचाने के लिए कुछ घोषणाएँ जरूर की हैं। लेकिन अधिकतर हवाई साबित हुई हैं। कई सरकारी और गैर सरकारी संस्थानों के सर्वे के अनुसार हमारे देश में 90 फीसदी मजदूर असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। असंगठित क्षेत्र मतलब जिन्हें छुट्टी, ईपीएफ, ईएसआईसी और अन्य किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती। यह लोग श्रम कानूनों के दायरे में भी नहीं आते। न इनको संविधान के हिसाब से तय न्यूनतम मजदूरी मिलती है न कोई दूसरी सुविधा। कोरोना ने देश की बड़ी आबादी को असहाय बना दिया है। इसने फर्जी विकास के गुब्बारे में पिन चुभो दी है। हालत इतनी खराब होती जा रही है कि अगर जल्द कुछ न किया गया तो लॉकडाउन के चलते भुखमरी से बड़ी संख्या में लोग मारे जायेंगे। उनकी संख्या कोरोना में मरने वालों से ज्यादा होगी। कोरोना महामारी फैलने से पहले भी व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। मेहनतकश वर्ग के लोग अमानवीय शर्तों पर काम कर रहे थे। अब उनसे वह काम भी छीनकर उन्हें भुखमरी की ओर धकेल दिया गया है।

आज पूरी मानवजाति के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती मुँह बाये खड़ी है। कोरोना महामारी कब खत्म होगी और कितने लोगों की जिन्दगी निगल लेगी? उसके बाद की दुनिया कैसी होगी? क्या आज की तरह ही जन-विरोधी पूँजीवादी व्यवस्था ही कायम रहेगी? जिसमें जहरीली हवा, प्रदूषण से भरे शहर, नदियों में सड़ता काला कचरा, हमारी विरासत है। जहाँ इनसान द्वारा इनसान का शोषण होता है। जहाँ अपनी तकनीक और हथियारों के दम पर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को अपना आर्थिक उपनिवेश बनाता है। जहाँ मुट्ठी भर लोगों के हित में पूरे देश के प्राकृतिक संसाधन और मानव श्रम को झोंक दिया जाता है। जहाँ जाति-धर्म के दंगे में सड़कें लहू-लुहान रहती हैं। जहाँ छोटे-छोटे बच्चे धधकती भट्टियों के पास काम करते अपने बचपन को गवाँ देते हैं। जहाँ हथियारों की होड़ में इनसान को इलाज की सुविधाओं से वंचित रखा जाता है और जिनकी कीमत बच्चों के हाथ से किताब और गेंद छीनकर चुकाई जाती है।

या फिर कोरोना महामारी के बाद एक नयी दुनिया का दरवाजा खुलेगा? जिसमें प्रकृति की रक्षा की जायेगी और इनसान की बेहतरी के लिए काम किया जायेगा? लोभ-लालच और स्वार्थपरता को जमीन में दफना दिया जायेगा? क्या हम ऐसा समाज बनाने में सफल होंगे, जिसमें कोई हाथ खाली न हो। कोई जेब खाली न हो। दिल इस तरह उदास न हो कि प्यार करना ही भूल जाये। जिसमें हर किसी की मुस्कराहट के लिए एक जगह हो। जहाँ सरकार माँ की तरह हो जो यह चिन्ता करे कि मेरा कोई नागरिक भूखा न रहे और न ही उदास मन से सोये।

ऐसी दुनिया के निर्माण में सबसे पीड़ित-शोषित मजदूर वर्ग की मुख्य भूमिका होगी। आज हमें यह सब सिर्फ सपना लगेगा। लेकिन हम सब अगर आज से ही प्रयास करें और मिल-जुलकर संघर्ष करें तो ऐसी दुनिया सम्भव है।

पूँजीपति मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी भी छीन लेना चाहते हैं

-- राजेश कुमार

आईआईटी दिल्ली के इकोनोमिक्स के प्रोफेसर जयन जोस थॉमस का 'द हिन्दू' में लेख छपा, आसान और जानकारी बढ़ाने वाला। यहाँ उसके कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की जा रही है।

थॉमस लिखते हैं, "भारत में मजदूरों की तनख्वाह बढ़ानी चाहिए, इससे उपभोग बढ़ेगा। ज्यादा उत्पादन करने के लिए ज्यादा मजदूरों को काम पर रखना होगा। इससे हर हाथ को काम मिल जाएगा। बेरोजगारी खत्म हो जायेगी और आर्थिक वृद्धि भी हासिल होगी।" उन्होंने अपनी बात के पक्ष में तर्क देते हुए लिखा कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप ने भी यही मॉडल अपनाया था। युद्ध और मन्दी से पीड़ित लोगों को अच्छी तनख्वाहें दी गयीं और एक बार फिर पूँजीवाद का सुनहरा दौर शुरू हो गया।

थॉमस ने भारत के शहरी उपभोक्ता वर्ग की हालत का जिक्र करते हुए लिखा, 64.4 प्रतिशत टिकाऊ सामान का उपभोग सिर्फ 5 फीसदी अमीरों द्वारा किया जाता है। निचली 50 फीसदी गरीब आबादी सिर्फ 13.4 फीसदी सामान का उपभोग करती है।

थॉमस ने एक और आँख खोल देने वाला तथ्य दिया है कि 2018 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के कुल 47.15 करोड़ मजदूरों में से सिर्फ 12.3 प्रतिशत को ही नियमित तनख्वाह और सामाजिक सुरक्षा मिलती है।

प्रोफेसर थॉमस ने काफी मेहनत से आँकड़े जुटाये और बड़ी नेकदिली से इच्छा जतायी कि पूँजीवाद अगर तनख्वाह बढ़ा दे तो समस्या का समाधान हो जायेगा। पर यह पूँजीवाद ही है, जिसने एक बार फिर अपने एक नेकदिल प्रोफेसर को निराश किया। हम जानते हैं कि पूँजीवाद अपनी पैदाइश से ही सस्ते श्रम की ख्वाहिश करता आया है। सस्ता श्रम और कच्चे माल की तलाश में समुद्र में खतरनाक यात्राएँ की गयीं। देशों को गुलाम बनाया गया और दो-दो विश्व युद्ध लड़े गये। अर्थव्यवस्था के उत्पादन-उपभोग के आदर्श सम्बन्ध की कलई तो बहुत पहले ही खुल गयी और उससे निकलकर पूँजी का एक बडा हिस्सा, आज शेयर बाजार में सट्टेबाजी में लगा है और परजीवी जोंक की तरह लोगों का खून पी रहा है। पिछले सौ साल में तकनीक की उन्नति की बदौलत मजदूरों की उत्पादकता हजारों गुना बढ़ गयी, पर इसका फायदा सिर्फ पूँजी के मालिकों ने उठाया और मजदूरों को गरीबी के दलदल में और ज्यादा धकेल दिया। दरअसल बेरोजगारी और गरीबी के दम पर पूँजीपति मजदूर वर्ग पर राजनीतिक और सामाजिक बढ़त बनाये रखता है, वह इन्हें कभी खत्म नहीं कर सकता।

आज दुनिया भर में करोड़ों मजदूरों के हाथ खाली हैं। पूँजीपति वर्ग काम देने के बजाय उनके संवैधानिक अधिकारों को भी एक-एक कर छीन रहा है। वह श्रमशक्ति के ऊपर न्यूनतम खर्च कर रहा है। दुनिया भर की सरकारों ने पूँजीपतियों के हित में कर्मचारियों की पेंशन, स्वास्थ्य और अन्य सुविधाएँ खत्म कर दी हैं या निकट भविष्य में जल्द खत्म करने की योजना है। श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। पूँजीपति वर्ग ने ये कदम किसी सनक के चलते नहीं उठाये हैं, बल्कि सोच समझकर कोरोना संकट का सारा बोझ मजदूर वर्ग पर डाला है।

आज एकाधिकारी पूँजीवाद का दौर है। दुनिया के सभी बड़े बुर्जुआ आपस में टकराव के बजाय एकता का रिश्ता ज्यादा मजबूत कर रहे हैं। वे आपस में मिलकर मजदूरों के श्रम का शोषण करते हैं, तमाम तरह के टैक्स लगाकर जनता को लूटते हैं और प्राकृतिक संसाधनों से जनता को बेदखल करके अकूत मुनाफा कमाते हैं। यानी शोषण, लूट और बेदखली तीन ऐसे तरीके हैं, जिससे पूँजीपति वर्ग और उनकी रहनुमा सरकार अपनी तिजोरी भरती है। जैसे-जैसे उत्पादक अर्थव्यस्था ठहरावग्रस्त होती चली जाती है, पहले पूँजीपति मजदूरों के शोषण की दर बढ़ाता है। इससे शोषण से की गयी कमाई की कुल मात्रा कम हो जाती है और पूँजीपति तिजोरी भरने के लिए लूट और बेदखली पर अधिक आश्रित होता चला जाता है।

इससे उसका संकट घटता नहीं बल्कि और ज्यादा बढ़ जाता है। नये निवेश की सम्भावना घटती जाती है, संचय बढ़ता जाता है, पूँजी का पहिया रुकने लगता है।

पूरी विश्व अर्थव्यवस्था बुरी तरह संकट में फँस जाती है। मन्दी, बिक्री में कमी, बाजार का सिकुड़ना, तरलता संकट, वित्तीय और बैंकिंग संकट पूँजीपतियों की नींद उड़ा देते हैं। आज नये उत्पादन के क्षेत्र विकसित नहीं हो पाते, जिससे पूँजीवाद को कुछ राहत मिले। 2008 की मन्दी के बाद से भारत समेत पूरी दुनिया में यही आलम है। कोरोना संकट तो केवल शृंखला में एक कड़ी की तरह आकर जुड़ गया है।

भारत का ही उदाहरण लेते हैं। यूपी, बिहार, राजस्थान और

मध्य प्रदेश के अप्रवासी मजदूर सिर्फ कुछ गिने-चुने शहरों में केन्द्रित हैं-- जैसे दिल्ली, गुड़गाँव, नोएडा, बंगलुरू, चेन्नई या गुजरात के कुछ शहर सूरत और अहमदाबाद। पिछले दशक में सोचिए ऐसे कितने और नये शहर भारत में बने? एक भी नहीं। कितने नये उद्योग लगे, कितने अस्पताल बने, कितने विश्वविद्यालय खुले, कितनी नयी रेल लाइने बिछीं? शायद एक भी नहीं। विकास ठहर गया है? हाँ। सेवा क्षेत्र में कुछ विकास जरूर हुआ। घर-घर सामान पहुँचाने वाली कई कम्पनियाँ आ गयी। मोबाइल इन्टरनेट के क्षेत्र में भी काम हुआ। लेकिन ये क्षेत्र जितने नये रोजगार पैदा करते हैं उससे कहीं ज्यादा उजाड़ देते हैं। फ्लिपकार्ट, अमेजन से करोड़ों खुदरा व्यापारियों की जीविका पर संकट है। यह रोजगारविहीन विकास है। यह नये लोगों को काम देना पसन्द नहीं करता।

रिपोर्टों में आगे बताया गया है कि देश के कुल अप्रवासी मजदूरों के आधे मजदूर यूपी, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश से आते हैं। खेती की हालत इतनी पस्त है कि पिछले दशक में करीब दो करोड़ लोग खेती छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर चुके हैं। आज कोरोना संकट में फिर से उजड़कर गिरते-पड़ते, मरते-पिसते वापस गाँव लौट रहे हैं।

शहरों में खेती से उजड़कर आये मजदूरों की आर्थिक और सामाजिक हैसियत क्या है? ये शहरी आबादी के सबसे निचले पायदान पर हैं। घुटन भरी झुग्गियों में या किराये के छोटे-छोटे कमरों में इन्हें शरण मिली हुई है। ये शहरों में जैसा नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर हैं उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते है और गाँव में इनके परिवार का हाल इनसे भी बुरा है।

दशकों से कहीं नये आद्यौगिक क्षेत्र विकसित नहीं हो रहे हैं। यहाँ तक कि बहुत से पुराने औद्योगिक क्षेत्र भी ठप हो गये। नोएडा से 30 किलोमीटर दूर सिकंदराबाद आद्यौगिक क्षेत्र में चील-कौए उड़ते रहते हैं। खण्डहर में बदलती दीवार और प्रतीक के रूप में खड़ी चिमनियाँ किसी पुराने जमाने की याद बनकर रह गयी हैं।

आज पूँजीवाद के कामों की लिस्ट में ही नहीं है कि वह उद्योग के जरिये विस्तार करे। आज एक-एक कम्पनी के पास इतनी पूँजी है कि वह कई-कई देश खरीदने की हैसियत में है। पर फिर भी वह अपनी पूँजी ऐसी जगह लगाएगी जहाँ उसे तुरंत मुनाफा हो। अगर उसे हथियार बेचकर मुनाफा मिल रहा है तो वह युद्ध में दुनिया को झोंक देगा और हथियार बनाएगा।

पूँजीवाद से यह उम्मीद करना बहुत ही भोलापन होगा कि वह गरीब और कंगाल जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार की व्यवस्था करेगा। इसके उलट शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार में कटौती कर के ही वह अपनी तिजोरी भर रहा है। उसे मौजूदा व्यवस्था से फायदा है। सस्ते श्रम की बाढ़ उसके लिए गंगा की तरह पूजनीय है। इसी सस्ते श्रम की नुमाइश करके प्रधानपन्त विदेशी आकाओं को निवेश के लिए बुला रहे हैं।

आज मजदूर वर्ग इतना संगठित नहीं है कि उसके डर से पूँजीपति उसकी सुविधा बढ़ा दें। जैसा कि आपने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का हवाला दिया है। उस समय के वर्ग शक्ति संतुलन पर ध्यान देना होगा। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप और अमेरिका में पूँजीपति वर्ग खैरात यूँ हीं नहीं लुटा रहा था। उसे डर था कि हमने अपने-अपने देशों में मजदूर वर्ग की हालत ठीक न की तो मजदूर वर्ग को सोवियत संघ की ओर आकर्षित होने से कोई ताकत नहीं रोक सकती।

आज पूँजीवाद के सामने न तो सोवियत संघ का डर है और न ही वैश्विक शक्ति संतुलन मजदूर वर्ग के पक्ष में है। इसलिए आज वह कीन्स के सुधारवादी मॉडल को लागू करके तनख्वाह नहीं बढ़ाएगा। ऐसा उसने अपने हर कदम से बार-बार सिद्ध किया है। अब सोचना हमें है कि हम अगर वाकई देश के 47 करोड़ मजदूर वर्ग के लिए चिन्तित हैं तो कुछ और योजना बनाएँ।

वास्तव में मानवता लम्बे समय से पूँजीवाद के रूप में एक मरणासन्न व्यवस्था को ढो रही है। अर्थव्यवस्था समेत हमारा समाज, राजनीति, संस्कृति, न्याय प्रणाली यानी मानव जीवन का हर कोना इसकी सड़ांध से बजबजा रहा है। इसे इतिहास के कूड़ेदान में दफ्न किये बगैर बेहतर मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

पेज 69 का शेष...

7) सिफारिशों या बैठकों के मिनट्स को सार्वजनिक क्यों नहीं किया गया?

8) आईसीएमआर ने सुप्रीम कोर्ट से यह क्यों छिपाया कि कि वह निजी क्षेत्र के लोगों वाली समिति से परामर्श कर रही है जिसके बारे में उस समिति की सदस्य किरण मजूमदार शॉ ने साक्षत्कारों में खुद बताया है?

9) कृपया निजी क्षेत्र के लोगों वाली समिति की जानकारी साझा करें। इससे कब परामर्श किया गया? क्या राष्ट्रीय कार्यबल की तर्ज पर इसके सम्बन्ध में भी कोई औपचारिक अधिसूचना या जानकारी दी गयी है? इसके सदस्य कौन लोग हैं? केन्द्र या आईसीएमआर ने कितनी बार इस समिति से परामर्श किया है? इस समिति ने क्या-क्या सिफारिशें दी हैं?

10) क्या आईसीएमआर ने सुप्रीम कोर्ट से झूठ बोला था कि उसने निजी जाँच की मंजूरी देने के सम्बन्ध में कार्यबल से चर्चा की थी?

11) कारवाँ अन्तरराष्ट्रीय स्तर की पहचान वाली और सम्मानित संस्था है। इसके बावजूद पीआईबी ने उसके सवालों का जबाव दिये बगैर ही उसकी रिपोर्ट को गलत बता दिया। पीआईबी ने फैक्ट चैक करने के लिए किस प्रक्रिया को अपनाया था?

ईजी मनी के नशे में गाफिल देश की प्रतिभा क्या नींद से जागेगी?

-- संजय वर्मा

इन दिनों मुझे लॉकडाउन से आने वाली आर्थिक तबाही के बुरे सपने आते हैं। ऐसा लगता है जैसे 20 साल से कोई पार्टी चल रही थी और अचानक बत्तियाँ गुल कर दी गयीं हों। 1990 के पहले देखी बेरोजगारी, तंगहाली, भूख की तस्वीरें जिन्हे मैं भूल चुका था, दोबारा दिखायी देने लगी हैं। ऐसे में मैं सहारे के लिए अक्सर अपने कॉरपोरेट के मित्रों को फोन लगाता हूँ। वे मुझे डिप्रेशन से निकलने के लिए तीन गोलियाँ देते हैं, पहली - दुनिया चीन से नाराज है, जल्दी ही चीन का सारा बाजार भारत आ जायेगा, इसलिए हमारे लिए कोरोना अभिशाप नहीं वरदान है। दूसरी, भारत निर्यात इकोनॉमी नहीं है, उसकी अर्थव्यवस्था खुद की खपत पर चलती है। और तीसरी डेमोग्राफिक डिविडेण्ड यानी कुल जनसंख्या में युवा लोगों का बड़ा प्रतिशत, मतलब खाने वाले कम, कमाने वाले ज्यादा! सचमुच?

प्रेम और व्यापार के नियम अलग होते हैं। किसी व्यक्ति या देश से व्यापार करने या न करने के फैसले लाभ हानि के आधार पर लिए जाते हैं, जज्बातों की बिनाह पर नहीं। फिर चीन के खिलाफ है ही क्या? अमरीका का बयान देखिये। उसमें क्या तथ्य है? बस यही कि आप दुनिया से ग्लव्स और पीपीई किट इम्पोर्ट करते रहे और एक्सपोर्ट बन्द कर दिया। हमें बीमारी के बारे में नहीं बताया। जैसे किसी ऊबी, उकताई पत्नी का उलाहना हो कि - "आपने तो हमें बताया ही नहीं!" और हम कितने मासूम हैं कि सोचते हैं इतनी सी बात पर दुनिया चीन से कट्टी कर लेगी। चलिए, मान लिया चीन से नाराज होकर दुनिया भारत आना चाहेगी। तो क्या भारत तैयार है? चीन दुनिया की फैक्ट्री है। क्या हमारे कारखाने उस क्वालिटी का और उतना माल बनाने के लिए तैयार हैं? एक फैक्ट्री मालिक होने के नाते मेरा अनुभव यह है कि हम लोग इंजीनियरिंग और खासकर मैन्युफैक्चरिंग के मामले में दुनिया से बहुत पिछड़े हुए हैं। अपनी फैक्ट्री में एक छोटी सी मशीन बनवाने या किसी डाई को रिपेयर कराने के लिए मुझे जो संघर्ष करना पड़ता है वह मुझे हैरान करता है कि हर साल करोड़ों ग्रैजुएट्स उगलने वाले इस देश के महान शिक्षा संस्थान क्यों कुछ ऐसे लोग नहीं दे पाते जो ठीक से एक डाई भी बना सकें। पिछले 20 सालों की आर्थिक तेजी में जो थोड़ा बहुत कमाल हमने दिखाया है, वह बस सॉफ्टवेयर इंजीनियरिंग में है, मैन्युफैक्चरिंग के मामले में हम निकम्मे हैं। क्या ऐसा इसलिए है कि भारत चिन्तन करने वालों का देश रहा है। हाथ से काम करने को यहाँ नीची निगाह से देखा जाता है, इसलिए हमारी आबादी के सारे तेज दिमाग लोग किसी ऐसे पेशे में नहीं जाते जिसमें हाथ का काम हो। वे सिर्फ पढ़ते, सोचते हैं! एक अमूर्त कंप्यूटर प्रोग्राम को डिकोड करना हमारे लिए अधिक आसान है बजाय रन्दा चलाकर एक लकड़ी को सीधा करने से। हमारे सारे शिक्षा संस्थान सिर्फ सोचना सिखाते हैं, करना नहीं! ऐसे में उस चीन से हम कैसे जीतेंगे जो आठवीं क्लास पास करने के बाद ही बच्चे को सीधे ही कोई हुनर सिखाता है। वोकेशनल कोर्स कराता है। अपनी चीन यात्रा के दौरान मैंने जाना था कि चीन ने अपने हुनरमन्दों की इज्जत की। उन्हें उद्यमी बनाया। जबकि हमारे यहाँ वर्ण व्यवस्था ने हाथ से काम करने वालों को नीचा दिखाया। दूसरी तरफ सरकार ने इन्फॉर्मल इकॉनोमी कहकर उनकी बेइज्जती की। सरकारी अफसरों ने उन्हें इतना डराया धमकाया कि वे बड़े होने से डरने लगे। हमारे देश में परम्परा से जो हुनरमन्द आते हैं उनकी कद्र बड़ी इंजीनियरिंग इण्डस्ट्रीज ने भी नहीं की। सिर्फ इसलिए क्योंकि ये हुनरमन्द एक अलग भाषा में बात करते हैं। उनकी शब्दावली उनकी दुनिया की है। इसलिए हमारे यहाँ ये दोनों दुनिया अलग-अलग समानान्तर चलती रही और एक दूसरे को कोई फायदा नहीं पहुँचा पायी। अगर पढ़े-लिखे इंजीनियर अपना अहंकार छोड़कर इन दोनों दुनिया के बीच में पुल बनाने की कोशिश करते तो आज हम मैन्युफैक्चरिंग के मामले में इतने पिछड़े ना होते।

अब आइये, जिसे हम जनसंख्या सम्बन्धित लाभ मानकर इतराते हैं, उसकी पड़ताल करें। बेशक हमारे युवा संख्या में बहुत हैं, पर एक बार उसकी गुणवत्ता पर भी नजर डालिये। स्कूल-कॉलेजों से कच्ची-पक्की परीक्षाएँ पास किये यह लोग अब खेती करने में बेइज्जती महसूस करते हैं पर उनके पास ऐसा कोई ज्ञान या हुनर नहीं है जो फैक्ट्रियों के काम का हो। बारहवीं पास बच्चा किराने की दुकान पर सामान का हिसाब भी ठीक से नहीं जोड़ सकता। हमारे स्कूलों के पाठ्यक्रमों में ऐसा कुछ नहीं है जो बाजार के काम का हो।

चीन से बराबरी करने का सपना देखने वालों को वहाँ काम करने वाली महिलाओं की संख्या भी देखना चाहिए। हमने देश की 50 प्रतिशत आबादी को बेकार घर पर बिठा रखा है। पिछले कुछ सालों की कॉलेजों की मेरिट लिस्ट उठाकर देखिये। ज्यादातर गोल्ड मेडल लड़कियों ने हासिल किये हैं। वे लड़कियाँ दफ्तरों-दुकानों में क्यों दिखायी नहीं देतीं? जो समाज इन गोल्ड मेडलों को बैंगल-बॉक्स की मखमली कब्रगाहों में दफन कर देता हो, उसे जनसंख्या सम्बन्धित लाभ की बात करने का क्या हक है?

मेरे एक मित्र हैं। उनकी पढ़ी-लिखी पत्नी ने उनकी दुकान पर काम करना शुरू किया। पर जल्दी ही हार मान ली। सबसे

नजदीकी लेडीज टॉयलेट एक किलोमीटर दूर था। हर बार दुकान के एक लड़के के साथ जाना पड़ता था। आप उनकी असुविधा के अलावा शर्मिन्दगी का भी अन्दाजा लगाइये। वजहें और भी हैं। हमारे व्यापार जगत की भाषा बेहद चलताऊ और अश्लील है। दफ्तर-दुकान ऐसी तंग गलियों के अन्दर हैं जो महिलाओं के लिए बिलकुल भी सुरक्षित नहीं है। इसलिए सिर्फ वही महिलाएँ इस दुनिया में बनी रहती हैं जो मजबूर हैं। एक पितृसत्तात्मक समाज में अन्दर-बाहर के काम की दोहरी जिम्मेदारी भी महिलाओं को रन आउट कर देती है।

मगर सरकार की आर्थिक नीतियों के आधार पर जीडीपी की ग्रोथ का अन्दाजा लगाने वाला समाज अपनी बुराइयों पर बात करना नहीं चाहता। तरक्की का सारा जिम्मा हमने फाइनेंस मिनिस्टर पर ही डाल रखा है। हम, हमारा समाज, हमारी मान्यताएँ, हमारी संस्कृति, हमने सबको इस जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया है।

चीन से बराबरी के सपने देखता समाज चीन की कार्य संस्कृति को क्यों नहीं देखता? हमारे कारखानों में कामगारों के साल के औसत कार्य दिवस दुनिया के मुकाबले बहुत कम हैं। व्रत, उपवास, शादी-ब्याह, त्यौहार, भोजन भण्डारे का एक लगातार सिलसिला है जो हमारे लिए काम से ज्यादा बड़ी प्राथमिकता है। होली-दिवाली, शादी-ब्याह का मौसम, हमारे फैक्ट्री मैनेजर और कंस्ट्रक्शन साइट के सुपरवाइजरों के लिए डरावने ख्वाब की तरह आते हैं, इन सब का मतलब होता है हफ्तों के लिए काम बन्द। भले ही कितने ही जरूरी आर्डर पेंडिंग पड़े रहें।

कॉरपोरेट के हमारे मैनेजर अक्षम हैं। हमने मैनेजर बनने की एकमात्र योग्यता टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलना बना रखी है। ज्यादातर मैनेजर बस यही एक काम जानते हैं, वह भी ठीक से नहीं। कनेक्टिंग फ्लाइट पकड़ने को अपने व्यस्त रहने का प्रमाण मानते, फाइव स्टार होटलों में बेतुके प्रेजेंटेशन करते ये मैनेजर दुनिया में हो रहे बदलावों के बारे में कुछ नहीं जानते। ज्यादातर कॉरपोरेट मैनेजर बस एक दूसरे को रिपोर्ट देने का काम करते हैं, जिसमें कोई काम की बात नहीं होती। सरकारी तंत्र की जिन बुराइयों से घबरा कर हम प्राइवेट कॉरपोरेट की शरण में आये थे, अब वह भी उसी भ्रष्टाचार और अक्षमता के शिकार हो गये हैं। वे रिश्वत नहीं लेते, पर मोटी तनख्वाह लेकर बस एक दूसरे के अहम को सहलाना, जिम्मेदारी से भागना, निर्णय न ले पाना भी एक किस्म का भ्रष्टाचार है। यह बात मैं किसी किताब में पढ़कर नहीं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कहता हूं।

आप सोचेंगे यदि भारतीय समाज में इतनी बुराइयाँ हैं तो फिर 20-30 सालों में हमने इतनी तरक्की कैसे की है?

मेरे विचार में इसकी एक बड़ी वजह है जमीन का पैसा है। 1991 में पी वी नरसिम्हा राव की सरकार ने आर्थिक सुधार लागू किये। उससे विदेशी निवेश आया, फिर अटल सरकार ने बड़े राजमार्ग बनाये, होमलोन सस्ते हुए। इन वजहों से जमीन के दामों में बहुत बड़ा उछाल आया। इसने बड़ी मात्रा में काला धन पैदा किया। यह धन किसी मेहनत या हुनर से कमाया हुआ धन नहीं था। यह जमीन के सट्टे की फसल थी। इस काले धन ने जो डिमाण्ड पैदा की उसके लिए हमारी सप्लाई साइड तैयार नहीं थी। क्योंकि उसके पहले के 20-25 साल देश में मन्दी की वजह से नयी फैक्ट्रियाँ, नये कारोबार उस तादाद में नहीं लग पाये थे। रातों रात नयी फैक्ट्रियाँ लगना सम्भव नहीं था, इसलिये सप्लाई साइड की अक्षमता के बावजूद बाजार उछलता रहा। बाप दादाओं के खेत बेचकर स्कॉर्पियो खरीदने वाला एक नया वर्ग पैदा हुआ। आवारा पूँजी ने अपने लिए नये यार ढूँढ लिये। विदेश यात्राएँ, होटलिंग, महँगा इंटीरियर डेकोरेशन, बड़ी कारें, नये मॉडल के मोबाइल। पान ठेलों पर दिन काटने वाले आवारा लड़के जब जमीनों की दलाली में धनकुबेर बने, तो इन नये पीरों को अपने जैसे मुरीद चाहिए थे। उन्होंने आलीशान बँगले बनाये, जिनके बाथरूम में पचास हजार का एक नल लगाने को आर्किटेक्ट और इंटीरियर डिजाइनर्स ने कला का नाम दिया और बाल बढ़ाकर खुद को विंची और पिकासो के समकक्ष घोषित कर दिया। ऑर्किटेक्ट्स के ऑफिस के बाहर ठेकेदार और कम्पनियों के सेल्समैन लाइन लगाकर मंगल गीत गाते रहे, ताकि वे अपने देवत्व को भूलकर कहीं गरीबों के लिए अच्छे और सस्ते मकान बनाने की तकनीक ना खोजने में लग जायें।

पिछले 20 सालों में हमारे डिजाइनर, इंजीनियर और उद्यमियों की ऊर्जा और समय इस आवारा पूँजी की अश्लील चाकरी में बीता। अपने देश की परिस्थितियों और गरीबी के हिसाब से कोई नया प्रोडक्ट या तकनीक ढूंढने में किसी का ध्यान नहीं था। एक पार्टी चल रही थी। किसी ने यह नहीं सोचा कि इस दौरान कुछ ऐसा किया जाये कि पार्टी खत्म ना हो।

कोरोना इस तरह से वरदान है कि ईजी मनी के नशे में गाफिल हमारे देश की प्रतिभाओं को शायद यह नींद से जगा दे। मजबूरी में ही सही हम अपने कंफर्ट जोन से बाहर आयें। शायद हम सोचें कि कार्यकारी क्षमता क्या है? कि मुँह बनाकर अंग्रेजी बोलना सिर्फ भाषाई योग्यता है या तरक्की के लिए मेहनत भी करना होती है। शायद हम सीखें कि "आउट ऑफ बॉक्स थिंकिंग" का मुहवरा किसी कॉरपोरेट कांफ्रेंस में तालियाँ हासिल कर के भूल जाने के लिए नहीं है, अब वह जिन्दा बचे रहने की तरकीब है। शायद हमें एहसास हो कि धर्म और जाति नहीं गरीबी और भुखमरी अधिक महत्त्वपूर्ण है। और इस वक्त हमें एक दूसरे का हाथ पकड़कर इस मुसीबत से पार पाना है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद जब दुनिया ने जर्मनी का बहिष्कार कर दिया, तब वहाँ के इंजीनियरों ने लगभग हर मामले में अपने देश को आत्मनिर्भर बना लिया।

हर आपदा हमें झकझोरती है, हमें कंफर्ट जोन से निकालती है। कोरोना में यदि कुछ अच्छा है तो बस यही है!

आईसीएमआर क्यों नहीं सार्वजनिक कर रही कोविड कार्यबल की बैठकों के मिनट्स

-- विद्या कृष्णन

(विद्या कृष्णन स्वास्थ्य मामलों की पत्रकार हैं और गोवा में रहती हैं। 20 अप्रैल 2020 को कारवाँ मैगजीन में उनका एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक है "कोरोनावायरस : कारवाँ के सवालों का आईसीएमआर ने नहीं दिया जवाब, क्यों नहीं सार्वजनिक कर रही कोविड कार्यबल की बैठकों के मिनट्स।" इस लेख में उन्होंने अपने 15 अप्रैल को कारवाँ में अंग्रेजी में छपे लेख का जिक्र भी किया है, जिसका शीर्षक है-- "मोदी सरकार ने कोरोना सम्बन्धी जरूरी फैसलों से पहले आईसीएमआर द्वारा गठित कार्यबल से नहीं ली सलाह।" इन दोनों लेखों के चुनिन्दा अंशों को यहाँ दिया जा रहा है।)

कोविड-19 के लिए गठित देश के 21 शीर्ष वैज्ञानिकों वाले राष्ट्रीय कार्यबल (टास्क फोर्स), जिसे महामारी के सम्बन्ध में नरेन्द्र मोदी सरकार को सलाह देनी थी, उसके चार सदस्यों का कहना है कि देशव्यापी तालाबन्दी या लॉकडाउन को बढ़ाने की घोषणा करने से पहले कार्यबल की बैठक ही नहीं हुई। 14 अप्रैल को एक राष्ट्रीय प्रसारण में मोदी ने लॉकडाउन को 3 मई तक बढ़ाने की घोषणा की थी। सरकार ने निर्णय लेने से पहले विशेषज्ञों की टीम से परामर्श ही नहीं किया। 14 अप्रैल को समिति के एक सदस्य ने सरकार की नाराजगी के डर से नाम न छापने की शर्त पर मुझे बताया, "समिति ने पिछले सप्ताह एक भी बार मुलाकात नहीं की।" 14 अप्रैल तक भारत में कोविड संक्रमितों की संख्या बढ़कर 10363 हो गयी थी और इससे मरने वालों की संख्या 339 हो चुकी थी।

एक सदस्य का कहना है "लगता है कि वे वैज्ञानिकों से परामर्श बस यह बताने के लिए कर रहे हैं, कि यह समिति बनायी गयी है,"। उसी सदस्य ने कहा कि 4 अप्रैल को भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर), जो भारत की कोविड-19 नीति तैयार करने वाली नोडल संस्था है, ने सर्वोच्च न्यायालय को बताया था कि निजी प्रयोगशालाओं को कोविड-19 की जाँच की अनुमति देने का निर्णय कार्यबल के साथ "व्यापक विचार-विमर्श" के बाद लिया गया है। लेकिन उस सदस्य के अनुसार, ऐसी कोई चर्चा नहीं हुई। उन्होंने आगे बताया कि 14 अप्रैल तक कार्यबल को किसी भी मीटिंग के मिनट्स तक नहीं दिये गये। कार्यबल के एक दूसरे सदस्य ने भी नाम न छापने की शर्त पर बताया कि बैठकों के मिनट्स केवल कैबिनेट सचिव को भेजे गये हैं और कार्यबल के अन्य सदस्यों के साथ साझा नहीं किये गये।

कार्यबल द्वारा लिये गये निर्णय में जिस किस्म की अपारदर्शिता है उसे कोविड-19 की निजी जाँच की अनुमति वाले निर्णय से समझा जा सकता है। 21 मार्च को, कार्यबल गठित होने के तीन दिन बाद, स्वास्थ्य मंत्रालय ने आईसीएमआर द्वारा जारी दिशानिर्देशों को नोटीफाई किया, जिसमें निजी क्लीनिकों को नोवेल कोरोनवायरस की जाँच की अनुमति दी गयी थी और परीक्षणों के लिए 4500 रुपये शुल्क निर्धारित किया गया था। अधिवक्ता शशांक देव सुधी ने एक जनहित याचिका में इस फैसले को चुनौती दी। उस याचिका में अदालत से गुहार लगायी गयी कि वह निशुल्क परीक्षण करने के लिए निजी क्लीनिकों को निर्देश दे। 8 अप्रैल को सुप्रीम कोर्ट ने याचिका मंजूर की और आदेश दिया कि परीक्षण सरकारी और निजी दोनों प्रयोगशालाओं में निशुल्क होना चाहिए।

दो दिन बाद दिल्ली के प्राइमस अस्पताल के आर्थोपेडिक सर्जन डॉ. कौशल कान्त मिश्रा ने आदेश के संशोधन की माँग करते हुए एक हस्तक्षेप आवेदन दायर किया। आवेदन में कहा गया था कि अदालत ने निजी क्लीनिकों की भरपाई का मामला बाद में हल करने को कहा है जिसके चलते निजी लैबें मरीजों की जाँच करने से इनकार करेंगी। आवेदन में उन्होंने अदालत से माँग की कि वह निजी प्रयोगशालाओं को आम जनता से 4500 रुपये तक जाँच शुल्क लेने की अनुमति दे और केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की श्रेणी वाले लोगों का निःशुल्क परीक्षण किया जाये। 11 अप्रैल को अपने आवेदन के बारे में एएनआई के एक ट्वीट को रिट्वीट करते हुए मिश्रा ने लिखा, "यह हर नागरिक और सरकार की मदद करने का प्रयास है! ... इसे पीएम फण्ड के लिए दान माना जाना चाहिए क्योंकि आप खुद को नहीं बल्कि समाज को भी बचा रहे हैं!"...

केन्द्र सरकार ने आदेश के संशोधन का समर्थन किया है। सुनवाई के दौरान सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता ने राज्य के "सीमित संसाधनों" की दुहाई दी और कहा कि कोविड-19 के खिलाफ लड़ाई लम्बी चल सकती है। फिर 12 अप्रैल को अदालत

ने अपने पिछले आदेश को संशोधित करते हुए फैसला सुनाया कि निःशुल्क जाँच केन्द्र सरकार की आयुष्मान भारत बीमा योजना के लाभार्थियों तक सीमित होगी। अदालत ने कहा कि "सरकार इस बात पर विचार कर सकती है कि क्या इस सम्बन्ध में कोई विशेष निर्देश जारी किये बिना समाज के किसी अन्य वर्ग को कोविड-19 के निःशुल्क परीक्षण का लाभ दिया जा सकता है।" अदालत ने यह भी कहा, "हम इस बात से अवगत हैं कि योजना का निर्धारण और उसका कार्यान्वयन सरकार के क्षेत्राधिकार में है, उसके पास इस तरह के मामलों के सबसे अच्छे विशेषज्ञ हैं।" लेकिन लगता है कि जैसे सरकार ने तय कर लिया है कि वह स्वयं द्वारा गठित विशेषज्ञों की टीम से भी परामर्श नहीं करेगी। नतीजतन, निजी क्षेत्र को इस महामारी से अप्रत्याशित कमाई होगी क्योंकि अदालत ने उन्हें आईसीएमआर द्वारा तय 4500 रुपये प्रति परीक्षण की दर से जाँच करने की अनुमति जो दी है...

स्वास्थ्य क्षेत्र पर नजर रखने वाली संस्था ऑल इंडिया ड्रग एक्शन नेटवर्क की सह-संयोजक मालिनी आयसोला ने कहा, "शुल्क सीमा अनुचित रूप से बहुत अधिक है और परीक्षण की सही लागतों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।" आयसोला ने उन वैज्ञानिकों से सम्पर्क किया जिनका अनुमान है कि परीक्षण 500 रुपये तक में हो सकता है। "निजी प्रयोगशालाओं को इस तरह के भारी मार्जिन की अनुमति क्यों दी गयी? और आईसीएमआर ने अदालत को मजूमदार शॉ वाली समिति के बारे में क्यों नहीं बताया? शुल्क निर्धारित करने के फैसले कैसे लिये गये, इस बारे में भी कोई पारदर्शिता नहीं है।"

इस बीच सरकार ने कार्यबल की सिफारिशों को लागू नहीं किया है। 6 अप्रैल को आईसीएमआर ने एक दस्तावेज प्रकाशित किया था जिसमें कहा गया था कि कार्यबल ने तत्काल प्राथमिकता के रूप में "इंडिया कोविड-19 क्लीनिकल रिसर्च कोलैबोरेटिव नेटवर्क" के गठन की सिफारिश की है। दस्तावेज में उल्लेख है, "इस नेटवर्क का लक्ष्य देश में कोविड-19 की नैदानिक समझ को बढ़ाना है ताकि विशिष्ट नैदानिक प्रबंधन प्रोटोकॉल विकसित किया जा सके।" मैंने जिन दो सदस्यों से बात की उनके अनुसार यह अभी तक नहीं किया गया है। "जहाँ तक मैं जानता हूँ इस पर चर्चा नहीं की गयी है," नाम जाहिर न करने का अनुरोध करने वाले पहले सदस्य ने कहा। "वे निर्णय लेकर हम पर डाल रहे हैं। मुझे सन्देह है कि यह निर्णय कहीं और लिया गया है और बाद में कहा जायेगा कि हमने यह निर्णय लिया है।"

कार्यबल के अध्यक्ष पॉल और आईसीएमआरएस के महानिदेशक भार्गव को मैंने कई ईमेल और सन्देश भेजे जिनका कोई जवाब नहीं मिला। उनकी प्रतिक्रिया मिलने पर रिपोर्ट को अपडेट कर दिया जायेगा।

रिपोर्ट को प्रकाशित करने से पहले कारवाँ ने भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) को ईमेल और सन्देश भेजे थे लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। तो भी रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद आईसीएमआर ने एक ट्वीट किया कि कारवाँ की रिपोर्ट गलत है। इसके बाद प्रेस सूचना ब्यूरो फैक्ट चैक ने अपने ट्विटर हैण्डल से कारवाँ की रिपोर्ट को फेक न्यूज बताया।

इसके बाद कृष्णन ने आईसीएमआर के महानिदेशक बलराम भार्गव, कार्यबल के अध्यक्ष विनोद पॉल, पीआईबी फैक्ट चैक के अधिकारी और स्वास्थ्य मंत्रालय के लिए पीआईबी की सहायक महानिदेशक मनीषा वर्मा को ईमेल कर स्पष्ट किया कि कारवाँ की रिपोर्ट कार्यबल के चार सदस्यों के हवाले से लिखी गयी है और आईसीएमआर या पीआईबी ने रिपोर्ट में उठाए गये जरूरी सवालों का जवाब नहीं दिया है। कृष्णन ने उन्हें यह भी बताया कि रिपोर्ट को प्रकाशित करने से पहले भार्गव और पॉल को जवाब देने के लिए पर्याप्त वक्त दिया गया था लेकिन दोनों ने जबाव नहीं दिया। चूँकि आईसीएमआर ने रिपोर्ट में उठाये गये जरूरी सवालों का जवाब नहीं दिया इसलिए कृष्णन ने पीआईबी से पूछा है कि उसने किन तर्कों के आधार पर उनकी रिपोर्ट को गलत बताया है।

कृष्णन ने पॉल और भार्गव को जवाब देने के लिए 16 अप्रैल की दोपहर तक का समय दिया था। उस दिन सुबह 9.53 बजे उन्हें पीआईबी फैक्ट चैक का जवाबी ईमेल आया कि उनके ईमेल को वर्मा को फॉर्वर्ड कर दिया गया है। इस खबर को प्रकाशित किये जाने तक भार्गव, पॉल या वर्मा किसी ने भी जबाव नहीं दिया है।

पत्रकार कृष्णन ने पॉल, भार्गव और वर्मा को लिखे अपने ईमेल में इन 11 सवालों के जबाव माँगे हैं:

1) आईसीएमआर ने ट्वीट किया है कि पिछले महीने कार्यबल ने 14 बार बैठकें की थी। कार्यबल के सदस्यों ने बताया है कि लॉकडाउन की घोषणा से पहले के हफ्ते में कोई बैठक नहीं हुई। क्या 8 और 13 अप्रैल के बीच कार्यबल की कोई बैठक हुई थी?

2) क्या कार्यबल के सदस्यों को बैठक के मिनट्स की कॉपी दी जाती है? यदि नहीं, तो क्यों नहीं?

3) क्या आईसीएमआर या केन्द्र सरकार ने निजी क्लीनिकों को कोविड-19 की जाँच की अनुमति देने और जाँच का मूल्य 4500 रुपये रखने वाले निर्णय में कार्यबल से औपचारिक तौर पर सलाह ली थी? यदि हाँ, तो इन बैठकों और चर्चाओं के मिनट्स की कॉपी उपल्ब्ध कराये।

4) आईसीएमआर ने ट्वीट किया था कि पिछले महीने कार्यबल ने 14 बार बैठक की। कृपया इन बैठकों के मिनट्स उपलब्ध कराये। यह भी बताएँ कि ये बैठकें किन तारीखों में हुई थीं और इनमें किन-किन लोगों ने भाग लिया था?

5) कारवाँ ने अपनी रिपोर्ट में यह भी बताया है कि कार्यबल की सिफारिश के बावजूद आईसीएमआर ने "इंडिया कोविड-19 क्लीनिकल रिसर्च कोलैबोरेटिव नेटवर्क" का अब तक गठन नहीं किया है। फिलहाल इसकी क्या स्थिति है?

6) अपनी बैठकों में कार्यबल ने क्या सिफारिशें की हैं?

शेष पेज 65 पर...

कोविड-19 की दवा रेमडीसिविर के लिए सरकार और बिल गेट्स फाउण्डेशन की मिलीभगत

-- गिरीश मालवीय

कोरोना की एक दवाई मिल गयी है, जिसमें अमरीका को उम्मीद की किरण दिख रही है उस दवा का नाम है-- रेमडीसिविर। अमरीकी वैज्ञानिकों ने कहा है कि इबोला के खात्मे के लिए तैयार की गयी दवा रेमडीसिविर कोरोना वायरस के मरीजों पर जादुई असर डाल रही है। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के सलाहकार डॉक्टर एंथनी फाउसी कह रहे हैं, "आँकड़े बताते हैं कि रेमडीसिविर दवा का मरीजों के ठीक होने के समय में बहुत स्पष्ट, प्रभावी और सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।" रेमडीसिविर के बारे में अब अखबार लिख रहे हैं कि डॉक्टर फॉउसी के इस ऐलान के बाद पूरी दुनिया में खुशी की लहर फैल गयी है।

दरअसल पहले डील जम नहीं पा रही थी। अब डील जमती नजर आ रही है, कुछ दिनों पहले इसी दवाई के बारे में खबर आई थी कि रेमडीसिविर के कोरोना में फेल होने की रिपोर्ट को डब्लूएचओ ने अपने वेबसाइट पर विस्तार से प्रकाशित किया था। कुछ घण्टे के बाद में इस रिपोर्ट को डब्लूएचओ ने स्वयं ही हटा दिया। इस पर सफाई देते हुए डब्लूएचओ ने कहा कि ड्राफ्ट रिपोर्ट गलती से अपलोड हो गयी थी, इसलिए रिपोर्ट को हटा लिया गया। यानी साफ था कि पहले डील नहीं जमी, अभी डील जम गयी है।

शुरू से डब्लूएचओ ने कोरोना के लिए चार दवाओं के ट्रायल पर फोकस किया था। पहली है-- एंटीवायरल रेमडीसिविर, दूसरी थी-- हाइड्रोक्सीक्लोरोक्वीन और एचआईवी की दो दवाओं लोपिनाविर और रिटोनाविर का कॉबिंनेशन। बाद में जापान की टोयोमा केमिकल की दवा फेविपिराविर को भी शामिल किया गया। अब इस दौड़ में रेमडीसिविर आगे निकल रही है। इस दवाई को बनाने की कहानी भी बहुत दिलचस्प है।

रेमडीसिविर दवा की खोज 2010 के दशक के मध्य में हुई थी। शुरुआत में जानवरों पर किये गये टेस्ट से सिद्ध हुआ था कि यह दवा इबोला के इलाज में सटीक काम करेगी। लेकिन अफ्रीकी देश कॉन्गो में हुए तीसरे चरण के बड़े परीक्षण के दौरान पता चला कि यह दवा इबोला को पूरी तरह ठीक कर पाने में उतनी कारगर नहीं है। इसके बाद इस दवा की उपयोगिता बेहद कम रह गयी थी। इसे भुला दिया गया लेकिन कोरोना के सार्स और मर्स से काफी मिलने के कारण माना जा रहा है कि यह दवा कोरोना के इलाज में कारगर साबित होगी। हाल ही में वॉशिंगटन में कोविड-19 के एक पीड़ित की जब हालत खराब हो गयी तो उसे यह दवा दी गयी। इस दवा के बाद इस पीड़ित की हालत में जबरदस्त सुधार हुआ। दी न्यू इंग्लैण्ड जरनल ऑफ मेडिसिन में यह केस रिपोर्ट किया गया है। इसके अलावा कैलिफोर्निया में भी डॉक्टरों ने दावा किया है कि एक मरीज को इस दवा से लाभ हुआ और वो पूरी तरह से ठीक हो गया। अमरीका के शिकागो शहर में कोरोना वायरस से गम्भीर रूप से बीमार 125 लोगों को रेमडीसिविर दवा दी गयी जिसमें से 123 लोग ठीक हो गये थे। इसके बाद राष्ट्रपति ट्रम्प ने ऐलान किया था कि रेमडीसिविर एक ऐसी दवा है, जिससे कोरोना के खात्मे की सम्भावना देखी जा रही है। डब्ल्यूएचओ के सहायक महानिदेशक ब्रूस आयलवर्ड ने भी कहा था कि रेमडीसिविर ही एकमात्र ऐसी दवा है जिसे उनका संगठन 'वास्तविक प्रभावकारी' मानता है।

लेकिन इस ड्रग को बनाने वाली कम्पनी गिलियड साइंसेज के साथ एक समस्या है। 23 मार्च को अमरीका के फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन विभाग ने इस दवा को 'ओर्फान ड्रग' का दर्जा दिया। यह दर्जा उन दवाओं को दिया जाता है जिनमें किसी रोग को ठीक कर सकने की सम्भावित क्षमता दिखाई देती है। इन्हें ओर्फान या अनाथ इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनका व्यावसायिक उत्पादन रुका होता है और इसके लिए सरकारी सहयोग की जरूरत होती है, इस दर्जे की वजह से गिलियड साइंसेज कम्पनी को कई रियायतें मिलेंगी। जैसे सात साल तक बाजार में दवा बनाने का एकाधिकार। साथ ही टैक्स में भी छूट मिलती है जिसका उपयोग दवा को विकसित करने में किया जा सके।

लेकिन गिलियड साइंसेज ने अमरीकी एफडीए रेमडीसिविर के लिए 'ओर्फान ड्रग' पदनाम छोड़ने का निर्णय लिया है। सम्भवतः गिलियड साइंसेज चीन सरकार के सहयोग से चीन में इसी दवा का क्लीनिकल परीक्षण कर चुकी है। इस दवा को चीन में कोरोना से संक्रमित लोगो के ऊपर बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया गया है।

आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि इस दवा के पीछे चीनी कम्पनियाँ भी पड़ी हुई हैं। जिस जगह से यह वायरस फैला है, वही इंस्टिट्यूट इस दवा के लिए पेटेंट प्रस्तुत कर चुका है। वह भी तब, जब दुनिया इस बीमारी के बारे में ही नहीं जानती थी। 21 जनवरी 2020 को वुहान इंस्टीट्यूट ऑफ वायरोलॉजी ने पीपुल्स लिबरेशन आर्मी अकादमी के सैन्य चिकित्सा संस्थान के साथ यह पेटेंट आवेदन संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया था और इसका उद्देश्य चीन के राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना बताया था। खास बात यह है कि 21 जनवरी तक दुनिया इस बीमारी के बारे में परिचित ही नहीं हुई थी।

रेमडीसिविर के साथ दो और मसले भी हैं, पहला कि यह दवा बहुत महँगी है और दूसरा इस दवा का इस्तेमाल बिमारी के लक्षण नजर आते ही नहीं किया जा सकता। इस दवा का इस्तेमाल सिर्फ वायरस के पूरी तरह से सक्रिय होने पर ही किया जाता है। कुल मिलाकर 80-85 प्रतिशत मरीजों को यह दवा देना सम्भव नहीं होता है।

जो लोग सोच रहे हैं कि भारत में यह सस्ती मिलेगी, उन्हें जान लेना चाहिए कि गिलियड ने 2017 में भारत में "फाइलेरोविडे संक्रमण के इलाज के लिए यौगिक" के लिए एक पेटेंट आवेदन दायर किया था और रेमडीसिविर पर भारतीय पेटेंट हाल ही में 18 फरवरी 2020 को दिया गया है। विशेषज्ञ कहते है कि कोरोनो वायरस फाइलेरोविडे परिवार का ही हैं।

इस रेमडीसिविर पुराण का परायण आपने किया, इसका धन्यवाद। निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि बड़ी फार्मा कम्पनियाँ पूरा गेम सेट कर चुकी हैं।

संक्षेप में रेमडीसिविर दवा का किस्सा इस तरह है।

1) रेमडीसिविर अमरीका में बायोफार्मास्युटिकल कम्पनी गिलियड साइंसेज द्वारा विकसित एक एंटीवायरल दवा है। हाल ही में अमरीकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफडीए) ने रेमडीसिविर को ऐसे मरीजों के आपातकालीन उपचार के लिए अधिकृत किया गया है, जो कोविड-19 की गम्भीर बीमारी के चलते अस्पताल में भर्ती हैं।

2) दिलचस्प बात यह है कि एक समझौते के तहत रेमडीसिविर का पेटेंट चीन और गिलियड साइंसेज के पास है, गिलियड साइंसेज एक अन्य सहायक कम्पनी युनिटैड (यूएनआईटीएआईडी) के साथ दवा पेटेंट साझा करती है। यह एक संयोग ही है कि युनिटैड का चीन के वुहान में एक जैव अनुसंधान कार्यालय है।

3) क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि युनिटैड में मुख्य वित्तीय योगदानकर्ता कौन हैं? अरबपति बिल गेट्स, मेलिण्डा गेट्स और जॉर्ज सोरोस। युनिटैड के बोर्ड में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) की एक स्थायी सीट है। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि कम्पनी बोर्ड में डब्लूएचओ के हित का प्रतिनिधित्व कौन करता है? श्री रेन मिंगहुई जो चीन की संस्था हेल्थ एण्ड फेमिली कमेटी के भूतपूर्व डायरेक्टर जनरल है! बिल गेट्स ने हाल ही में डब्ल्यूएचओ की फंडिंग को बन्द करने पर अमरीकी सरकार की आलोचना की थी। बिल गेट्स ने ऐसा क्यों किया? क्या वे डब्लूएचओ के माध्यम से युनिटैड में अपनी सहायक कम्पनियों के लिए लॉबिंग कर रहे हैं!

4) 2014 में गिलियड साइंसेज 'हिलेरी क्लिंटन' नाम के राजनीतिक अभियान को चन्दा देने वाली एक प्रमुख संस्था थी। 'हिलेरी क्लिंटन' ओबामा प्रशासन की पैरवी करने वाला एक पे बैक अभियान था, ओबामा शासन में अमरीका ने 3.7 मिलियन डॉलर का अनुदान वुहान इंस्टीट्यूट ऑफ वायरोलॉजी को दिया गया था। चीन की इस प्रयोगशाला को यह अनुदान अमरीकी करदाताओं के पैसे से दिया गया। आप जानते हैं कि इस अनुदान को देने के लिए किसने हस्ताक्षर किया था? एंथोनी फौसी, जिन्हें हाल ही में ट्रम्प ने कोविड-19 पर अपना सलाहकार नियुक्त किया है।

5) एक अजीब संयोग है कि 2 दिसम्बर, 2014 को राष्ट्रपति बराक ओबामा ने संयुक्त राज्य अमरीका में अपने नागरिकों को हवा के जरिए फैलने वाली महामारी के लिए तैयार रहने की चेतावनी दी थी। आश्चर्य है कि वह इस साल फैले कोविड-19 के बारे में पहले से कैसे जान गये थे। यह सब एक सुनियोजित मिलीभगत लगती है। वायरस और उसके बाद के कोविड-19 वैक्सीन का विकास सब कुछ पिछले 5 वर्षों की योजना और कड़ी मेहनत का परिणाम हो सकता है। यानी एक ऐसा जानबूझकर किया गया कार्य जो एक करोड़ इनसान (मात्र) की जिन्दगी को निगलकर अरबों डॉलर का मुनाफा बनाने की स्वार्थपूर्ण प्रेरणा हो सकती है!

6) 2017 में गिलियड साइंसेज ने भारत सरकार के साथ रेमडीसिविर के लिए एक पेटेंट दायर किया और इसे सरकार ने फरवरी 2020 में मंजूरी दे दी। भारत में पेटेंट दाखिल करने से पहले अजीब संयोग यह है कि बिल गेट्स ने भारत का दौरा किया और भारतीय प्रशासन के साथ मुलाकात भी की। क्या वह गिलियड साइंसेज में अपने निजी निवेश की पैरवी कर रहे थे या भारत सरकार और प्रशासन के साथ मिलीभगत करके किसी गोपनीय एजेण्डे को आगे बढ़ा रहे थे।

7) यह भी अजीब है कि इसी गिलियड ने 2003 में सार्स के इलाज के लिए एक फार्मुलेशन बनाया था और बाद में उसे रॉश को बेच दिया था और सार्स के चीन में फैलने के बाद वे टेमीफ्लू के साथ तैयार थे।

बिल गेट्स का भारत पर परोपकारी हाथ

इस सीरीज की शुरुआत अक्टूबर-2019 के मध्य में एक 'इवेंट 201' नाम के वैश्विक महामारी पर एक स्वांग का अभ्यास (सिमुलेशन ग्लोबल पेनडेमिक एक्सरसाइज) से हुई थी। इसे बिल एण्ड मेलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन और वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के सहयोग से आयोजित किया गया था। याद रहे कि चीन में पहला कोरोना का केस 17 नवम्बर 2019 को सामने आया था।

इस इवेंट से लगभग 20 दिन पहले यानी 25 सितम्बर 2019 को पीएम नरेन्द्र मोदी को न्यूयॉर्क में प्रतिष्ठित ग्लोबल गोलकीपर्स अवॉर्ड से सम्मानित किया गया था। यह अवॉर्ड उन्हें सफल स्वच्छता अभियान के लिए दिया गया। इस अवार्ड के प्रायोजक थे-- बिल एण्ड मिलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन। मोदी जी को यह सम्मान खुद बिल गेट्स ने अपने हाथों से दिया था।

यह तो थी 20 दिन पहले की बात। अब कमाल की बात यह है कि बिल गेट्स इस 'इवेंट 201' के महीने भर बाद भारत दौरे पर भी आये। सरकार की तरफ से जो इसकी आधिकारिक प्रेस विज्ञप्ति जारी की गयी। वह इसकी कहानी कहती है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा पृथ्वी विज्ञान मंत्री डॉ हर्ष वर्धन और माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स की मीटिंग नयी दिल्ली स्थित स्वास्थ्य मंत्रालय में हुई थी। आने वाले समय में आयुष्मान भारत योजना में हेल्थ एण्ड वेलनेस सेंटर्स पर हम उनके साथ मिलकर काम करना चाहते हैं। डॉ हर्ष वर्धन ने कहा कि उन्होंने बिल गेट्स को सुझाव दिया है कि भारत इस समय नेशनल डिजिटल हेल्थ मॉडल को पूरी दुनिया में लीड कर रहा है और 30 देशों ने हमारे नेतृत्व में इस मुहिम में शामिल होने का आश्वासन भी दिया है। डब्लूएचओ ने नेशनल डिजिटल हेल्थ मॉडल के लिए अलग से एक सेल खोल दिया है। इसी सन्दर्भ में मंत्रालय ने बिल एण्ड मेलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन के साथ औपचारिक मेमोरेण्डम ऑफ अण्डरस्टैंडिंग (एमओयू) पर हस्ताक्षर किया। हर्षवर्धन और बिल गेट्स की मौजूदगी में एमओयू पर हस्ताक्षर मंत्रालय में संयुक्त सचिव (अन्तरराष्ट्रीय स्वास्थ्य) लव अग्रवाल और बिल एण्ड मेलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन (बीएमजीएफ, एक एनजीओ) के भारत स्थित कार्यालय के निदेशक एम हरि मेनन ने किये।

इस एमओयू में क्या प्रस्ताव था हम नहीं जानते। 'नेशनल डिजिटल हेल्थ मॉडल' क्या है? हम वह भी नहीं जानते। लेकिन बिल गेट्स को उनकी कौन सी योग्यता के कारण शामिल किया गया? यह हम जानते हैं। वह योग्यता है-- उनकी डाटा साइंस में विशेषज्ञता और लगभग मोनोपोली! यहाँ से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'आरोग्य सेतु' जैसे एप से जो अरबों की संख्या में डाटा आयेगा, उसके विश्लेषण का ठेका किसे मिला होगा?

जनवरी 2020 में खबर आती है कि जिस एमओयू पर नवम्बर 2019 में हस्ताक्षर किये गये थे, उसको 'पूर्व प्रभाव' से मंजूरी दे दी गयी है। इस 'पूर्व प्रभाव' शब्द पर विशेष रूप से ध्यान दीजिए, इसका अर्थ है-- एमओयू से पहले इस प्रोजेक्ट पर जो भी काम इस फाउण्डेशन ने किये होंगे, उसे पूर्व प्रभाव से यह अनुमति दे दी गयी कि वह सब मान्य होंगे। यह सब बेहद हैरान करने वाला घटनाक्रम है।

जैसे ही कोरोना का संक्रमण भारत में शुरू हुआ बिल एण्ड मिलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन की तरफ से बिहार को 15,000 कोरोना टेस्ट किट मुहैया कराए गये। जब नवम्बर 2019 में बिल गेट्स भारत आए, तो वे बिहार भी गये थे। दरअसल बिहार सरकार ने पब्लिक हेल्थ एडमिनिस्ट्रेशन के लिए बिल ऐण्ड मिलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन के साथ सहयोग करने की इच्छा जतायी थी। इसके तहत उष्ण कटिबंधीय और संक्रामक रोगों से निपटने के लिए विशेष रूप से काम किये जाने की बात की गयी और इन बीमारियों पर पैनी नजर रखने के लिए तकनीक का भी सहारा लेने की बात की गयी। यानी यहाँ भी वही पब्लिक हेल्थ में डाटा साइंस!

संक्रामक रोगों में बिल गेट्स की रुचि जितनी पुरानी है, उतने ही पुराने बिहार से बिल गेट्स के सम्बन्ध है। जब बिल गेट्स ने 2010 में इस दशक को 'टीकाकरण के दशक' का नाम दिया था, तो उसके तुरन्त बाद 2010 में बिल गेट्स ने बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के साथ एक करार किया था, जिसके तहत राज्य में पोलियो, काला अजार, टीबी और कुपोषण जैसी बीमारियों से लड़ने के लिए गेट्स की परोपकारी संस्था ने 8 करोड़ डॉलर की राशि प्रदान की थी। दरअसल बिहार में मातृत्व मृत्यु दर देश में सबसे ज्यादा है। इस भागीदारी का उद्देश्य अगले पांच वर्षों में बच्चों और माताओं की मृत्यु दर में 40 प्रतिशत तक की गिरावट लाना बताया गया था, वैसे आपको बता दूँ कि परिवार कल्याण के क्षेत्र में बिल गेट्स साहब ने अफ्रीका में बड़े-बड़े झण्डे गाड़े है।

न सिर्फ बिहार में बल्कि उत्तर प्रदेश में भी बिल गेट्स फाउण्डेशन बहुत सक्रिय रूप से काम कर रहा है। आपको जानकर बेहद आश्चर्य होगा कि जिस जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी के साथ मिलकर बिल गेट्स वैश्विक महामारी पर अभ्यास (ग्लोबल पेनडेमिक एक्सरसाइज) करते हैं, उसी जॉन हॉपकिन्स संस्थान के साथ मिलकर बिल गेट्स एण्ड मिलिण्डा फाउण्डेशन, 26 जुलाई 2019 को लखनऊ में यूपी की सार्वजनिक स्वास्थ्य की व्यवस्था सुदृढ़ करने के लिए एक सेमिनार आयोजित करता है जिसकी अध्यक्षता करते हैं चिकित्सा स्वास्थ्य मंत्री सिद्धार्थ नाथ सिंह। कमाल है न।

बिल गेट्स फाउण्डेशन द्वारा संचालित टीकाकरण कार्यक्रम की हकीकत

डब्ल्यूएचओ कई बार कह चुका है कि बिना प्रभावी वैक्सीन या दवा के कोरोना वायरस पर काबू पाना मुश्किल है। संयुक्त राष्ट्र का भी कहना है कि सामान्य जीवन में लौटने के लिए वैक्सीन ही एकमात्र विकल्प है। तो सारी आशाएँ आज भी आखिर वैक्सीन पर ही टिकी है और उसके एक ही बड़े खिलाड़ी हैं बिल गेट्स।

रॉबर्ट एफ केनेडी जूनियर का भारत के टीकाकरण प्रोग्राम से जुड़ा दावा बिलकुल सच था। 7 अप्रैल 2020 को अपनी इंस्टाग्राम पोस्ट में उन्होंने दावा किया कि गेट्स फाउण्डेशन द्वारा दूरदराज के भारतीय प्रान्तों में 23,000 युवा लड़कियों पर ग्लैक्सो स्मिथ क्लाइन (जीएसके) और मर्क द्वारा विकसित प्रयोगात्मक एचपीवी टीकों के परीक्षण के लिए फंडिंग की गयी थी। जिसमें लगभग 1,200 को गम्भीर दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ा था, जिसमें ऑटोइम्यून और प्रजनन सम्बन्धी विकार शामिल हैं और सात की मौत भी हो गयी थी। भारत सरकार की जाँच में यह सामने आया था कि गेट्स द्वारा की गयी फंडिंग से शोधकर्ताओं ने व्यापक नैतिक उल्लंघन किये थे। मुकदमे में गाँव की कमजोर लड़कियों पर दबाव डालना, माता-पिता को धमकाना, सहमति के लिए मजबूर करना और घायल लड़कियों की चिकित्सा देखभाल से इनकार करने जैसे आरोप लगाये गये थे।

2013 में 'आज तक' में अनु जैन रोहतगी ने एक रिपोर्ट लिखी, जिसमें उन्होंने बताया कि कम उम्र की लड़कियों पर 'ह्यूमन पैपीलोमा वायरस' वैक्सीन का क्लीनिकल ट्रायल विवादों में घिर गया है। संसदीय स्वास्थ्य समिति ने इस ट्रायल को बिलकुल गलत और नियमों के खिलाफ बताया है। सर्वाइकल कैंसर से बचने के लिए इस्तेमाल होने वाले इस वैक्सीन के ट्रायल के दौरान कई लड़कियों की मौत भी हो गयी थी। 31 सांसदों की संसदीय स्वास्थ्य समिति ने अपनी 44 पेज की रिपोर्ट में इस ट्रायल को गलत, नियमों से परे और सरकारी एजेंसियों की लापरवाही का नमूना बताया था। समिति ने ट्रायल करने वाली विदेशी कम्पनी पैथ के साथ आईसीएमआर और ड्रग कंट्रोलर ऑफ इंडिया के अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई करने को कहा है।

बिग मनी, बिग फार्मा और बिग करप्शन

आज से दो साल पहले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गर्भ नाल से जुड़े संगठन स्वदेशी जागरण मंच ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को पत्र लिखकर एक अजीब सी माँग की कि हितों में टकराव के आधार पर नचिकेत मोर को भारतीय रिजर्व बैंक के बोर्ड से हटाया जाये।

आप कहेंगे कि यहाँ नचिकेत मोर का क्या काम? अर्थतंत्र से जुड़े लोग नचिकेत मोर को एक बैंकर के बतौर जानते हैं। उन्होंने कुछ समितियों का नेतृत्व भी किया है जिनकी सिफारिशों के आधार पर जनधन योजना जैसी बड़ी और महत्त्वपूर्ण योजना की परिकल्पना की गयी थी।

आपकी जानकारी के लिए बता दूँ कि 2016 के मध्य से 2019 तक नचिकेत मोर बिल एण्ड मेलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन (बीएमजीएफ, एक एनजीओ) के अध्यक्ष थे, कमाल की बात यह है कि इस पद पर रहते हुए भी उन्हें मोदी सरकार ने आरबीआई के केन्द्रीय बोर्ड के सदस्य के रूप में नियुक्ति दे दी थी, जबकि मोदी सरकार लगातार बड़े एनजीओ के पर कतरने का काम करती आयी थी तो फिर नचिकेत मोर में ऐसा क्या खास था? मंच के सह-संयोजक ने भी नचिकेत मोर के खिलाफ मोदी को पत्र लिखा। उन्होंने पत्र में लिखा है, "गृह मंत्रालय बीएमजीएफ पर इन आरोपों के कारण नजर रख रहा है कि यह फाउण्डेशन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए काम कर रहा है ताकि स्वास्थ्य और कृषि क्षेत्रों में सरकारी नीतियों को उनके पक्ष में प्रभावित कर सके।" ध्यान दीजिए "स्वास्थ्य और कृषि क्षेत्रों में"। "हाल में मीडिया में कुछ खबरें आयी थीं जिनमें आरोप लगाये गये थे कि बीएमजीएफ ग्लोबल हेल्थ स्ट्रेटेजीज (जीएचएस) नाम के एक एनजीओ को फंडिंग कर रहा है ताकि वह भारत में वैश्विक तौर पर व्यर्थ दवाएँ इस्तेमाल करने के लिए जरूरी प्रयास करे।" यहाँ एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात हमें पता लगती है जो बिल गेट्स फाउण्डेशन द्वारा तथाकथित रूप से किये जा रहे 'परोपकार' की पोल खोलने के लिए पर्याप्त है और वो है वैश्विक तौर पर व्यर्थ दवाओं को भारत में इस्तेमाल किये जाने का प्रयास करना। ये सब तथ्य आरएसएस के एक सबसे महत्त्वपूर्ण संगठन स्वदेशी जागरण मंच के हैं। आप चाहें इन्हें झुठला दीजिये!

2017 में टीकाकरण के मामले में बिल एण्ड मेलिण्डा गेट्स फाउण्डेशन का भारत में भण्डा फूट चुका था। 2017 में बिल गेट्स और भारत सरकार के बीच हुआ एक अहम करार तोड़ दिया गया। ये करार इम्युनाइजेशन टेक्निकल सपोर्ट यूनिट (आईटीएसयू) से जुड़ा हुआ था। दरअसल गेट्स फाउण्डेशन पिछले कई वर्षों से इम्युनाइजेशन टेक्निकल सपोर्ट यूनिट के लिए फंडिंग कर रहा था। जिसके तहत करीब 2.7 करोड़ शिशुओं का हर साल टीकाकरण किया जाता था। गेट्स फाउण्डेशन राजधानी में टीकाकरण के काम को देखता था, उसकी रणनीति तय करता था और सरकार को सलाह देता था।

सामाजिक जनवाद की सनक

-- माइकल डी येट्स

(अमरीका में सामाजिक जनवाद के बड़े चेहरे 'बर्नी सैण्डर्स' को अन्त में राष्ट्रपति के प्रत्याशी से खुद को हटा देना पड़ा। यह उन ताकतों के लिए जोरदार झटका है जो मौजूदा नवउदारवादी दौर में सामाजिक जनवाद का झण्डा उठाये हुए हैं। दूसरी ओर, कोरोना महामारी के दौर में लॉकडाउन के चलते दुनिया भर के मजदूर वर्ग और दूसरे गरीब तबकों पर भारी मार पड़ी है, उनकी मदद के लिए एक बार फिर कल्याणकारी लोक-लुभावनवादी कार्यक्रमों की माँग उठ रही है। इस तरह पूँजीवाद के अन्दर ही समस्या के समाधान को पेश किया जा रहा है। इससे जरूर ही सामाजिक जनवादी तर्कों को बल मिलेगा। लेकिन लेखक ने यहाँ साफ तौर पर दिखाया है कि ऐतिहासिक रूप से सामाजिक जनवाद दिवालिया हो चुका है और वह दुनिया को कोई बेहतर भविष्य उपलब्ध नहीं करा सकता, सिवाय पूँजीवाद की सेज पर खुद को नग्न परोसने के।)

आज कल संयुक्त राज्य अमरीका में सामाजिक जनवाद या जनवादी समाजवाद में एक उभार आया है (मैं इन शब्दों का इस्तेमाल एक-दूसरे के स्थान पर रखकर करता हूँ, कम से कम अमरीका में मैं उनके बीच बहुत अन्तर नहीं पाता)। सामाजिक जनवाद की मुख्य धारा डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट ऑफ अमरीका (डीएसए) है, जिसके पूरे राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन इस तरह व्यक्त किया जा सकता है जैसा मैं आगे बताने जा रहा हूँ। अल्पावधि में उत्पादन और वितरण की मौलिक रूप से नयी प्रणाली की कोई सम्भावना नहीं है और क्रान्तिकारी उथल-पुथल के माध्यम से तो बिलकुल नहीं। पूँजीवाद से समाजवाद में केवल एक दीर्घकालिक शान्तिपूर्ण संक्रमण से जाना सम्भव है। ऐसा विकास चुनावी राजनीति के जरिये ही हासिल करना है। संयुक्त राज्य अमरीका में दो दलीय प्रणाली के शिकंजे को देखते हुए जो लोग समाजवाद की आशा करते हैं, उन्हें इनमें से अधिक उदार के अन्तर्गत काम करना चाहिए, डेमोक्रेटिक पार्टी, सक्रिय रूप से समर्थन कर रही है और अन्ततः कांग्रेस और राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित होने वाली है, जिसे डीएसए के कुछ दिग्गज "सामाजिक जनवादियों का वर्ग- संघर्ष" कहते हैं। क्रान्तिकारी परिवर्तन के ये बहादुर, जब उनकी संख्या पर्याप्त होगी और उनके पास एक मजबूत लोकप्रिय जनादेश होगा तो वे राज्य का उपयोग अमीरों और निगमों की शक्ति को धीरे-धीरे नष्ट करने और उन्हें मजदूरों और सामुदायिक मालिकाने वाली सहकारी समितियों में तब्दील करने के लिए करेंगे। इस बीच सरकार ऐसा कानून बनाएगी जिसका वित्तपोषण नये मुद्रित धन को केन्द्रीय बैंक के जरिये सार्वजनिक खजाने में भरने के साथ ही आय और सम्पत्ति दोनों पर तीव्र आरोही करों द्वारा होगा, जो हर नागरिक को आधुनिक जीवन की कई गुलेलों और तीरों के खिलाफ एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है। सभी के लिए चिकित्सा, मुफ्त शिक्षा, बड़े पैमाने पर रहने योग्य सार्वजनिक आवास, कार्बन उत्सर्जन कम करने वाली और सार्वजनिक रोजगार पैदा करने वाली एक महत्त्वाकांक्षी ग्रीन न्यू डील, नौकरी में वापसी और बहुत विस्तारित और सस्ता सार्वजनिक परिवहन हमें अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए अधिक खुश, अधिक उत्पादक और अधिक मुक्त बनाएँगे।

आगे उनका मानना है कि जैसे-जैसे सामाजिक जनवाद की सफलता सामने आ जाती है और हमारी सामान्य अपेक्षाओं का हिस्सा बनती जाती है तो उत्पादन के साधनों और खुद राज्य, दोनों पर निजी मालिकाने के क्षीण हो जाने के साथ ही धीरे-धीरे पूर्ण समाजवाद की ओर बढ़ना सम्भव हो जायेगा। मैंने इस बारे में कोई विवरण तो नहीं देखा है, लेकिन किसी ने सोचा होगा कि कार्यस्थलों की पदानुक्रमित संरचना धीरे-धीरे सत्ता की अधिक क्षैतिज संरचना के लिए रास्ता छोड़ देगी। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इसी जैसे सामाजिक जनवादी देश वैश्विक संचालक एजेंसियों के साथ पारस्परिक रूप से लाभकारी व्यापार में संलग्न होंगे, जो वैश्विक स्तर पर अन्योन्याश्रित दुनिया में जारी रहेगा।

सामाजिक जनवाद की वंशावली उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मूल कम्युनिस्ट आन्दोलन में हुई फूटों तक जाती है, जिसे जन्म देने में मार्क्स और एंगेल्स ने मदद की थी। एक तरफ वे थे जो वर्ग संघर्ष के जरिये मजदूर वर्ग की आत्म-मुक्ति की मार्क्सवादी दृष्टि के प्रति सच्चे थे और जो सशस्त्र आत्म-रक्षा और सम्भावित हिंसक क्रान्ति से पीछे नहीं हटते थे। दूसरे वे थे जो मानते थे कि पूँजीवाद से समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण बंधनमुक्त मानवता के सपने को साकार करने का एक यथार्थवादी तरीका है।

इन मतभेदों ने इस संक्षिप्त निबंध के दायरे से परे एक जटिल इतिहास को जन्म दिया है। हालाँकि, इसके कुछ मुख्य बिन्दुओं का जिक्र किया जा सकता है।

पहला, सबसे मजबूत सामाजिक जनवादी पार्टी जर्मनी में थी। हालाँकि, जैसा कि अपरिहार्य है, जब सामाजिक जनवादियों ने चुनाव के जरिये सफलता हासिल करनी शुरू की, जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी (एसपीडी) में एक ऐसी पार्टी नौकरशाही तैयार हो गयी जिसमें विशिष्ट प्राधिकार हमेशा उच्च लोक पद के पास होते हैं। इसके चलते पार्टी की कतारों से इनकी आजादी बढ़ती जाती है, उसी तरह जैसे संयुक्त राज्य अमरीका में मजदूर यूनियन के नौकरशाह अपने सदस्यों से दूर हो गये हैं।

दूसरा, एक ऐसे समाज में जहाँ पूँजीवाद हावी है, जहाँ सेना और पुलिस निजी सम्पत्ति की रक्षा के लिए दृढ़तापूर्वक प्रतिबद्ध हैं, वहाँ वामपंथी पार्टियों को राज्य द्वारा स्थापित न्यूनतम पार्टी कार्यक्रम स्वीकार करने के लिए अपने मूल सिद्धान्तों के साथ अनिवार्य रूप से समझौते करने चाहिए। जब जर्मनी प्रथम विश्व युद्ध में शामिल होने का इरादा कर रहा था तब एसपीडी ने सरकार को लड़ाई के वित्तपोषण के लिए बॉण्ड जारी करने की अनुमति देने के मुद्दे पर घृर्णित रूप से सरकार का पक्ष लिया था। इस तरह, इसने युद्ध में पूरी तरह से भाग लिया और इसे युद्ध में मारे गये उन 90 लाख सैनिकों और उन लाखों नागरिकों की मौत के आरोप में भी हिस्सेदार होना चाहिए, जिनमें से अधिकांश मजदूर और किसान थे, ये वही लोग थे जिन्होंने सम्भवतः एसपीडी को विजेता बनाया था।

वर्ग शत्रुओं के साथ समझौता करने का एक और भयावह उदाहरण तब सामने आया जब स्वीडिश सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी, जो पहली बार 1930 के दशक में सत्ता में आयी थी, उसने यह स्थापित करना शुरू किया कि आखिरकार दुनिया में प्रगतिशील सामाजिक जनवाद का सबसे अच्छा उदाहरण कौन बनेगा, इसने पहले और दूसरे विश्व युद्ध के दौरान नाजियों से समझौता किया। जैसा कि क्रान्तिकारी लेखक लुईस प्रोएक्ट लिखते हैं--

> जर्मनी, जो पहले ही डेनमार्क और नॉर्वे पर जीत हासिल कर चुका था, उसके साथ युद्ध से बचने के लिए स्वीडन ने अपनी धरती पर नाजी दस्तों के आन्दोलनों के प्रति बहुत ही लचीला रवैया अपनाया। 8 जुलाई, 1940 को दोनों राष्ट्रों ने एक समझौता किया, जो नाजी युद्ध योजनाओं के लिए उपयोगी साबित हुआ। स्वीडिश रेलों से हर महीने लगभग 30,000 नाजी सैनिकों को ढोया गया और नाजी आयुध से भरी 1500 रेल भी इसी रेलवे से ले जायी गयी।
>
> 26 जून, 1941 को, जिस दिन फिनलैण्ड सोवियत संघ के खिलाफ युद्ध में शामिल हुआ, उसी दिन स्वीडन ने ऑपरेशन बारब्रोसा के नाम पर 15,000 नाजी सैनिकों से भरी रेलों को पूर्व की ओर जाने की अनुमति दी। उसी वर्ष 22 जून से 1 नवम्बर के बीच स्वीडिश रेलें 75,000 टन जर्मन युद्ध सामग्री को उसी दिशा में लेकर गयीं। मोर्चे से वापस आने के बाद ये रेल, नॉर्वे पर कब्जा करने के दौरान घायल हुए नाजी सैनिकों को ओस्लो के अस्पतालों में लेकर गयी जहाँ उनका तब तक इलाज किया गया जब तक कि वे कत्लगाहों में वापस जाने लायक नहीं हो गये। स्वीडिश अधिकारियों ने वेहरमैच की फौजों के लिए आधार शिविर भी स्थापित किये और उनमें भोजन, तेल और दूसरी सभी जरूरतों की पूर्ण आपूर्ति की। और इस पूरे समय के दौरान जर्मन लड़ाकू विमानों ने रूस जाने के लिए स्वीडिश हवाई क्षेत्र का इस्तेमाल किया। स्वीडन जर्मनी के लिए और ज्यादा प्यारा इसलिए भी था कि उसने एक हजार से ज्यादा ट्रक जर्मनी को बेचे या पट्टे पर दे दिये ताकि यह सुनिश्चित हो जाये कि रूस पर आक्रमण विफल नहीं होगा।

तीसरा, सामाजिक जनवाद ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के लगभग तीन दशकों के दौरान अपनी खुद की प्रगति पर चोट की। यह तब है जबकि ग्रेट ब्रिटेन में बढ़िया राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा (एनएचएस) लागू की गयी थी। "एनएचएस सरकार द्वारा सीधे चलायी जाती है, मुफ्त है और इसमें सभी के लिए सेवाओं की एक विस्तृत प्रभावशाली श्रृंखला शामिल है। यह एक जबरदस्त उपलब्धि है और इसने मेहनतकश वर्ग के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण असुरक्षाओं में से एक को हटा दिया है।" पश्चिमी जर्मनी में भी सामाजिक जनवाद ने सामाजिक सुरक्षा उपायों की एक विस्तृत श्रृंखला और इसी तरह "सह-निर्धारण" की एक प्रणाली भी शुरू की, जिसमें मजदूर यूनियनों और मजदूरों के पास कुछ कानूनी अधिकार और शक्तियाँ थी। "जर्मन व्यवस्था कॉरपोरेटवादी है, जिसका अर्थ है कि श्रम और पूँजी को सामाजिक साझेदार के रूप में देखा जाता है और राज्य उनके सम्बन्धों में आत्मीय ढ़ंग से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए, जर्मन श्रम कानून, संयुक्त राज्य अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन की तुलना में बहुत व्यापक हैं। विस्तृत कानून सामूहिक सौदेबाजी को विनियमित करते हैं, सभी मजदूरों को कुछ निश्चित लाभों की गारंटी देते हैं, अन्यायपूर्ण बर्खास्तगी पर रोक लगाते हैं और सभी राष्ट्रीय आयोगों, एजेंसियों और नीति-निर्माता निकायों में श्रम सम्बन्धी मामलों में यूनियनों की भागीदारी को निर्धारित करते हैं। सह निर्धारण की एक प्रणाली भी मौजूद है, जिसके माध्यम से मजदूर अप्रत्यक्ष रूप से, अपनी यूनियनों के जरिये कॉर्पोरेट निर्णय लेने में भाग ले सकते हैं...।" हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सामाजिक जनवादी

सरकारों के तहत भी पूर्व नाजी सार्वजनिक पदों पर आसीन रहे, जर्मन सेना में अधिकारी रहे और बड़े जर्मन निगमों को चलते रहे।

युद्ध के बाद स्कैंडिनेवियाई राष्ट्रों में सामाजिक जनवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा। वहाँ, यूनियनों के घनत्व के असाधारण उच्च स्तर (अक्सर 80 प्रतिशत से अधिक) ने राष्ट्रीय यूनियन महासंघ और उदयीमान स्वीडिश सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के बीच के घनिष्ठ सम्बन्ध के साथ जुड़कर, उच्च आरोही करों और सार्वजनिक रोजगार के कीन्सवादी कार्यक्रम तथा क्रैडल-टू-ग्रेव(पालने से लेकर कब्र तक) जैसा सामाजिक कल्याण का कार्यक्रम बनाने में मदद की। पूँजी पर मजबूत नियंत्रण ने स्वीडिश पूँजी की पूरी दुनिया में स्वतंत्र आवाजाही को मुश्किल बना दिया। एक उल्लेखनीय सुरक्षा तन्त्र था और बहुत कम बेरोजगारी के बदले में स्वीडिश श्रम ने स्वीडिश पूँजी को उतना आगे नहीं बढ़ाया जहाँ तक कि पूँजी अपनी शक्ति के चलते बढ़ती। इसके बजाय समझौते किये गये ताकि स्वीडिश निर्यात का प्रतिस्पर्धी वैश्विक लाभ कायम रहे। इस मॉडल की कमजोरी को तब देखा जा सकता है जब स्वीडिश सामाजिक जनवाद को रेखांकित करने वाली मेदनेर योजना के हिस्से के रूप में 1970 के दशक में एक श्रमिक निधि प्रस्तुत की गयी थी, जो नये स्टॉक को अनिवार्य रूप से जारी करने के जरिये आती, यह स्टॉक मजदूरों के अधिकार में होता और अन्ततः उन्हें वास्तविक रूप से स्वीडिश निगमों का मालिक बनाता। पूँजी की तरफ से इसका तीव्र विरोध सामने आया और सामाजिक जनवादियों को यह सवाल उठाकर झुकने के लिए मजबूर होना पड़ा कि आदर्श सामाजिक जनवादी राष्ट्र में कभी भी समाजवाद कैसे पैदा हो सकता है।

अमरीका में सामाजिक जनवाद किस हद तक प्रचलित रहा? बहुत ज्यादा नहीं। कुछ सामाजिक कल्याणकारी मानदण्ड लागू किये गये थे, जैसे विस्तारित सामाजिक सुरक्षा लाभ, मेडिकेयर, मेडिकेड, सार्वजनिक आवास (बुरी तरह से अपर्याप्त और खराब गुणवत्ता वाले), भेदभाव-विरोधी कानून, पेशेगत स्वास्थ्य और सुरक्षा कानून और ज्यादा आरोही संघीय कर। पूँजी को एक श्रम-प्रबंधन समझौते के लिए मजबूर किया गया था, लेकिन इसमें स्वीडन या जर्मनी जैसा कुछ नहीं था।

* * *

वर्कर्स फण्ड को ठीक उसी समय आगे किया गया था, जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के पूँजीवादी उछाल ने तनावों से गुजरना शुरू कर दिया था और पूँजी ने अपनी शक्ति को सामाजिक जनवाद को कमजोर करने में लगाने का फैसला किया। इसके लिए पूँजी ने माँग की कि सरकारें धन और भौतिक पूँजी दोनों को कम लागत और उच्च मुनाफे की तलाश में पूरी दुनिया में अधिक स्वतंत्र रूप से आवाजाही करने की अनुमति देकर इनकी गतिविधियों पर नियंत्रणों को ढीला करें। नतीजे के तौर पर अतिसंयमी कर और सरकारी खर्च की नीतियों तथा इनसे जुड़े हुए समाज कल्याण सुरक्षा जाल को कमजोर किये जाने की स्थिति ने अमरीकी मजदूरों पर प्रतिशोध के साथ चोट की। हालाँकि, मजदूर वर्ग पर इसी तरह के हमले हर उस देश में होने लगे जहाँ सामाजिक जनवाद मजबूत था। रूढ़िवादी सरकारें आम हो गयीं, वैश्विक दक्षिण की ओर विनिर्माण की रेलमपेल शुरू हुई, श्रम बाजारों को और अधिक "लचीला" बनाया गया, तथा कीन्सवाद और सामाजिक जनवाद पर एक वैचारिक हमला तत्काल शुरू हुआ। सामाजिक जनवाद कुछ देशों में संकट के बादलों को दूसरों की अपेक्षा दूर रखने में बेहतर ढंग से सफल रहा है, लेकिन यह कहीं भी उन्हें बरसने से नहीं रोक सका। यह खुद को फिर से जीवन्त करने, सत्ता हासिल करने और कल्याणकारी राज्य को फिर से जिन्दा करने में बहुत कम कामयाब रहा है। हाल के ब्रिटिश चुनाव में जेरेमी कॉर्बिन की हार इस बात का पर्याप्त बड़ा प्रमाण है। जले पर नमक छिड़कते हुए, न्यूयॉर्क टाइम्स के हाल ही के एक सम्पादकीय ने फिनलैण्ड को "पूँजीवाद का स्वर्ग" घोषित किया है।

सामाजिक जनवादी या जनवादी समाजवादी अकसर तथ्यों से बेखबर दिखते हैं, "पश्चिमी यूरोप में सामाजिक जनवाद ने विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों में आकार ग्रहण किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अधिकांश यूरोपीय देशों में सोवियत संघ के साथ जुड़े हुए मजबूत कम्युनिस्ट आन्दोलन की मौजूदगी, युद्ध के बाद बड़े पैमाने पर हुए पुनर्निर्माण के बाद तीव्र आर्थिक विकास हुआ जो अमरीकी आर्थिक मदद और अमरीकी निर्यात द्वारा सहायता प्राप्त था, भविष्य के किसी भी क्रान्तिकारीकरण को सह-योजित करने के लिए गैर-कम्युनिस्ट मजदूर यूनियनों के साथ सहयोग करने और रियायतें बरतने की यूरोपीय पूँजी की आवश्यकता तथा पूँजी पर सख्त नियंत्रण और निश्चित मुद्रा विनिमय दर, जिसने राष्ट्रीय विकास को सुगम बनाया। आज हम पूरी तरह से अलग दुनिया में रहते हैं, पूँजी और राज्य सामाजिक जनवाद को खत्म करने, सामाजिक सेवाओं का निजीकरण करने, मजदूर यूनियनों को नष्ट करने और पूँजी की क्षमता को सुनिश्चित करने के लिए एक ऐसे सहजीवी सम्बन्ध में हैं, जो पृथ्वी के हर कोने में और हमारे जीवन के हर हिस्से में पूँजी की हर इच्छा को पूरा करने की क्षमता रखता है।"

और, अब पूँजीवादी साम्राज्यवाद पर विराम लगाने का काम करने के लिए कोई सोवियत संघ या माओवादी चीन नहीं है। सोवियत संघ के पतन और चीन के पूँजीवाद की ओर मुड़ने से पहले दुनिया के लगभग 30 प्रतिशत लोग गैर-पूँजीवादी समाजों में रहते थे। आज यह आँकड़ा 1 प्रतिशत से भी कम है।

और क्या बचा है, जिस तरह अमरीकी सेना का काम उसकी हत्या करना है, जिसे भी हमारे "देशभक्तों" के खिलाफ कहा जा सके और इसीलिए अमरीकी राज्य का उद्देश्य उनको भी दंडित

करना हैंभजो पूँजीवादी समाज के मानदण्डों के अनुरूप नहीं हैं, जिसे "जनता" और "लोकतंत्र" के लिए भी कहा जा सकता है। राज्य राजनीतिक और नौकरशाही संस्थाओं का एक जटिल समूह है, जो आखिकार हम पर नियन्त्रण को सुनिश्चित करने के लिए स्थापित किया गया है, ताकि हम बाजार के हुक्म का पालन करें। ऐसा कोई पूँजीवाद नहीं हो सकता जिसमें अन्तर्विरोधी बाजारों की कोई प्रणाली न हो और जो हिंसक तरीके से अपने उन परिणामों को लागू न करता हो जो हमेशा इस प्रणाली की सीमओं के अन्दर की वे असमानताएँ है जिनका विनाश असम्भव है। फिर भी, हमारे जनवादी समाजवादियों के अनुसार किसी भी तरह से यह राज्य, जो पूँजीवादी समाज में अपनी प्रकृति के चलते ही ऐसा है, वह किसी ऐसी चीज में बदल जायेगा जो कि पूरी तरह अलग है। यह साधारण लोगों का एक मंच बन जाना है। ऐसा कभी नहीं हुआ है और यह विश्वास करने का भी कोई कारण नहीं है कि ऐसा कभी होगा। पूँजी और उसका राज्य साधारण तौर पर सिर्फ इसलिए अपना बौरिया बिस्तर नहीं समेटेंगे और वर्ग संघर्ष में सिर्फ इसलिए हार नहीं मान जायेंगे क्योंकि "सामाजिक जनवादी" लोक पद के लिए चुन लिए गये हैं, भले ही बहुत से लोग उनका समर्थन करें।

सामाजिक जनवादी सम्पूर्णता यानी सामाजिक जनवादी राजनीति, राजनीतिक अर्थव्यवस्था और पर्यावरणीय परियोजनाओं की सम्पूर्णता आशाहीन है। बर्नी सैण्डर्स जैसा कोई किसी चमत्कार से ही राष्ट्रपति बनना चाहिए, अगर वह, उनके राजनीतिक सहयोगी और उनके समर्थकों की विरासत फिर से जीवित हो जाये और सामाजिक कल्याणकारी राज्य का विस्तार कर सके तो यह किसी आश्चर्य से कम नहीं होगा। और क्या ऐसा होगा, यह वास्तव में एक अचम्भा होगा कुछ ऐसा जैसे नास्तिकों को ईसाई धर्म प्रचारकों में तब्दील करना- अगर यह सीधे समाजवाद की ओर ले जाता है।

और जबकि मैं इससे आगे नहीं बढ़ना चाहता, तो सामाजिक जनवादी कार्यक्रम अन्त में पितृसत्तात्मक लगता है। मजदूरों और किसानों को कुछ दिया जायेगा, लेकिन वे वही रहेंगे जो वे हैं, हाँ सुरक्षात्मक राज्य के आलिंगन में थोड़ा ज्यादा खुश रहेंगे। उनकी करीबी नजर अभी उन लोगों के सशक्तीकरण पर नहीं है, जिनका अपने खुद के जीवन पर वश नहीं है। क्या अपनी साझी गतिविधियों के जरिये हमें खुद के सशक्तिकरण पर ध्यान नहीं देना चाहिए, उन गतिविधयों के जरिये जिनमें हम उत्पादन और वितरण करना, अपने खुद के मीडिया का निर्माण करना, अपनी खुद की संस्कृतियाँ रचना, बाजार और राज्य की जबरदस्त शक्ति से स्वतंत्र होना शुरू करते हैं? क्या नस्लवाद, पितृसत्ता, होमोफोबिया, साम्राज्यवाद और पागल देशभक्ति की बीमारियों का सामना अभी नहीं किया जाना चाहिए?

और इस सब के बीच, क्या हमें नयी किस्म के राजनीतिक ढाँचे को गढ़ने के लिए खुद को तैयार करना शुरू नहीं करना चाहिए। ऐसा ढ़ाँचा जो सामुदायिक, सामूहिक, आत्म-निर्भर और खुद का बचाव करने का इच्छुक हो। हमारे सामाजिक जनवादी उत्पादन, वितरण और समुदाय की ऐसी वैकल्पिक धाराओं का प्रचलन कब शुरू करेंगे जैसी अब जैक्सन, मिसिसिपी में, ग्रामीण भारत में, वाया कैंपसीना में, वेनेजुएला के कम्यूनों में, क्यूबा में उन्हीं जैसे शहरी कृषि प्रयासों में, मिनियापोलिस में बनाये जा रहे मजदूर स्कूल जैसे स्कूलों में प्रचलित हैं और कई दूसरे लोगों के प्रयासों के बारे में मुझे पता नहीं है, लेकिन शायद पाठक जानते हैं? उदाहरण के लिए हम यह जोर कब देंगे कि सार्वजनिक भूमि वास्तव में हमारी है और निजी लाभ के लिए इस्तेमाल नहीं की जानी चाहिए? अन्त में, क्या बुद्धिजीवियों को, जो फैसले सुनाते हैं, किताबें लिखते हैं और खुद को सार्वजनिक व्यक्ति के रूप में देखते हैं, खुद को मजदूरों और किसानों की दुनिया में जोड़ते हैं उन्हें सभी के साथ अपनी भी मुक्ति का हिस्सेदार बनकर सीखना और सिखाना नहीं चाहिए?

माइकल डी येट्स 'मंथली रिव्यु प्रेस' के सम्पादकीय निदेशक हैं। उनकी सबसे हालिया पुस्तक है, क्या मजदूर वर्ग दुनिया को बदल सकता है?

(मंथली रिव्यु प्रेस, 2018)

अनुवाद-- प्रवीण

जनता ने राजाओं की क्रूरता से घृणा की।
लेकिन दया की मिठास ने तबाही को जन्म दिया,
और भयभीत राजा वापस आते हैं,
हरेक आता है पूरे तामझाम से,
अपने कारवाँ के साथ-- जल्लाद,
पुजारी, टैक्स वसूलनेवाले,
सैनिक, वकील, प्रभु वर्ग, जेलर
और चापलूस को साथ लिये।

(वाल्ट ह्विटमैन की कविता जिसे न्गूगी वा थ्योंगो ने अपने उपन्यास "खून की पंखुड़ियाँ" के पहले पन्ने पर दर्ज किया है। इसका हिन्दी अनुवाद आनन्द स्वरूप वर्मा ने किया है।)

निगरानी, जासूसी और घुसपैठ : संकटकालीन व्यवस्था के बर्बर दमन का हथकंडा

-- आशुतोष दुबे

सरकार पिछले कुछ महीनों से सभी दूरसंचार कम्पनियों से उनके सभी ग्राहकों के कॉल रिकॉर्ड्स (सीडीआर) माँग रही है। सरकार यह काम दूरसंचार विभाग (डीओटी) की स्थानीय इकाइयों की मदद से कर रही है, जिसमें दूरसंचार विभाग के अधिकारी कम्पनियों से डेटा माँगते हैं। जबकि सीडीआर की जानकारी सुप्रीटेंडेंट ऑफ पुलिस (एसपी) या इससे बड़े स्तर के अधिकारी को ही दी जा सकती है और एसपी को इसकी जानकारी हर महीने जिलाधिकारी को देनी पड़ती है। प्रमुख दूरसंचार कम्पनियों का प्रतिनिधित्व करने वाले सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया (सीओएआई) ने बताया कि सीडीआर की जरूरत के कारणों के बारे में दूरसंचार विभाग ने कुछ नहीं लिखा है। जो सुप्रीम कोर्ट के मानदण्डों का सीधा-सीधा उल्लंघन है। यह निजता के अधिकार (राइट टू प्राइवेसी) का भी हनन करता है, जो प्रत्येक नागरिक का मूलभूत अधिकार है।

सीडीआर की सुविधा के जरिये कॉल करने वाले और कॉल प्राप्त करने वाले व्यक्ति का मोबाइल नम्बर, उनकी भौगोलिक स्थिति, समय, तारीख, उपकरण की पहचान संख्या के साथ-साथ बातचीत की समयावधि और डेटा की कुल मात्रा जैसी अनेक जानकारियाँ सुरक्षित की जाती हैं। इन जानकारियों के आधार पर उससे जुड़े व्यक्तियों के बारे में बहुत आसानी से काफी-कुछ पता लगाया जा सकता है।

इन्टरनेट के व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए ज्यादातर लोग आजकल मोबाइल के सेल्युलर डेटा का इस्तेमाल करते हैं। वह कम्पनी अपने मूल्यवान उपभोक्ता के द्वारा इन्टरनेट पर की गयी हर गतिविधि पर नजर रखती है। ऐसा उसी सेल्युलर कम्पनी द्वारा दिये गये यूनीक नम्बर या आईपी एड्रेस की मदद से किया जाता है जो इन्टरनेट पर आपके सिस्टम (मोबाइल या लैपटॉप) का पहचान क्रमाँक होता है। फोन कॉल और आईपी एड्रेस पर हुई गतिविधि को जोड़ कर देखें तो उस उपभोक्ता का पूरा विवरण निकल आता है। उदाहरण के लिए अगर आप अपने दोस्त से कोई किताब खरीदने की बात व्हाट्सएप पर करते हैं तो यह जानकारी फेसबुक कम्पनी अपने सर्वर पर सुरक्षित रख लेती है, जिसका इस्तेमाल आगे चलकर वह आपको विज्ञापन दिखाने में करती है। यानी आपको उत्पादों, आपके आस-पास के दुकानदारों, दुकानों या कम्पनियों का विज्ञापन आपके मर्जी के बिना दिखाया जाता है। अगर आपने अपना मोबाइल नम्बर फेसबुक से जोड़ रखा है तो आपको किताब विक्रेता के यहाँ से कॉल भी आ सकती है। ठीक इसी तरह, ये मोबाइल और एप्प कम्पनियाँ अपने उपभोक्ताओं की हर गतिविधि की जानकारी रखती हैं। सरकार इन्हीं जानकारियों को हासिल करके अपने विरोधियों की गतिविधि पर नजर रखने की योजना बना रही है, ताकि पूरी राजनीति और देश की सत्ता को अपनी मुट्ठी में रखा जा सके। अगर सरकार या कोई राजनीतिक पार्टी अपनी इस मंशा में पूरी तरह सफल हो जाये, तो ऐसा हो सकता है कि चुनाव प्रणाली महज एक दिखावा रह जाये और लोकतंत्र के बाहरी आवरण के अन्दर तानाशाही कायम हो जाये।

हम सभी जानते हैं कि संचार तकनीकी और कम्प्यूटर के विकास के साथ-साथ सूचना (तथ्य और आँकड़े) को सुरक्षित करना, एक-दूसरे के साथ साझा करना और उन पर गणितीय क्रिया करना आसान हो गया है। इसके विकास के शुरुआती दौर में कुछ जानकारियों को रखना तकनीकी जरूरत थी, जो तकनीकी के विकास के साथ-साथ धीरे-धीरे कम होती चली गयी। मौजूदा समय में संचार स्थापित करने के लिए गैर-पहचान वाले डेटा के न्यूनतम इस्तेमाल से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। तकनीकी के स्तर पर डेटा को सुरक्षित करना अब जरूरी नहीं रह गया है।

नब्बे के दशक में कम्पनियाँ अपने उपभोक्ताओं को बेहतर सुविधाएँ देने के लिए ग्राहकों की व्यवहारिक विश्लेषण (बिहेविअरल एनालिसिस) करती थीं और उसके अनुसार अपनी सेवाओं और उत्पादों में जरूरी बदलाव करती थीं, जिसके परिणाम कम्पनियों के अनुकूल आय और मुनाफा भी तेजी से बढ़ा। उस समय इन सुविधाओं को देने वाली कम्पनी के लिए 'कोई उत्पाद बेचना या शुल्क लेना' व्यवहारिक विश्लेषण तक ही सीमित रह जाने के उद्देश्य हो सकते थे। बिना किसी शुल्क के सुविधाएँ देना उस दौर में नामुमकिन था। लेकिन आगे चलकर उपभोक्ता के व्यवहारिक डेटा की खरीद-बिक्री कमाई का जरिया बन

गयी। यानी आप इन्टरनेट की किसी सुविधा मसलन फेसबुक, व्हाट्सएप, ऑनलाइन रिजर्वेशन आदि का इस्तेमाल इन कंपनियों को बिना कोई शुल्क दिये करते हैं। क्या ये कम्पनियाँ कोई परोपकार करती हैं? नहीं। वे आपके व्यवहारिक डेटा को बेचकर कमाती हैं। व्यवहारिक डेटा ग्राहक के द्वारा की गयी सर्च का पूरा लेखा-जोखा होता है, जिसमें उसके नाम, उम्र, रंग, लिंग, यौनिक झुकाव, पसन्द, भौगोलिक स्थिति, इस्तेमाल की जाने वाली सुविधाओं, उत्पादों से लेकर उसके दोस्त और सगे सम्बन्धियों से रिश्तों तक की जानकारी होती है। यूँ कहें कि लगभग सब कुछ जो आप हैं।

उदहारण के लिए गूगल सर्च इंजन को लेते हैं। ये अपने शुरुआत में इन्टरनेट पर मुफ्त में लोगों को वेब सर्च दिखाता था (वेब सर्च में आप के द्वारा सर्च की गयी जानकारी को पूरी दुनिया के वेब पेजेज में से गूगल अपने पसन्द के सर्च रिजल्ट्स आपको दिखाता है)। ऐसे में ग्राहकों के इतने बड़े व्यवहारिक डेटा को सुरक्षित रखते हुए सुविधाएँ देना मुश्किल था। इन सेवाओं के लिए किसी प्रकार का शुल्क लगाते ही उपभोक्ता दूसरी दुकान पर चले जाते। फिर गूगल ने मुफ्त में सुविधा देने के नाम पर ग्राहकों के व्यवहारिक डेटा को सुरक्षित रखना, मनमाने ढँग से दूसरी कम्पनियों के साथ डेटा साझा करने का शातिराना और खतरनाक तरीका ढूँढ निकाला।

निजी कम्पनियों और सत्ता की साँठ-गाँठ के मायने

जब यह बदलाव हो रहे थे, उसी समय 2008 की विश्वव्यापी मन्दी भी शुरू हो गयी। पूँजीपतियों के सामने पूँजी निवेश का संकट और मुनाफे को बढ़ाने के लिए लागत में कमी का एजेंडा सामने आ गया। इसी समय गूगल कम्पनी पूँजी संकट से जूझ रही थी। उसके सामने निगरानी के लिए कानूनी स्वीकृति हासिल करना एक बड़ी समस्या थी। गूगल के पास सामान्य लोगों से लेकर महत्त्वपूर्ण लोगों के व्यवहारिक डेटा का अम्बार लग गया था, जिसका इस्तेमाल पूँजीपति अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए बहुत आसानी से कर सकते थे। दूसरी ओर जनता के आन्दोलन और विरोध प्रदर्शनों से घबराई सरकार के लिए ऐसी जानकारियाँ कारू का खजाना साबित होने वाली थीं। वह इन जानकारियों के जरिये अपने दमन को ज्यादा हिंसक और क्रूर बना सकती थी। गूगल तथा दूसरे पूँजीपति और सरकारों ने इसे अपने-अपने संकट को हल करने के औजार के रूप में देखा। पूँजीपतियों ने पूँजी निवेश किया। सरकारों ने इसे संवैधानिक जामा पहनाया और गूगल ने दिल खोल कर पूरी दुनिया की जनता की सभी जानकारियों को इन भेदियों के साथ साझा किया और आगे भी यह नापाक गठबंधन न केवल जारी रहा, बल्कि नयी-नयी ऊँचाइयों को छूने लगा।

इसी नापाक गठबंधन के चलते 'गूगल कम्पनी' आज तकनीकी कम्पनियों के शीर्ष पर विराजमान है। इसमें निवेश करनेवाली कम्पनियाँ दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की कर रही हैं। डेटा चोरी करके अपने व्यापार को आगे बढ़ाने वाली कम्पनियों के पौ-बारह हैं। सरकारें इसे संवैधानिक जामा पहनाकर न केवल इस लूट में शामिल हो गयी हैं, बल्कि अपने आईटी सेल और मीडिया मैनेजमेंट के दम पर आपकी इन्हीं निजी जानकारियों की बदौलत सत्ता सुख भोग रही हैं।

आइये, अब देखते हैं कि तकनीकी रूप से इन जन-विरोधी कारनामों को कैसे अंजाम दिया जाता है? गूगल और उससे जुड़ी दैत्याकार कम्पनियाँ आपके जीवन से जुड़ी छोटी-छोटी बातों को जोड़कर एक मेटाडेटा (डेटा के बारे में डेटा) तैयार करती हैं। मेटाडेटा का उदाहरण एक किताब की अनुक्रमणिका (इंडेक्स) है, जिसकी मदद से हम उस किताब की अंतर्वस्तु के बारें में एक अनुमान लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए कैम्ब्रिज एनालिटिका और फेसबुक वाला काण्ड लेते हैं, जिसके खुलासे के बाद अमरीकी मीडिया में तूफान आ गया था। इसके चलते फेसबुक के मालिक जुकरबर्ग को माफी भी माँगनी पड़ी। इसने कैम्ब्रिज एनालिटिका और फेसबुक के बीच बड़े विवादों को जन्म दिया था। मामला यह है, कैम्ब्रिज एनालिटिका ने फेसबुक के एक यूजर के जरिये उसके सभी दोस्तों की सूची, लिंग, नस्ल, कार्यक्रमों की जगह, शामिल हुए दोस्तों के राजनीतिक रुझान आदि के बारे में डेटा चुराया। यह सब उपभोक्ता की अनुमति के बिना हुआ, जो उसके मूलभूत अधिकार का हनन है। इसी तरह कैम्ब्रिज एनालिटिका ने 8.7 करोड़ यूजर्स का डाटा चुराकर जानकारियों का अम्बार इकट्ठा किया। इस डेटा को उसने अमरीकी राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार का प्रचार करनेवाली कम्पनी को बेचकर अरबों रुपये का मुनाफा कमाया। उस कम्पनी ने डोनाल्ड ट्रम्प के पक्ष में माहौल बनाने के लिए इसका इस्तेमाल किया था। इस मामले की जाँच कर रही फेडरल ट्रेड कमीशन (एफटीसी) ने बताया कि फेसबुक ने सेफगार्ड यूजर्स प्राइवेसी के नियमों का उल्लंघन किया है।

निगरानी के आर्थिक-राजनीतिक पहलू

सरकार देश की सुरक्षा के नाम पर निजी कम्पनियों से समझौते करती है। यहाँ मौजूदा व्यवस्था को बनाये रखनेवालों को दो तरफा फायदा होता है। सरकार समझौते के नाम पर सार्वजनिक सम्पत्ति को दूसरे देशों की निजी कम्पनियों को बेच देती है। यानी उनमें अकूत सरकारी पूँजी का विनिवेश करती है। धीरे-धीरे देश की अर्थव्यवस्था पर इन कम्पनियों का दबदबा बढ़ता जाता है। इन्हीं में से कुछ कम्पनियों को जनता पर निगरानी की खुली छूट और संवैधानिक मंजूरी मिल जाती है। ये कम्पनियाँ लोगों के डेटा को अन्य निजी कम्पनियों को बेचकर बेहिसाब मुनाफा तो कमाती ही हैं, साथ ही साथ जनता की हर गतिविधि की पूरी जानकारी सरकारों तक पहुँचाती रहती हैं और बार-बार सरकार

को जनता पर नकेल कसने के लिए चेताती भी रहती हैं। एडवर्ड स्नोडेन ने बताया था कि अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा एजेंसी (एनएसए) ने गूगल, फेसबुक, वर्जिन टेलिकॉम जैसी बहुत सारी कम्पनियों से डेटा लिया। उसका इस्तेमाल जनपक्षधर पत्रकार, प्रोफेसर, बुद्धिजीवी, सामाजिक कार्यकर्ता, जनता के असली नेता और अपनी माँगों के लिए लड़ने वालों पर कानूनी कार्यवाही करने में किया। यह बात साफ है कि निगरानी करने वाली विदेशी कंपनियाँ भारत जैसे देश की सम्प्रभुता के लिए खतरा हैं, लेकिन सरकार इसकी परवाह नहीं करती।

निगरानी व्यवस्था के चलते ही पत्रकारों पर जानलेवा हमले तेज हुए हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है। पत्रकारों पर जानलेवा हमले हर नये साल में पिछले साल से ज्यादा हो रहे हैं। भारत देश जनपक्षधर पत्रकारों के लिए मौत का कुआँ है। सरकार से सवाल पूछने पर गाली-गलौज से लेकर मौत की धमकी आज आम बात हो गयी है। सरकार निगरानी के मामले में पुराने सभी कीर्तिमान ध्वस्त करके नित-नये स्थापित कर रही है। आज आलम यह है कि सरकार-विरोधी सिर्फ एक फेसबुक पोस्ट और आप कैदखाने में। आप एक पोस्टर लेकर शान्तिपूर्वक विरोध कर रहे हैं, आपकी उम्र (वृद्ध), अवस्था (अपंग) का खयाल किये बिना देश की सरकारी सुरक्षा के लोग आयेंगे और आप को अमानवीय तरीके से पीटते-घसीटते हुए ले जायेंगे। यह सब हमारी सुरक्षा के नाम पर किया जाता है।

डेटा चुरानेवाली दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ पूरी दुनिया में अपना व्यवसाय करती हैं। इनकी अपनी गोपनीयता नीति (प्राइवेसी पॉलिसी) और सेवा की शर्तें (टर्म्स ऑफ सर्विस) होती हैं, जिसकी मदद से ये डेटा को सुरक्षित रखती हैं और साझा करती हैं। इसके बारे में फेसबुक के संस्थापक मार्क जुकेरबर्ग ने बताया था कि इसे व्यक्ति के सामान्य प्रयास से नहीं समझा जा सकता है। बहरहाल, इन सुविधाओं का इस्तेमाल करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस गोरखधंधे को जानना और उसे स्वीकार करना अनिवार्य है। किसी भी देश में इन कम्पनियों का कार्यकाल निश्चित समय के लिए होता है, लेकिन ये वहाँ के लोगों की जानकारी हमेशा के लिए रख सकती हैं, जिसका इस्तेमाल वे किसी भी तरीके से कर सकती हैं। उदाहरण के लिए एक कम्पनी जो किसी दूसरी कम्पनी के साथ काम करती थी। उससे सम्बन्ध खराब हो जाने पर जब वह किसी तीसरी कम्पनी के लिए काम करने लगती है, तो वह सारी कॉर्पोरेट नैतिकता को कूड़ेदान में फेंककर अपने पुरानी सहयोगी कम्पनी की जासूसी और निगरानी करती है तथा उसका सारा भेद अपने नये सहयोगी को बता देती है।

जासूसी और निगरानी का यह खेल बहुत ही जघन्य रूप धारण कर लेता है। किसी देश में तख्तापलट करवाना, अपनी मनमर्जी की नीतियाँ बनवाना, साइबर युद्ध के लिए उकसाना, ड्रोन की मदद से देश के अन्दरूनी हालात की हर गतिविधि पर नजर रखना, आदि इसकी कुछ मिसालें हैं। अपने देश के वातानुकूलित कमरे में बैठकर खूँखार जंगखोर मासूम लोगों की मौत पर हँसता है। यह कोई कपोल कल्पना नहीं है। जूलियन असाँजे द्वारा सार्वजनिक किया गया अफगानिस्तान का वीडियो इसका सबूत है, जिसमें अमरीकी सैनिक ड्रोन से बम गिराकर आम जनता को मारते हैं और ठहाके लगाकर हँसते हैं।

दुनिया भर में अपनी जनता का विश्वास खो चुकी सरकारें मौजूदा मरणासन्न और सड़ी-गली व्यवस्था को बनाये रखने के लिए नये-नये हथकंडे अपना रही हैं, वे पहले भी कई हथकंडे अपनाती रही हैं। लेकिन इस बार एक नये रूप में और बड़ी ताकत के साथ वे जनता पर हमलावर हैं, जिसका उद्देश्य मुठ्ठी भर लोगों के मुनाफे को बनाये रखना है।

अगर जनता को उसकी निजता और आजादी जैसे मूलभूत जरूरतों और अधिकारों से वंचित रख कर देश-दुनिया के चन्द लोगों की सुरक्षा होती है तो हमें ऐसे लोग और उस देश-दुनिया की सुरक्षा से खतरा है। ऐसे चन्द लोगों के लिए कोई और ग्रह ठीक हो सकता है, पृथ्वी तो नहीं। हाशिए पर पहुँच गयी जनता का विकास तभी होगा, जब जनता को केन्द्र में रखते हुए समाज व्यवस्था का पुनर्निर्माण किया जाये और ऐसी जनविरोधी तकनीकी पर रोक लगायी जाये।

एक मजदूर की बेटी ने पीएम को लिखी चिट्ठी, पूछे पाँच सवाल

अभी भी मजदूरों के घर जाने का सिलसिला जारी है और उन्हें अभी भी भारी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। जो पहुँच गये हैं उन्हें क्वारंटीन सेंटरों में बिना खाना-पानी के रखा जा रहा है। जो चन्द श्रमिक ट्रेनें चलाई गयीं उनमें सैकड़ों मजदूर भूख-प्यास से मर चुके हैं और अभी तक उनके मरने का सिलसिला जारी है।

उधर पूरे देश में श्रम कानून खत्म किए जा रहे हैं, काम के घंटे बढ़ाकर 12 घंटे किये जा रहे हैं, जिन कम्पनियों ने सैलरी नहीं दी, उन्हें छूट दे दी गयी। मजदूरों के हिस्से सिर्फ संवेदना ही आएगी क्या प्रधानमंत्री जी!

ट्रेनों में 80 मजदूरों की मौत का जिम्मेदार कौन है?
कोरोना काबू करने में आपकी सरकार सफल रही?
संवेदना देने के अलावा आपने क्या किया?
हवाई जहाज, हवाई चप्पल वाले वादे को क्यों भूल गये?
मजदूरों की पिटाई पर संवेदना क्यों नहीं?

साभार वर्कर यूनिटी